कृष्णदास प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला - १५

पालि : भाषा और साहित्य

लेखक

डॉ. रामानन्द शर्मा

चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफ़िस, वाराणसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कृष्णदास प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला
१५
....

पालि : भाषा और साहित्य

लेखक
साहित्यवारिधि डॉ० रामानन्द शर्मा
बी. ए. ऑनर्स, एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत)
पी-एच. डी., डी. लिट् (लब्धस्वर्णपदक)
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हिन्दू कालेज, मुरादाबाद-२४४००१

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
कम्प्यूटर कम्पोजिंग : एम. के. एस. कम्प्यूटर, वाराणसी
संस्करण : पुनर्मुद्रित, वि० सम्वत् २०६१, सन् २००४

ISBN : ८१-७०८०-१३४-६

© **चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस**
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : आफिस : २३३३४५८
आवास : २३३४०३२ एवं २३३५०२०
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
www.chowkhambaseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
पो० बा० नं० १११८
के० ३७/११८, गोपाल मंदिर लेन
निकट गोलघर (मैदागिन)
वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : २३३५०२०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

KRISHNADAS PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA
15
....

PALI :
LANGUAGE AND LITERATURE

By

Dr. Ramanand Sharma
B.A. Hons., M.A. (Hindi, Sanskrit)
Ph. D., D. Litt. (Gold Medalist)
Reader & Head, Hindi Department
Hindu College, Moradabad-244001

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi.
Compositor : MKS Computer, Varanasi.

ISBN : 81-7080-134-6

© **Chowkhamba Sanskrit Series Office**
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi-221001 (India)
Phone : Office : 2333458
: Res. : 2334032 & 2335020
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
www.chowkhambaseries.com

Also can be had from :
CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Post Box No. 1118
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Varanasi-221001 (India)
Phone : 2335020
CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

समर्पण

जिसने भाषा बोलना सिखाया

उस जननी को

सादर

--भैया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आत्मकथ्य

प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में संस्कृत के अतिरिक्त प्रायः सभी को उपेक्षा का शिकार होना पड़ा है जबकि हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं के स्वरूप एवं साहित्य पर इन सभी का महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है। हिन्दी की भाषागत विशेषताओं को समझने के लिए संस्कृत ही नहीं, वैदिक संस्कृत, पालि और प्राकृत भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है। प्राकृत और अपभ्रंश का तो साहित्य भी अत्यन्त समृद्ध है और उसने हमारे साहित्य को प्रभावित भी किया है। अतएव आधुनिक भाषाओं के स्वरूपगत एवं साहित्यगत वैशिष्ट्य को समझने के लिए पुरातन भाषाओं के साहित्य का अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार पालि केवल बुद्धवचनों की ही भाषा नहीं है, बल्कि भारतीय आर्यभाषाओं के विकासक्रम को स्पष्ट करने वाली, प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वरूप का उद्‌घाटन करने वाली तथा तत्कालीन समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत करने वाली महत्त्वपूर्ण सरणि है। ब्रजभाषा और अवधी के अनेक भाषागत रहस्य पालि एवं प्राकृत भाषाओं के अध्ययन से ही सुलझ पाते हैं।

विगत पचास वर्षों से एम. ए. (हिन्दी) में एक वैकल्पिक प्रश्नपत्र के रूप में पालि का अध्ययन प्रचलित है। पहले पाठ्‌यक्रम में केवल जातक ही निर्धारित थे, लेकिन धीरे-धीरे धम्मपद, मिलिन्दप्रश्न, थेरगाथा, थेरीगाथा, चरियापिटक आदि भी पाठ्‌यक्रम में स्थान पाने लगे हैं। अतएव ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता अनुभव होने लगी है जो पालि साहित्य का संक्षिप्त एवं प्रामाणिक ज्ञान करा सके। पालि भाषा और साहित्य पर विशालकाय ग्रन्थों का अभाव नहीं है। पालि-साहित्य पर डा० भरतसिंह उपाध्याय और राहुल साँकृत्यायन जैसे दिग्गज लेखकों ने विस्तारपूर्वक लिखा है। व्याकरण पक्ष पर भिक्षु जगदीश काश्यप का कार्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जातकों पर पं. मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने गम्भीरतापूर्वक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विचार किया है तथा दार्शनिक पक्ष का विश्लेषण करने में आचार्य बलदेव उपाध्याय भी पीछे नहीं रहे हैं, लेकिन ये सभी ग्रन्थ विद्वानों के लिए हैं। स्नातकोत्तर एवं शोधछात्रों के लिए ऐसे ग्रन्थों की महती आवश्यकता है जो उनकी जिज्ञासा को शान्त कर सकें और उन्हें विशद एवं प्रामाणिक जानकारी दे सकें। परीक्षा की वैतरणी पार कराने वाले सस्ते नोट्स की तो बहुतायत है, लेकिन समुचित एवं प्रामाणिक सामग्री वाली पुस्तकों का अभाव है। गहन रुचि वाले इन अध्येताओं को ध्यान में रखकर ही मैंने अपनी लेखनी चलायी है। वस्तुतः सन्दर्भ एवं प्रामाणिक ग्रन्थों का सम्यक् अनुशीलन कर अध्येताओं के लिए स्तरीय सामग्री प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों की रचना भी प्रातिभ आचार्यों का गम्भीर दायित्व है-ऐसा मेरा विश्वास है।

यह पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड हैः भाषा। इसके अन्तर्गत पालि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसका अन्य भारतीय आर्यभाषाओं से सम्बन्ध दिखाया गया है। सन्धि और समास, कारक, कृत्-तद्धित एवं स्त्री प्रत्यय तथा शब्द एवं धातु रूप भी इसी खण्ड के अन्तर्गत हैं। वस्तुतः यह खण्ड भाषा एवं व्याकरण दोनों को अपने में समाहित किये हुए है। द्वितीय खण्ड हैः साहित्य। इसके अन्तर्गत धर्मसंगीतियों का परिचय देकर पालि-साहित्य का संक्षिप्त विश्लेषण किया गया है। जो अंग विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, उन पर स्वतन्त्र अध्यायों में भी विचार किया गया है। जातक और धम्मपद ऐसे ही विषय हैं, क्योंकि वे सभी विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम के अंग रूप में स्वीकृत हैं। तृतीय खण्ड हैः बौद्ध धर्म-सिद्धान्त और उपदेश। यह खण्ड भाषा या साहित्य का अंग नहीं है, बल्कि बौद्ध धर्म की जानकारी से सम्बन्धित है। वस्तुतः पाठ्यक्रम में गौतम बुद्ध के प्रमुख सिद्धान्तों पर भी प्रश्न पूछे जाते हैं जिनके लिए विस्तारपूर्वक जानकारी प्रस्तुत की जानी आवश्यक थी। सिद्धान्त और उपदेश बौद्धधर्म का ही परिचय नहीं देते, बल्कि भारतीय संस्कृति का भी परिचय कराते हैं, इसीलिए इन्हें विशेष विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। भारतीय संस्कृति के सम्यक् ज्ञान् के लिए उनका अनुशीलन अनिवार्य है और ये मात्र बौद्ध धर्म की थाती भी नहीं हैं।

इस पुस्तक का लेखन आज से लगभग बाईस वर्ष पूर्व हुआ था और लेखनक्रम में 'भारतीय काव्यशास्त्र' के पश्चात् यह द्वितीय स्थान पर आती है, लेकिन प्रकाशनक्रम में यह काफी पिछड़ गयी। कोक्कोक कृत 'रतिरहस्य' (प्रकाश टीका सहित), ज्योतिरीश्वर कृत 'पञ्चसायक' (नर्मकेलिकौतुकसंवाद सहित),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र' (जया टीका सहित) तथा 'भिखारीदास का आचार्यत्व' के पश्चात् ही इसका प्रकाशन सम्भव हो सका। प्रकाशनक्रम में इसका स्थान अष्टम रहा। प्रत्येक जीवधारी के समान कदाचित् प्रत्येक कृति का भी अपना भाग्य होता है और उसमें कृतिकार चाहकर भी कुछ सहायता नहीं कर सकता। बहुत सम्भव है, इसका बीजवपन ही किसी अशुभ नक्षत्र या मुहूर्त में हुआ हो। 'भारतीय काव्यशास्त्र' के समान इसे भी द्वितीय संस्करण का अवसर प्राप्त हो गया है- यह कम प्रसन्नता का विषय नहीं है। राजनगरी दिल्ली से विद्यानगरी वाराणसी का प्रवास भी कम सुखद नहीं है।

मैं न पालि का अधिकारी विद्वान् हूँ और न सक्षम लेखक ही। शिक्षाजगत्, विशेषतः उच्चतर हिन्दी कक्षाओं और शोध में संलग्न अध्येताओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उसकी परिपूर्ति के लिए सचेष्ट होना अपना दायित्व समझ बैठा हूँ। पुस्तक में जो न्यूनताएँ हैं, वे मेरी हैं और जो ससारता है, वह मेरे पूर्ववर्ती साधकों एवं सद्गुरुओं की है। पुस्तक जैसी है सहृदय विद्वानों की सेवा में प्रस्तुत है। निवेदन है कि वे न्यूनताओं की ओर मेरा ध्यान आकर्षित अवश्य करें जिससे उनका निराकरण किया जा सके। चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस के नियामक श्री ब्रजमोहन दास जी गुप्त और कृष्णदास अकादमी के संचालक प्रिय कमलेश कुमार जी ने इस संशोधित संस्करण के प्रकाशन का दायित्व अपने कन्धों पर लिया है। ईश्वर से कामना है कि ये प्रकाशकबन्धु निरन्तर उन्नयन करते रहें। सहधर्मिणी श्रीमती विजय शर्मा (गणित प्रवक्ता, बलदेव आर्य कन्या महाविद्यालय, मुरादाबाद) की सतत प्रेरणा मुझे निरन्तर गतिशील रखती है, लेकिन सहधर्म के कारण उन्हें धन्यवाद का लोभ संवरण करना ही उचित है। अन्त में लेखक और प्रकाशक दोनों के उन्नयन के लिए भगवान् मृत्युञ्जय की पादप्रणति के साथ लेखनी को विराम देता हूँ। इति शम्।

गुरुपूर्णिमा	विद्वज्जनकिंकर
२०६० वैक्रम	साहित्यवारिधि डा० रामानन्द शर्मा
'शोधपीठ'	बी. ए. ऑनर्स, एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत)
बी. ६, जिगर कालोनी	पी-एच.डी, डी. लिट्. (लब्धस्वर्णपदक)
मुरादाबाद- २४४००१	रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
✆ ०५९१- २४३६९६९	हिन्दू कालेज, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुक्रम

प्रथम खण्ड : भाषा

अध्याय प्रथम : पालि भाषा

'पालि' शब्द का मूल अर्थ, 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति, उद्‌गमस्थल, पालि के मूल प्रदेश के विषय में विद्वानों की विभिन्न धारणाएँ, पालि और मागधी, पालि तथा अन्य प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ- पालि और वैदिक भाषा, पालि और संस्कृत, पालि और संस्कृत : पौर्वापर्य, पालि और प्राकृत, पालि का ध्वनिसमूह, ध्वनिपरिवर्तन-स्वरनियम, व्यञ्जननियम। ३-३१

अध्याय द्वितीय : सन्धि और समास

सन्धि-स्वरसन्धि, व्यञ्जनसन्धि, निग्गहितसन्धि। समास-अव्ययीभाव (असंख्य), तत्पुरुष (तप्पुरिस,) अलुक और उपपद तत्पुरुष, कर्मधारय (कम्मधारय), द्विगु (दिगु), द्वन्द्व (द्वन्द) और बहुब्रीहि (बहुवीहि)। ३२-४६

अध्याय तृतीय : कारक

प्रथमा विभक्ति (पठमा), द्वितीया विभक्ति (दुतिया), तृतीया विभक्ति (ततिया), चतुर्थी विभक्ति (चतुत्थी), पञ्चमी विभक्ति (पञ्चमी), षष्ठी विभक्ति (छट्ठी), सप्तमी विभक्ति (सत्तमी), संस्कृत और पालि कारक। ४७-५६

अध्याय चतुर्थ : कृत्, तद्धित और स्त्रीप्रत्यय

कृत्प्रत्यय-तब्ब, अनीय, ध्यण्, तुं, ताये, तवे, तून, क्त्वान, कत्वा, त्य, अन, ल्तु, णक, क्तवन्तु, क्तावी, क्त, घण। तद्धित प्रत्यय-ण, णान, णायन, णेय्य, णेर, णय, णि, णिक, णेय्य, इक, मन्तु, वन्तु, ई, स्सी, आलु, कण, क। स्त्रीप्रत्यय-आ, ङी, इनी, नी, आनी, ऊ, ति। ५७-७३

अध्याय पञ्चम : शब्दरूप

बुद्ध, फल, लता, मुनि, वारि, रत्ति, दण्डी, सुखकारी, इत्थी, भिक्खु, आयु, धेनु, सब्बञ्ञू (सर्वज्ञ), सयम्भू (स्वयंभू), वधू, गो, चित्तगो, अत्त (आत्मा), ब्रह्म, राज (राजन्), पुम (पुमान्), युव (युवन्), पितु, मातु, वन्तु और मन्तु प्रत्ययान्त-गुणवन्तु,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मन, सब्ब, किं, अम्ह, तुम्ह, त (वह), एत (यह), इम (यह), अमु (वह), संख्यावाचक विशेषण- एक, द्वि, ति, चतु, पञ्च, परवर्ती संख्यावाचक शब्द। ७४-९५

अध्याय षष्ठ : धातुरूप

गणपरिचय, लकार, पद, भ्वादिगण-भू धातु के रूप, रुधादिगण-रुध धातु के रूप, दिवादिगण- दिव धातु के रूप, तुदादिगण-तुदधातु के रूप, ज्यादिगण-जि धातु के रूप, क्यादिगण-की धातु के रूप, स्वादिगण- सु धातु के रूप, तनादिगण- तन धातु के रूप, चरादिगण चुर धातु के रूप, कुछ अतिप्रचलित धातुएँ-गम और दा। ९६-१०९

द्वितीय खण्ड : साहित्य

अध्याय सप्तम : साहित्य परिचय

धर्मसंगीति, पालिसाहित्य- (क) पालि या पिटक, और (ख) अनुपालि या अनुपिटक। ११२-११८

अध्याय अष्टम : त्रिपिटक

१. सुत्तपिटक- १. दीधनिकाय, २. मज्झिमनिकाय, ३. संयुत्तनिकाय, ४. अंगुत्तरनिकाय, ५. खुद्दकनिकाय- (१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थू, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, (९) थेरीगाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग. (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंस, (१५) चरियापिटक। ११९-१५५

२. विनयपिटक- १. सुत्तविभंग- (क) पाराजिक- (अ) संघादिसेस, (ब) अनियतधम्म, (ख) पाचित्तिय- (अ) निस्सग्गिय पाचित्तिय, (ब) पाटिदेसनीय, (स) सेखिय, (द) अधिकरण समथ, २. खन्दक- (क) महावग्ग, (ख) चूल्लवग्ग, ३. परिवार। १५६-१६३

३. अभिधम्मपिटक- १. धम्मसंगणि, २. विभंग, ३. धातुकथा, ४. पुग्गलपञ्ञति, ५. कथावत्थु, ६. यमक, ७. पट्ठान, पालित्रिपिटक और मूलबुद्धवचन। १६३-१७७

अध्याय नवम : पिटकेतर साहित्य

धार्मिक साहित्य- नेत्तिप्पकरण, पेटकोपदेस, मिलिन्दपञ्ह।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अट्ठकथा साहित्य- बुद्धदत्त, बुद्धघोष- विसुद्धिमग्ग, धम्मपाल।

वंससाहित्य- दीपवंस, महावंस, चूलवंस, बुद्धघोसुप्पत्ति।

शास्त्रीय या धर्मेतर साहित्य-

काव्य- तेलकटाहगाथा, जिनालंकार, जिनचरित, पज्जमधु, सधम्मोपायन।

व्याकरण- कच्चायन व्याकरण, मोग्गल्लान व्याकरण, सद्दनीति।

कोश- अभिधानप्पदीपिका, एकक्खरकोस। १७८-१९७

अध्याय दशम : जातक

'जातक' शब्द की व्युत्पत्ति, जातकसंख्या, वर्गीकरण, पाँच अंग, वर्ण्यविषय, जातक में पुनरुक्तियाँ, जातक और लोककथाएँ, जातककालीन समाज- (क) सामाजिक जीवन, (ख) राजनीतिक जीवन, (ग) आर्थिक जीवन, (घ) धार्मिक जीवन, रचनाकार एवं रचनाकाल, जातक तथा अन्य भारतीय साहित्य, महत्त्व। १९८-२४१

अध्याय एकादश : धम्मपद

व्युत्पत्ति और स्वरूप, रचनाकाल, वर्गविभाजन, पुनरुक्तियाँ, महत्त्व। २४२-२५६

तृतीय खण्ड : बौद्धधर्म-सिद्धान्त और उपदेश

अध्याय द्वादश : सिद्धान्त और उपदेश

बुद्ध की प्रमुख शिक्षाएँ- आर्यसत्य, आर्य अष्टांगिक मार्ग, मध्यमा प्रतिपदा, प्रतीत्यसमुत्पाद, द्वादशअंग, शिक्षात्रय-शील, समाधि और प्रज्ञा, निर्वाण, बोधिसत्त्व, ब्रह्मविहार-मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा, स्मृतिउपस्थान, पंचस्कन्ध, श्रावक-स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्, त्रिशरण-बुद्ध, धम्म और संघ, गुरुधर्म, चारिका, वर्षावास, प्रवारणा, उपोसथ, अठारह सम्प्रदाय (अष्टादश निकाय), हीनयान और महायान, अनात्मवाद और षट्पारमिता। २५७-३०५

सहायक ग्रन्थसूची

३०६

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रथम खण्ड

भाषा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय प्रथम

पालिभाषा

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में कालक्रम एवं साहित्य की दृष्टि से पालि का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कालक्रम की दृष्टि से यह छान्दस (वैदिक संस्कृत) तथा संस्कृत काल का स्पर्श करती है। खुद्दक निकाय के ग्रन्थ 'सुत्तनिपात' में ऋग्वैदिक भाषा के प्रादेशिक प्रयोग तथा उसकी भाषागत विविधरूपता यथावत् मिलते हैं जबकि संस्कृत ने उन्हें छोड़ दिया है। बौद्धधर्म का मूल ग्रन्थ 'त्रिपिटक' इसी में संकलित होने से इसका साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। वस्तुतः वैदिक एवं लौकिक संस्कृत भाषा एवं साहित्य के पश्चात् यदि पालि भाषा एवं उसके साहित्य का अध्ययन न किया जाये तो भारत की आधुनिक भाषाओं तथा भारतीय संस्कृति का स्वरूप पूर्णतः उद्घाटित नहीं होता। अतः आधुनिक भाषाओं तथा भारतीय संस्कृति के विकासमान स्वरूप को समझने के लिए पालि भाषा एवं उसके साहित्य का अध्ययन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

'पालि' शब्द का मूल अर्थ

आज 'पालि' शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिए किया जाता है जिसमें बुद्धवचन (त्रिपिटक) संकलित हैं लेकिन भाषाविशेष के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन नहीं है। चौदहवीं शताब्दी से पूर्व इस शब्द को हम भाषाविशेष के अर्थ में प्रयुक्त नहीं पाते। आचार्य बुद्धघोष के समय-चौथी पांचवीं शताब्दी में इस शब्द का प्रयोग 'मूल बुद्धवचन' के अर्थ में होता था। स्वयं बुद्धघोष ने अपनी टीकाओं में 'त्रिपिटक' के विभिन्न उद्धरणों के प्रसंग में 'अयमेत्थ पालि' (यहां यह पालि है) अथवा 'पालियं बुत्तं' (पालि में कहा गया है) का प्रयोग किया है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार वैयाकरण पाणिनि ने अपने विवेचन में 'छन्दसि' से वैदिक संहिताओं तथा 'भाषायाम्' से तत्कालीन भाषा (संस्कृत) का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उल्लेख किया है, उसी प्रकार आचार्य बुद्धघोष ने 'पालियं' से मूलबुद्धवचन (त्रिपिटक) तथा 'अट्ठकथां' से सिंहली अट्ठकथाओं को द्योतित किया है। वहां 'पालि' शब्द भाषावाचक न होकर मूलग्रन्थ त्रिपिटक का वाचक है। भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने 'जातक' (प्रथम भाग) की 'वस्तुकथा' में ठीक ही लिखा है--

''पालि असल में किसी भाषा का नाम नहीं रहा है। भाषा का नाम तो रहा है मागधी। पालि तो केवल मूलवचन का पर्यायवाची शब्द रहा है।''(१)

प्रसिद्ध विद्वान् राहुल साँकृत्यायन का मत भी यही है : '' प्रारम्भ में यह शब्द मूल बुद्धवचन या त्रिपिटक के लिए प्रयुक्त होता रहा और बाद में यह उस भाषा का द्योतक हो गया जिसमें बुद्धवचन प्राप्त हैं। इस प्रकार भाषा के अर्थ में 'पालि' शब्द का प्रयोग नवीन ही है, विशेषकर उन्नीसवीं शती में इसका व्यापक प्रचार हो गया है।''(२)

इसे एक अन्य उदाहरण से भी समझा जा सकता है। बारहवीं शताब्दी के वैयाकरण मोग्गल्लान ने पालि भाषा का व्याकरण लिखा है जिसका प्रथम श्लोक अधोलिखित है--

सिद्धमिद्धगुणं साधु नमस्सित्वा तथागतं।
सधम्मसङ्घं भासिस्सं मागधं सद्दलक्खणं।।

यहाँ उन्होंने 'मागधशब्दलक्षण' कहा है, पालिशब्दलक्षण या पालि-व्याकरण नहीं। इससे सिद्ध होता है कि बारहवीं शताब्दी तक पालि भाषा के लिए मागधी शब्द ही प्रयुक्त होता था।

अतः स्पष्ट है कि चौथी शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक 'पालि' शब्द भाषाविशेष के अर्थ में नहीं, बल्कि मूलबुद्धवचन (त्रिपिटक) के अर्थ में प्रचलित था। भाषा के अर्थ में मागधी शब्द प्रचलित था किन्तु धीरे-धीरे मूलग्रन्थ की भाषा के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाने लगा और आज यह इसी अर्थ में प्रचलित है। भिक्षु जगदीश काश्यप का मत भी यही है--''यह स्मरण रखना चाहिए कि 'पालि' शब्द कभी भी भाषा के लिए नहीं आया है। भाषा के लिए सदैव 'मागधी' नाम ही आता है।''

(१) आनन्द कौसल्यायन : जातक़ (प्रथमभाग), वस्तुकथा, पृष्ठ ५८
(२) राहुल साँकृत्यायन : पालिभाषा का इतिहास, पृष्ठ ३-४

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति

'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में बहुत मतवैविध्य है। विभिन्न विद्वानों ने अनेक स्थापनाएं की हैं जिनमें कुछ में आंशिक सत्य अवश्य दृष्टिगत होता है लेकिन कुछ तो आधारहीन दिखकर मात्र उद्भावक के बुद्धिवैचित्र्य को द्योतित करती हैं। यहां कुछ प्रमुख स्थापनाओं पर विचार किया जा रहा है--

१. महामहोपाध्याय पं० विधुशेखर भट्टाचार्य ने 'पालि' शब्द का विकास संस्कृत के 'पंक्ति' शब्द से माना है। उनके अनुसार इसका विकासक्रम इस प्रकार होगा : पंक्ति > पन्ति > पत्ति > पल्लि > पालि। उनका मत है कि पालि शब्द पहले पंक्ति, तदुपरान्त ग्रन्थ की पंक्ति के अर्थ में चलने लगा और बाद में उन ग्रंथों की भाषा के अर्थ में प्रचलित हो गया। पं० भट्टाचार्य का मत केवल शब्दार्थ पर अवलम्बित है क्योंकि पालि के प्रसिद्ध कोश 'अभिधानप्पदीपिका' में पालि शब्द का बुद्धवचन के साथ-साथ पंक्ति अर्थ भी दिया गया है। सम्भवतः इसी से प्रेरित होकर उन्होंने इस निरुक्ति का प्रवचन किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह मत निर्दोष नहीं है क्योंकि पालि शब्द कहीं भी पंक्ति या ग्रन्थ की पंक्ति के अर्थ में प्रयुक्त नहीं मिलता। भिक्षु जगदीश काश्यप ने इस मत में तीन दोष गिनाये हैं, जो निम्नलिखित हैं--

(क) ग्रन्थ की पंक्ति के लिए ग्रन्थ का लिखित होना आवश्यक है। त्रिपिटक प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व से पहले लिखित रूप में थे ही नहीं। अतः तब त्रिपिटक के उद्धरण के लिए पालि या पंक्ति शब्द उपयुक्त कैसे हो सकता है?

(ख) मूल त्रिपिटक में कहीं भी 'पालि' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। ग्रन्थ के नाम के साथ अवश्य लगा दिया जाता है उदाहरणार्थ उदान-पालि, पाचित्तिय-पालि आदि। यदि 'पालि' शब्द का पंक्ति अर्थ लें तो उदान-पालि आदि शब्दों का कोई अर्थ ही नहीं निकलता।

(ग) यदि 'पालि' शब्द पंक्ति अर्थ में प्रयुक्त होता तो कहीं उसका प्रयोग बहुवचन रूप में भी होना चाहिए था जो कहीं भी नहीं मिलता।

अतः स्पष्ट है कि 'पालि' शब्द का पंक्ति अर्थ हमें उसके यथार्थ स्वरूप तक नहीं ले जाता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. भिक्षु सिद्धार्थ ने अपने अंग्रेजी निबन्ध 'पालि भाषा का उद्‌गम और विकास, विशेषतः संस्कृत व्याकरण के आधार पर' में 'पालि' का उद्‌भव 'पाठ' शब्द से माना है। उनका मत है कि जब वेदपाठी ब्राह्मण बौद्धधर्म में दीक्षित हुए तो उन्होंने बुद्धवचनों के लिए भी अपने चिरपरिचित पाठ शब्द का प्रयोग प्रारम्भ किया। बाद में पाठ > पाळ > पालि हो गया जो पहले बुद्धवचनों के अर्थ में तथा बाद में बुद्धवचनों की भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इस मत में कोई दोष नहीं है, लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से इसे निर्दोष नहीं कहा जा सकता। ऐतिहासिक निर्दोषता सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि पालि साहित्य में पाळ शब्द का इस अर्थ में प्रयोग उपलब्ध हो, जो कहीं नहीं मिलता। स्वयं भिक्षु सिद्धार्थ भी अपने निबन्ध में कोई ऐसा उदाहरण नहीं दे सके हैं। अतः स्पष्ट है कि यह मत मात्र बौद्धिक-व्यायाम को व्यक्त करता है, वास्तविकता को नहीं।

३. भिक्षु जगदीश काश्यप ने अपने 'पालि महाव्याकरण' में 'पालि' शब्द का विकास 'परियाय' (संस्कृत पर्याय) से माना है। त्रिपिटक में अनेक स्थलों पर बुद्धवचन के अर्थ में 'धम्म-परियाय' शब्द का प्रयोग मिलता है जैसे 'को नु खो अयं भन्ते! धम्म-परियायो ति?', 'इमं हि मे भन्ते धम्म-परियायं सुत्वा सोकसल्लं पहीनन्ति' आदि। यह 'परियाय' ही धीरे-धीरे 'पलियाय' हो गया। अशोक के भाब्रू शिलालेख में 'पलियाय' शब्द का अनेकशः उल्लेख हुआ है। इसमें प्रियदर्शी अशोक कहते हैं, ''एतान भन्ते धम्म-पलियानि इछामि। किं ति बहुके भिखुपाये च भिखुनिये चा अभिखिनं सुनयु चा उपधालेयेयु चा। हेवं हेवा उपासका च उपासिका चा'' अर्थात् भन्ते ! ये धम्म-पलियाय हैं। मैं चाहता हूँ कि इन्हें सभी भिक्षु-भिक्षुणियां, उपासक-उपासिकाएं सदैव सुनें तथा सदा पालन करें। यह 'पालियाय' शब्द ही बाद में दीर्घ होकर 'पालियाय में परिणत हो गया जो धर्मदेशना या बुद्धवचन के अर्थ में प्रयुक्त होता था और उसी का संक्षिप्तरूप पालि है जो चौथी शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक इसी अर्थ में चला और बाद में बुद्धवचनों की भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। भिक्षु जगदीश जी काश्यप का यह मत भाषावैज्ञानिक और ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टि से निर्दोष तथा सत्य के बहुत निकट है।

४. जर्मन विद्वान् डा० मैक्स वेलेसर का मत है कि पाटलि या पाडलि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(पाटलिपुत्र) का संक्षिप्त रूप ही पालि है और यह पालि शब्द पाटलिपुत्र या मध्यदेश की भाषा के अर्थ में प्रचलित हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से यह मत दोषपूर्ण है। जब भाषा के अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग त्रिपिटक या अट्ठकथाओं तक में नहीं मिलता, तब यह मत स्वतः निराधार सिद्ध हो जाता है। पाश्चात्य विद्वान् थॉमस ने इस मत का जमकर प्रतिवाद किया है अतः यहां इसका विश्लेषण अनावश्यक ही है।

५. कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृत भाषा एवं साहित्य की अपेक्षा यह ग्राम्य एवं अपरिष्कृत थी। अतः पल्लि (ग्राम्यभाषा) कहलाती होगी। इस पल्लि से ही पालि शब्द का विकास हुआ है। यह मत निराधार है। ए० बेरियेडल कीथ ने स्पष्ट शब्दों में पालि को शिक्षित समाज की बोलचाल की भाषा स्वीकार किया है--

"The speech of the Buddha, which is assumed to be reproduced in the canon, was doubtless the educated lingua france which had been devised for the need of the inter course of learned men in India."

इससे स्पष्ट है कि पालि मध्य देश के शिक्षित व्यक्तियों की बोलचाल की भाषा है। अतः इसे ग्राम्यभाषा कहना निरर्थक है।

६. जहांगीरदार ने अपने ग्रन्थ 'कम्परेटिव फिलालाजी ऑफ दि इण्डो-आर्यन लैंग्वेज' में पालि शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रालेय' या 'प्रलेयक' शब्द से मानी है, जिसका अर्थ प्रतिवेश या पडौसी होता है, लेकिन लेखक अपनी स्थापना को सोदाहरण प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं। वस्तुतः इसे बुद्धि-व्यायाम से अधिक नहीं कहा जा सकता। इसमें न ऐतिहासिक सत्यता है और न भाषावैज्ञानिक ही।

७. कुछ विचारक इसे प्राचीनतम प्राकृत मानकर 'प्राकृत' शब्द से ही 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं। उनके अनुसार इसका विकासक्रम इस प्रकार है : प्राकृत > पाकट > पाअड़ > पाअल > पालि। इस मत का भी सुनिश्चित ऐतिहासिक आधार नहीं है। जब तक मत भाषावैज्ञानिक व्युत्पत्ति के साथ-साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध न प्रदर्शित करे तब तक उसे सुनिश्चित नहीं माना जा सकता।

उक्त मतों के विवेचनों से स्पष्ट है कि भिक्षु जगदीश काश्यप के अतिरिक्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्य सभी विचारकों ने ऐतिहासिक सत्यता की उपेक्षा करके अन्धकार में टटोलने का प्रयास किया है। काश्यप जी ने ऐतिहासिक आधार का ध्यान रखा है और सत्य के निकट पहुँचने का प्रयास किया है। कुछ विचारक पालि के कोशपरक अर्थ में अधिक विश्वास करते हैं व्युत्पत्ति में कम। अतः कोशपरक अर्थ पर भी विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

पालि-भाषा के एकमात्र कोश 'अभिधानप्पदीपिका' में 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गयी है :

पा रक्खणे, पालेति रक्खतीति पालि, अर्थात् जो पालन करती है, रक्षा करती है वह पालि है। यह किसका पालन करती है? किसकी रक्षा करती है? उत्तर स्पष्ट है, अर्थ की रक्षा करती है, बुद्धवचनों की रक्षा करती है। लंकाधिपति वट्टगामणि अभय के समय में भिक्षुओं द्वारा कण्ठ करके भारत से लाये हुए त्रिपिटक को लेखबद्ध किया गया--यहां इसी ऐतिहासिक तथ्य का संकेत किया गया है। मोनियर विलियम्स के संस्कृत कोश में 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति पाल् रक्षणे धातु से मानी गयी है। बौद्धाचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने भी इसी मत का समर्थन किया है। 'अमरकोश' के प्रसिद्ध टीकाकार भानुजी दीक्षित ने पाल् रक्षणे धातु से 'अच् इः' सूत्र से 'इ' प्रत्यय लगाकर पालि शब्द की निष्पत्ति मानी है। 'अमरकोश' के ही एक अन्य टीकाकार रायमुकुट ने पा रक्षणे धातु से 'आलि' प्रत्यय लगाकर 'पालि' शब्द सिद्ध किया है। तात्पर्य यह है कि वैयाकरणों की दृष्टि में 'पालि' शब्द पा पाल् (रक्षा करना) धातु से निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार जो बुद्धवचनों की रक्षा करती है वह भाषा पालि है।

इस प्रकार दो तरह के मत सामने आते हैं :

प्रथम, पालि शब्द किसी अन्य शब्द से विकसित हुआ है और इस प्रकार वह तद्भव शब्द है, तत्सम नहीं।

द्वितीय, वह तत्सम शब्द है जो पा या पाल् धातु से निष्पन्न हुआ है। निस्संदेह, पालि शब्द तद्भव है और वैयाकरणों ने इसकी व्युत्पत्ति शब्द के प्रचलित हो जाने पर ही दी है।

इस अवस्था में यह शब्द किस प्रकार निष्पन्न हुआ-यह एक कठिन समस्या है। जहां तक अर्थ की बात है वैयाकरणों ने भी सत्य तक पहुंचने का प्रयास

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किया है तथा साहित्यिक विचारकों ने भी, किन्तु किसी एक मत को नितान्त सत्य कहकर अन्य को असत्य घोषित करना बहुत कठिन है। अच्छा यह है कि इस विवाद में न पड़ा जाये। पालि एक भाषा है जो बुद्धकाल में मध्यदेश में बोली जाती थी और जिसमें त्रिपिटक संकलित है। यह शब्द पहले मूलग्रंथ का वाचक था। लेकिन धीरे-धीरे उसकी भाषा को द्योतित करने लगा। चूंकि इस भाषा ने बुद्धवचनों की अर्थसहित रक्षा की है इसलिए वैयाकरण ने पा या पाल् धातु से इसकी व्युत्पत्ति करने का प्रयास किया लेकिन यह प्रयास परवर्ती है। आज 'पालि' शब्द कोश में तीन अर्थों में मान्य है : १ पंक्ति २ बौद्ध त्रिपिटक, और ३ त्रिपिटक की भाषा।[१]

उद्गम स्थल

जिस प्रकार 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति विचारकों के मध्य विवाद का विषय रही है उसी प्रकार 'यह भाषा मूलतः किस प्रदेश की भाषा थी' यह भी रहस्य बना हुआ है। परम्परा को नकारने, बुद्धिबल से मौलिकता प्रदर्शित करने तथा एकांगी दृष्टि रखने की प्रवृति ने इसे और भी उलझा दिया है। विभिन्न मत- मतान्तरों पर प्रकाश डालने से पूर्व परंपरागत विचारों पर दृष्टिपात कर लेना अधिक युक्तिसंगत है।

आज 'पालि' शब्द उस भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होता हैं जिसमें स्थविरवादी बौद्धों का त्रिपिटक संकलित है, लेकिन स्वयं त्रिपिटक या समसामयिक साहित्य में 'पालि' शब्द का भाषा के अर्थ में प्रयोग नहीं मिलता। जिस भाषा में त्रिपिटक लिखा गया है उसके लिए वहां मागधी, मगधभाषा, मागधिक भाषा, मगधानिरुक्ति जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है। सिंहली परंपरा के अनुसार मागधी ही वह भाषा है जिसमें भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिये और उनका त्रिपिटक के रूप में संग्रह किया गया। सिंहल के भिक्षु ए० पी० बुद्धदत्त ने लिखा है, "Pali is the language in which the Oldest Buddhist Texts were composed. It originated in the ancient country of Magadha which was the kingdom of Emperor Ashok and the centre of Buddhist Learning during many centuries." लेकिन पाश्चात्य अध्येताओं ने इस परम्परागत विचारधारा की पूर्ण अवहेलना करते हुए अपनी मान्यताओं की स्थापना की है।

---

(१) आनन्द कौसल्यायन : पालि-हिन्दी कोश, पृष्ठ २२२

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि के मूल प्रदेश के विषय में विद्वानों की प्रमुख मान्यताएं निम्नांकित हैं।

(१) प्रो० (श्रीमती) रीज़ डेविड्स का मत है कि पालि मूलतः कोसल देश की भाषा थी। अपने मत के समर्थन में उन्होंने कई तर्क दिया है : प्रथम, महात्मा बुद्ध कोसल देश के थे, अतः उन्होंने अपनी मातृभाषा में ही उपदेश दिये होंगे। द्वितीय, कोसल देश में ही परिनिर्वाण के सौ वर्ष पश्चात् उनके उपदेशों का संग्रह किया गया। इस प्रकार पालि कोसल देश की ई० पू० छठी-सातवीं शताब्दी की बोली सिद्ध होती है।

(२) आर० ओ० फ्रेक के मतानुसार पालि विंध्यप्रदेश की बोली थी। अपने मत के समर्थन में वे कहते हैं कि उसका गिरनार शिलालेख से बहुत अधिक साम्य है जबकि उत्तरी भारत के पूर्वी भाग, उत्तरी पश्चिमी भाग तथा दक्षिण के लेखों से उसमें समानताएं एवं असमानताएं दोनों ही हैं। अतः पालि विन्ध्य के मध्य और पश्चिमी भाग की मूलभाषा सिद्ध होती है।

(३) स्टेन कोनो विंध्यप्रदेश की ही भाषा मानती हैं लेकिन तर्क कुछ भिन्न हैं। उनका कहना है कि पालि का पैशाची प्राकृत से बहुत साम्य है और उसका प्रदेश विंध्य उज्जयिनी के आस-पास है। अतः पालि वहीं की मूलभाषा है।

(४) वेस्टरगार्ड और ई० कुट्टन के मत में पालि उज्जयिनी की बोली है। अपने मत के समर्थन में वे कहते हैं कि अशोक के गिरनार (गुजरात) शिलालेख से इसका बहुत साम्य है। साथ ही कुमार महेन्द्र, जिसने लंका में बौद्धधर्म का प्रचार किया था, की मातृभाषा भी यही बोली थी।

(५) डा० ओल्डनवर्ग पालि को कलिंग की भाषा मानते हैं। उसका मत है कि लंका से निकट होने के कारण कलिंग से ही लंका में धर्मप्रचार का सम्पादन किया गया। साथ ही राजा खारवेल के खण्डगिरि अभिलेख से इसका पर्याप्त साम्य है। ई० मुलर कलिंगवासियों के लंका में बसने तथा धर्मप्रचार करने के कारण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसे ही अधिक उपयुक्त मानते हैं।

(६) जेम्स एलिवस तथा चाइल्डर्स पालि को मगध की भाषा मानते हैं। अतः मागधी को ही पालि का मौलिक तथा सर्वाधिक उपयुक्त नाम कहते हैं।

(७) जार्ज ग्रियर्सन पालि का मूल आधार तो मागधी को मानते हैं लेकिन उस पर पश्चिमी बोलियों का प्रभाव देखकर यह कल्पना कर बैठते हैं कि पालि का विकास मागधी के उस रूप से हुआ है जो तक्षशिला विश्वविद्यालय में बोलचाल का माध्यम था।

(८) गाइगर महादय का मत है कि पालि मागधी भाषा का ही एक साहित्यक रूप है जिसमें गौतम बुद्ध ने उपदेश दिये थे। यह भाषा किसी जनपद विशेष की वोली नहीं थी, बल्कि सभ्य समाज में प्रयुक्त एक सामान्य भाषा थी जिसका विकास बुद्ध काल में हो चुका था। इसमें अन्तर्प्रान्तीय भाषाओं के तत्त्व होने स्वाभाविक ही हैं। इस प्रकार इसे विशुद्ध मागधी भले ही न कहा जाय लेकिन मागधी कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

(६) महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का मत है कि त्रिपिटक मूलतः मागधी में ही लिखे गये थे लेकिन भिक्षुवर्ग द्वारा कण्ठस्थ रखने के दायित्व के कारण मागधी की काफी विशेषताएं उससे विलुप्त हो गयीं और भिक्षुवर्ग की वैयक्तिकताएं उसमें समाविष्ट हो गयीं, तथापि उसे मागधी के ही निकट मानना चाहिए।

(१०) डा० सुनीति कुमार चटर्जी पाश्चात्य विचारक सिल्वा लेवी और लूडर्स के आधार पर कहते हैं कि बुद्धवचन प्रारम्भ में किसी पूर्वी बोली में लिखे गये थे जो बाद में पालि में अनूदित कर दिये गये जो मध्य प्रदेश की एक प्राचीन भाषा पर आधारित साहित्यिक भाषा थी।

उक्त मतों के संक्षिप्त उल्लेख के पश्चात् अब इनकी स्वल्प समीक्षा भी आवश्यक है। प्रो० (श्रीमती) रीज़ डेविड्स ने पालि को कोसल देश की भाषा माना है क्योंकि गौतम कोसल देश में उत्पन्न हुए थे। कोसल देश मगध साम्राज्य का एक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अंग बन गया था। अतः मगध की भाषा ही राष्ट्रभाषा के पद पर अभिषिक्त हुई होगी। अन्य जनपद की बोलियों का, जिनमें कोसल भी एक था, उस पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस प्रकार कोसल की भाषा का मागधी में ही अन्तर्भाव हो गया था-ऐसा मानने पर प्रो० रीज़ डेविड्स के मत का आधार ही समाप्त हो जाता है। गौतम बुद्ध की भाषा में जो कोसल भाषा के तत्त्व भी रहे होंगे वे भिक्षु परम्परा में विलुप्त हो गये होंगे। आर० ओ० फ्रेक तथा स्टेन कोनों पालि को विन्ध्य प्रदेश की भाषा मानते हैं-यह मत नितान्त एकांगी है। इससे केवल इतना पता अवश्य लगता है कि पालि में मगध के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के तत्त्व भी विद्यमान हैं जो साहित्यिक तथा अन्तर्प्रान्तीय भाषा की एक सहज विशेषता है। स्टेन कोनो का पैशाची को विन्ध्य की भाषा मानना हास्यास्पद है। पैशाची प्राकृत पिशाच प्रदेश (गान्धार तथा केकय देश) की भाषा है न कि विन्ध्यप्रदेश की। वेस्टरगार्ड और ई० कुट्टन ने अशोक के गिरनार (गुजरात) शिलालेख से पालि का भाषा-साम्य देख कर उसे उज्जयिनी की बोली घोषित कर दिया है। यह मत भी मान्य नहीं है। अशोक के एक ही लेख की कई-कई प्रतियां प्राप्त हुई हैं जो भाषाविषयक विभिन्नताएं लिये हुए हैं। अतः गिरनार के शिलालेख के आधार पर पालि को उज्जयिनी की बोली घोषित करना न्यायसंगत नहीं है। ओल्डनबर्ग और ई० मूलर का पालि को कलिंग की भाषा मानना भी उपयुक्त नहीं है। खारवेल के खण्डगिरि अभिलेख से पालि का भाषासाम्य केवल पालि की मिश्रित शब्दावली को व्यक्त करता है जो साहित्यिक एवं अन्तर्प्रान्तीय भाषा की सहज विशेषता है। खण्डगिरि के अभिलेख के आधार पर कलिंग को पालि का मूलस्थान बताना वैसा ही है जैसा गिरनार के शिलालेख के आधार पर उज्जयिनी को मूलस्थान कहना। सिल्वा लेवी और लूडर्स आदि पाश्चात्य विचारकों के अन्धानुकरण पर डा० सुनीति कुमार चटर्जी का यह मत-"This western dialect into which Buddha's teaching were translated come to be known as Pali" नितान्त भ्रामक है। बुद्ध के उपदेश पहले किसी प्राच्य बोली में थे, बाद में पश्चिमी बोली में अनूदित किये गये और यह अनूदित रूप ही पालि है-यह कथनमात्र सरल है। लेकिन यह अनुवाद कब किया गया, किसके द्वारा किया गया, किसके आश्रय में किया गया आदि उत्पन्न प्रश्नों का उत्तर न पाश्चात्य विचारकों के पास है और न उनके अनुकरणकर्ता डा० चटर्जी के पास। त्रिपिटक, जो बुद्धजीवन की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्षुद्रानुक्षुद्र घटनाओं एवं तथ्यों का विवरण प्रस्तुत करता है, इस विषय में कुछ नहीं कहता है या किसी अन्य समसामयिक या परवर्ती साहित्य में इस प्रकार का कोई उल्लेख भी अब तक नहीं मिला है। अतः स्पष्ट है उक्त मत नितान्त निराधार एवं भ्रामक है।

जिन विचारकों ने पालि के मागधी आधार को स्वीकार किया है उनमें मुख्य नाम हैं सेम्स एल्विस, चाइल्डर्स, ग्रियर्सन, गाईगर, विण्टरनित्ज़। भारतीय पालिविद् भिक्षु सिद्धार्थ, भिक्षु जगदीश काश्यप और भदन्त आनन्द कोसल्यायन भी इसी मत के समर्थक हैं। जेम्स एल्विस की मान्यता है कि बुद्धकालीन सोलह प्रदेशों में सोलह भाषाएं प्रचलित थीं जिनमें मागधी भी एक थी। गौतम बुद्ध ने इस मागधी में ही अपचे उपदेशों का प्रचार किया। जार्ज ग्रियर्सन मूल आधार तो मागधी ही मानते हैं लेकिन उनमें तत्कालीन पश्चिमी बोलियों का प्रभाव देखकर यह कल्पना कर बैठते हैं कि पालि का विकास मागधी के उस रूप से हुआ था जो तक्षशिला विश्वविद्यालय में बोला जाता था। वस्तुतः पालि मगध की राष्ट्रभाषा थी और वह सम्पूर्ण मध्यदेश के सभ्य एवं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त होती थी। अतः साहित्यिक एवं अन्तर्प्रान्तीय भाषा होने के कारण उसमें विभिन्न बोलियों की विशेषताओं का सम्मिश्रण होना स्वाभाविक ही है और यह सम्मिश्रण ही पाश्चात्य विचारकों को भ्रमित कर देता है। इस पश्चिमी प्रभाव को देखकर वे कभी उसे तक्षशिला विश्वविद्यालय की बोलचाल की भाषा मानते हैं (यह असिद्ध है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम मागधी भाषा थी) तो कभी गुजरात और विन्ध्य का पुट देखकर विन्ध्यप्रदेश की भाषा। फिर भी जार्ज ग्रियर्सन ने सत्य के निकट पहुंचने का भरपूर प्रयास किया है। गाइगर महोदय का मत अत्यन्त निर्भ्रान्त एवं स्पष्ट है। वे पालि को मागधी का ही एक रूप मानते हैं। उनके मतानुसार यह किसी जनपद विशेष की बोली नहीं थी, बल्कि सभ्य समाज में व्यवहृत होंनेवाली भाषा थी। अतः इसमें अन्तर्प्रान्तीय तत्त्वों का सम्मिश्रण स्वाभाविक ही है। महापण्डित राहुल जी सांकृत्यायन इसी मत के समर्थक हैं। उन्होंने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है कि मूलभाषा मागधी ही थी लेकिन भिक्षुओं द्वारा श्रुति परम्परा से कई शताब्दियों तक चलने के कारण जहां अन्य प्रान्त की विशेषताओं का सम्मिश्रण हुआ, वहीं मागधी विशेषताएं भी विलुप्त हो गयीं। परिणामतः यह एक ऐसा सम्मिश्रण बन गया जिसमें मागधी तथा इतर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भाषाओं की विशेषताएं घुली-मिली दिखती हैं। भिक्षु जगदीश काश्यप भी इसी मत के समर्थक हैं। अपनी 'पालि-महाव्याकरण' में इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''यह 'मागधी भाषा' मगध की खास अपनी भाषा न थी, किन्तु सारे मध्यमण्डल में बोली जाने वाली वह भाषा थी जिसे मगध सम्राटों ने अधिक उपयोगी देखकर अपनी राजभाषा बनाया था। हां, इतना तो जरूर हुआ कि मगध की राजभाषा बनने के बाद इस पर 'मगध' की अपनी बोली की काफी छाप पड़ गयी। इसी मागधी भाषा को बुद्ध ने धर्म-प्रचार का सर्वोत्तम माध्यम समझ, इसी में अपने सारे उपदेश दिये।''

भाषा के इस सम्मिश्रित स्वभाव को भगवान् बुद्ध के जीवन तथा विभिन्न परिस्थितियों के प्रसंग में भली प्रकार समझा जा सकता है। बुद्ध कपिलवस्तु के एक प्रतिष्ठित परिवार में उत्पन्न हुए थे। अतः उनकी मातृभाषा तत्कालीन सभ्य एवं संस्कृत समाज में बोली जाने वाली भाषा ही रही होगी। उन्होंने ज्ञान भी निश्चित गुरूओं से ही नहीं, प्रत्युत् नौ वर्ष निरन्तर घूम-फिरकर तथा चिन्तन-मनन करके प्राप्त किया था। बुद्धत्व प्राप्ति के उपरान्त भी वे परिनिर्वाणपर्यन्त लगभग पैंतालीस वर्ष घूम-घूमकर अपने उपदेशों का प्रचार करते रहे। इस विशाल अवधि में उनकी भाषा में अन्तर्प्रान्तीय शब्दों तथा अन्य भाषाओं की विशेषताओं का सम्मिश्रण होना आवश्यक है। उनके भिक्षुओं में भी सभी देशों, धर्मों एवं जातियों के व्यक्ति थे। उनकी बोलचाल की भाषा में भी कुछ स्थानीय विशेषताएं अवश्य रही होंगी जिनका पारस्परिक आदान-प्रदान भी स्वाभाविक ही है। बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरान्त इन्हीं भिक्षुओं पर त्रिपिटक की रक्षा का दायित्व था और वह भी श्रुतिपरम्परा से। अतः यह स्वभाविक ही हो जाता है कि इस बुद्धवचन की भाषा में मागधी की अनेक विशेषताएं विलुप्त हो गयी हों तथा प्रवाचक के अनुसार अन्तर्प्रान्तीय शब्दों तथा अन्य भाषाओं की विशेषताओं का सम्मिश्रण हो गया हो। पालि का यह मिश्रित स्वरूप ही पाश्चात्य विद्वानों को भ्रमित करता रहा है कि वे कभी उसे कलिंग की भाषा घोषित करते हैं तो कभी पिशाच प्रदेश या उज्जयिनी की। संघ की भिक्षु-परम्परा की अवहेलना करने के कारण ही ये विचारक अन्धकार में टटोलते रहे हैं।

उक्त विवेचन का सार यह है कि मगध के अभ्युदय के साथ मागधी भी राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित हुई। इस राष्ट्रभाषा में मगध की बोली के साथ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्य प्रान्तीय भाषाओं का भी अद्भुत सम्मिश्रण था। परिणामतः यह सम्पूर्ण मध्यदेश के सभ्य समाज में बोली और समझी जाती थी। यह साहित्यिक और अन्तर्प्रान्तीय भाषा प्रारम्भ में मागधी कहलाती थी जो कालान्तर में 'पालि' नाम से अभिहित की गयी। स्थविरवादी बुद्धवचन इसी भाषा में संकलित हैं।

पालि और मागधी

यह सिद्ध हो जाने पर कि 'पालि' मागधी का ही परिवर्तित-परिवर्द्धित रूप है, यह आवश्यक हो जाता है कि पालि और वैयाकरणों द्वारा विवेचित मागधी दोनों का अन्तर समझ लिया जाये। मागधी का प्राचीनतम उपलब्ध रूप अशोक के शिलालेखों में मिलता है। लगभग तभी का स्वरूप प्राकृत वैयाकरणों द्वारा विवेचित है। यह स्पष्ट है कि पालि इन सबसे प्राचीन है। अतः दोनों में अन्तर होना स्वाभाविक है। इस मागधी की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं जो इसे पालि से भिन्न करती हैं--

(क) स् और ष् का श् में परिणत हो जाना,

(ख) र् का ल् में परिवर्तित होना, और-

(ग) पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग अकारान्त शब्दों का प्रथमा विभक्ति एकवचन का रूप एकारान्त होना।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने शिलालेखी मागधी और पालि की विभिन्नताओं पर प्रकाश डालते हुए ठीक ही लिखा है-''पालि ने यदि 'श' का बायकाट तथा 'र' के स्थान पर भरसक 'ल' नहीं आने देने की कसम न खायी होती तो शायद उसे ही मागधी का प्राचीनतम रूप होने का सौभाग्य प्राप्त होता। ....तो भी हम पालि के पुराने सुत्तों में ल और श की भरमार कर उसे मागधी के पास पहुंचा सकते हैं।''[१]

उक्त अन्तर से स्पष्ट है कि प्राकृत वैयाकरणों द्वारा विवेचित मागधी पालि का मूलाधार नहीं है क्योंकि उसका विकास तो पालि से भी बाद में हुआ है। पालि का आधार तो वह मागधी हो सकती है जो बुद्धकाल में मध्यमण्डल-पूर्व में कुरु जनपद से लेकर पश्चिम में मगध तक तथा उत्तर में श्रावस्ती से लेकर दक्षिण में अवन्ति तक-के सभ्य समाज द्वारा बोली और समझी जाती थी तथा साहित्यिक

(१) राहुल साँकृत्यायन : पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भाषा एवं राष्ट्रभाषा होने के कारण जिसमें विभिन्न प्रान्तों की अनेक भाषागत विशेषताओं का सम्मिश्रण हो गया था।

प्राकृत वैयाकरणों द्वारा विवेचित मागधी के समान जैनसूत्रों की भाषा अर्धमागधी भी पालि का मूलाधार नहीं हो सकती क्योंकि वह भी पालि के बाद विकसित हुई है। पश्चिम में शौरसेन और पूर्व में मागधी प्राकृतों के मध्य क्षेत्रमें बोली जाने वाली भाषा अपनी मिश्रित प्रकृति के कारण अर्धमागधी कहलाती है लेकिन उसका स्वरूप पालि से बहुत भिन्न है और वह पालि से परवर्ती भी है।

पालि तथा अन्य प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ

भारतीय आर्यभाषाओं का इतिहास विद्वानों ने १५०० ईस्वी पूर्व से माना है। तब से आज तक लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष के समय को विद्वानों ने निम्न भागों में विभाजित किया है। ये विभाग इस प्रकार हैं--

१. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं (ईस्वी पूर्व १५०० से ५०० तक)

२. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं (ईस्वी पूर्व ५०० से १००० ईस्वी तक)

३. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं (१००० ईस्वी से अब तक)

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं में छान्दस (वैदिक संस्कृत) तथा संस्कृत का नाम आता है। वैदिक साहित्य में चारों वैदिक संहिताएं, उपनिषद्, ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थ आते हैं। संस्कृत में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भास, भारवि, भवभूति, श्रीहर्ष आदि की रचनाएं आती हैं। इस भाषा को वैदिक से पृथक् समझने के लिए लौकिक संस्कृत नाम भी दिया जाता है। मध्यकालीन भाषाओं को पुनः तीन भागों में विभाजित किया गया है : (क) पालि तथा शिलालेखी प्राकृत (५०० ई० पू० से ईस्वी शताब्दी), (ख) प्राकृत (ईस्वी शताब्दी से ५०० ई० तक), (ग) अपभ्रंश (५०० ई० से १००० ई० तक)। आधुनिक भारतीय भाषाओं में गुजराती, मराठी, कश्मीरी, पंजाबी, हिन्दी, उड़िया, बंगाली, असमिया आदि अनेक भाषाएं आ जाती हैं जिनका विकास लगभग १००० ई० के आस-पास से प्रारम्भ होता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिक एवं लौकिक संस्कृत पालि से पूर्ववर्ती भाषाएं हैं और प्राकृतें उससे परवर्ती। पालि का प्रारम्भ काल जहां वैदिक एवं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लौकिक संस्कृत काल का स्पर्श करता है वहां उसका समाप्ति काल प्राकृतों के प्रारम्भिक विकास का। वैसे कोई भाषा कभी समाप्त नहीं होती, संस्कृत और पालि को मातृभाषा मानने वाले आज भी विद्यमान हैं परन्तु लोकभाषा की दृष्टि से उनका विकास और समापन माना जाता है। पालि की स्वरूप-स्थिति समझने के लिए इन पूर्ववर्ती तथा परवर्ती भाषाओं से उसका साम्य-वैषम्य समझ लेना उपयुक्त होगा।

पालि और वैदिक भाषा

वैदिक भाषा भारतवर्ष की प्राचीनतम आर्यभाषा है। इसी में वैदिक संहिताओं, उपनिषदों, ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। इस भाषा में अनेकरूपता थी। ऋग्वेद जो कई युगों में विभिन्न ऋषियों द्वारा रचा गया, इस अनेकरूपता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आगे ईस्वी पूर्व आठवीं-नवीं शताब्दी में पाणिनि आदि वैयाकरणों ने वैदिक भाषा की अनेकरूपता को संयत करने के लिए व्याकरण की रचना की और अनेक रूपों में से एक रूप को मान्यता दी। यह संस्कारित भाषा संस्कृत कहलायी जिसमें वैदिक अनेकरूपता लुप्त हो चुकी है। परवर्ती काल में अपाणिनीय प्रयोग अशुद्ध ही माने गये लेकिन वाल्मीकि, व्यास आदि प्राचीन कवियों की कृतियों में इन्हें अशुद्ध न कहकर 'आर्षप्रयोग' कहा जाता है। वैयाकरणों द्वारा संस्कारित होने पर संस्कृत में अनेकरूपता पर अंकुश अवश्य लग गया, लेकिन बोलचाल की भाषा उसी प्रकार अनेकरूपता लिये रही और बाद में इसी अनेकरूपतामयी भाषा से पालि का विकास हुआ। पालि ने इस अनेकरूपता को यथावत् स्वीकार किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत एवं पालि का आधार लगभग एक ही बोलचाल की भाषा थी लेकिन दोनों का विकास भिन्न-भिन्न ढंग से हुआ है।

वैदिक भाषा की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी अनेकरूपता थी जिसको पालि ने यथावत् स्वीकार किया है जबकि संस्कृत ने उसे छोड़ दिया है। यहां कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं : वैदिक भाषा में अकारान्त शब्दों के तृतीया बहुवचन में देवेभिः, कर्णेभिः जैसे रूप भी मिलते हैं जो संस्कृत में अनुपलब्ध हैं जबकि पालि में देवेभि, देवेहि, कण्णेभि, कण्णेहि आदि रूप सुरक्षित हैं। वैदिक अकारान्त पुल्लिंग शब्दों के प्रथमा बहुवचन के रूप में 'असुक' प्रत्यय लगाकर 'देवासः' जैसे रूप बनते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

थे। पालि में भी यह प्रत्ययांश देवासे, धम्मासे, बुद्धासे आदि रूपों में उपलब्ध होता है, लेकिन संस्कृत ने इसे ग्रहण नहीं किया। इस अनेकरूपता के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, लेकिन विस्तारभ़य से इतना ही काफी है।

वैदिकभाषा की अनेकरूपता को ग्रहण करने के उपरान्त भी पालि में कुछ ऐसी विशेषताएं है जो उसमें बाद में विकसित होने से वैदिक भाषा में नहीं मिलतीं। ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं--

(१) वैदिक भाषा में तीन वचन थे; एकवचन, द्विवचन और बहुवचन, लेकिन पालि तक आते-आते द्विवचन विलुप्त हो गया।

(२) वैदिक भाषा का शब्दभण्डार तत्समबहुल था लेकिन पालि तक आते-आते शब्दभण्डार में तद्भव और देशज शब्दों का बाहुल्य हो गया।

(३) वैदिक भाषा में उपसर्ग अलग लिखे जाते थे लेकिन संस्कृत और पालि में उन्हें क्रियापदों में जोड़ देने की प्रवृति उत्पन्न हुई।

(४) वैदिक भाषा एवं संस्कृत में व्यंजनान्त शब्दों की संख्या बहुत अधिक है जबकि पालि में ये बहुत कम रह गये हैं।

(५) पालि में आत्मनेपद कुछ ही रूपों में शेष था जबकि वैदिकभाषा एवं संस्कृत में आत्मनेपदी रूपों की संख्या बहुत अधिक थी।

(६) पालि में ऋ, ॠ, लृ, ऐ, औ, श, ष और विसर्ग-इन ध्वनियों का लोप हो गया है जबकि ये ध्वनियां वैदिक भाषा में विद्यमान हैं।

पालि और संस्कृत

पालि और संस्कृत दोनों का एक ही स्रोत है--दोनों वैदिकभाषा से उद्भूत हुई हैं, लेकिन दोनों का विकास भिन्न-भिन्न ढंग से हुआ है। जहां पालि ने वैदिक भाषा की अनेकरूपता को स्वीकार किया है वहां संस्कृत में अतिप्रचलित प्रयोगों को मान्यता देकर शेष को अशुद्ध (अपाणिनीय) माना गया है। इस प्रकार यदि संस्कृत उस बंधे हुए सरोवर के तुल्य है जिसके सुघाट बड़े मनोरम हैं तथा जिसका अंक कमलनियों एवं हंसों से परिपूर्ण है तो पालि बहती हुई उस रसमयी पयस्विनी के समान है जिसके तट पर अनेक तीर्थ हैं तथा जो अनेक क्षेत्रों को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शस्यश्यामल बनाती हुई तथा कलनिनाद करती हुई अन्य नदी में जा गिरती है।

भाषा की दृष्टि से दोनों में काफी समानताएं हैं। रूप और वाक्य संगठन में दोनों समान हैं, कारकों में भी अन्तर नहीं है। दोनों संश्लेषणात्मक भाषाएं है और वाक्य में पदों का स्थान निर्धारित नहीं रहता, क्रिया और कर्ता कहीं भी रखा जा सकता है। शब्दावली में काफी साम्य है, अन्तर केवल ध्वन्यात्मक है। काल की दृष्टि से दोनों में बहुत अन्तर नहीं है और दोनों के साहित्य का एक-दूसरे पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

उक्त समानताओं के उपरान्त भी दोनों में पर्याप्त अन्तर है। कुछ मुख्य विभिन्नताएं निम्नलिखित हैं--

(१) संस्कृत में वैदिक भाषा के समान तीन वचन हैं : एकवचन, द्विवचन और बहुवचन्, जबकि पालि में द्विवचन का प्रयोग नहीं मिलता।

(२) संस्कृत में व्यंजनान्त शब्दों की संख्या काफी है लेकिन पालि में इनकी संख्या अत्यल्प है। वहां या तो अन्तिम व्यंजन का लोप हो गया है या अन्य स्वर का आगम।

(३) संस्कृत में आत्मनेपद रूपों की संख्या बहुत है लेकिन पालि में आत्मनेपद लुप्त हैं। वहां परस्मैपदों का ही बाहुल्य है।

(४) संस्कृत ने वैदिक भाषा से ऐ, औ, ऋ, ॠ, लृ, श, ष और विसर्ग ध्वनियां ग्रहण की हैं लेकिन पालि में इनका प्रयोग नहीं मिलता।

(५) संस्कृत तत्सम शब्दों की भाषा है। वहां देशज या द्रविड़ शब्दों की संख्या अत्यल्प है, तद्भव तो हैं ही नहीं जबकि पालि में तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। वस्तुतः तद्भव शब्दावली ही पालि की अपनी शब्दावली है।

(६) वैदिक भाषा की ळ् और ळ्ह ध्वनियां पालि में उपलब्ध होती हैं जबकि संस्कृत में ये लुप्त हो चुकी हैं।

(७) संस्कृत में वैदिक भाषा की अनेकरूपता नहीं मिलती जो पालि की प्रमुख विशेषता है। उदाहरणार्थ, संस्कृत में 'बुद्ध' शब्द का पंचमी एकवचन में केवल 'बुद्धात्' रूप बनता है जबकि पालि में 'बुद्धा', 'बुद्धस्मा' और बुद्धम्हा तीनों रूप प्रयुक्त होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि और संस्कृत : पौर्वापर्य

यद्यपि पालि और संस्कृत का पौर्वापर्य विवादास्पद नहीं है और प्रायः सभी स्वीकारते हैं कि पाणिनि आदि वैयाकरणों द्वारा जटिल नियमों में बंध जाने से, विविधतामयी बोलियों से पालि का जन्म हुआ, तथापि कुछ विचारक सुत्तनिपात की भाषा में ऋग्वैदिक भाषा का साम्य देखकर पालि को संस्कृत से पूर्ववर्ती मानते हैं। सिंहल के भिक्षु ए० पी० बुद्धदत्त ने लिखा है-- "Pali is older than classical Sanskrit." इसी का अनुसरण करते हुए कुछ विचारक दोनों को समकालीन भाषाएं मानने लगे हैं। यहां इस पर संक्षिप्त विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

संस्कृत निश्चय ही पूर्ववर्ती भाषा है और पालि परवर्ती। दोनों के ऐतिहासिक आधार की विवेचना करते समय यह स्पष्ट हो चुका है। यदि पाणिनि आदि वैयाकरण वैदिकभाषा की अनेकरूपता का संयमन न करते तो न संस्कृत का जन्म होता और न पालि का प्रादुर्भाव। वैदिक भाषा किञ्चित् परिवर्तनों के साथ उसी प्रकार चलती रहती जैसे दसवीं शताब्दी से आज तक हिन्दी चल रही है। लोकगत अनेकरूपता के बंध जाने के कारण ही परवर्ती विद्वान् कवियों को नवीन भाषा का आश्रय खोजना पड़ा। स्पष्ट है कि पालि परवर्ती भाषा है।

इसे त्रिपिटक के साक्ष्य से भी सिद्ध किया जा सकता है। विनयपिटक के चुल्लवग्ग में यमेल और यमेलतेकुल नामक दो ब्राह्मण भाइयों की कथा आती है जो इस बात से क्षुब्ध होकर कि नाना जाति, गोत्र और भाषा वाले भिक्षु बुद्धवचन को अपनी-अपनी भाषा में कहकर दूषित करते हैं, बुद्ध के पास जाकर बुद्धवचनों को छन्दस करने की अनुमति मांगते हैं। आचार्य बुद्धघोष ने छन्दस का अर्थ 'सक्कट भाषा' अर्थात् संस्कृत किया है। अतः स्पष्ट है कि बुद्धकाल से पूर्व संस्कृत साहित्यक-प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी थी और उसे लोकभाषा की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त था।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृत पूर्ववर्ती भाषा है। इसे समकालीन कहना भी अयुक्त है। हां इतना अवश्य है कि पालि के विकासकाल में भी संस्कृत काव्यरचना का माध्यम थी और बाद में भी बनी रही। वैयाकरण पाणिनि ने ही 'पाताल विजय' नामक महाकाव्य की रचना की थी लेकिन बुद्धपूर्व संस्कृत काव्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आज उपलब्ध नहीं हैं-- यह दुःखकर विषय है।

पालि और प्राकृत

प्राकृतों का विकास पालि के बाद हुआ है। अशोक के समय में ही लोकभाषा के कम से कम तीन स्वरूप विद्यमान थे-- पूर्वी, पश्चिमी और पश्चिमोत्तरी। इन्हीं रूपों से पांचों प्राकृतें विकसित हुई हैं। पूर्वी रूप से मागधी और अर्द्धमागधी, पश्चिमी से शौरसेनी तथा पश्चिमोत्तरी से पैशाची प्राकृत का विकास हुआ है। महाराष्ट्री प्राकृत परवर्ती है। इसे शौरसेनी का साहित्यिक रूप कहा जा सकता है। साहित्यिक प्राकृत होने से इसमें विभिन्न प्राकृतों के शब्दों एवं तत्त्वों का समावेश होना स्वाभाविक ही है। साहित्यिक भाषा के रूप में मान्यता मिलने से वैयाकरणों ने इसे विशेष महत्त्व दिया है। 'प्राकृतप्रकाश' के लेखक वररुचि ने आठ परिच्छेदों में महाराष्ट्री प्राकृत का विवेचन किया है जबकि शेष प्राकृतों का एक-एक परिच्छेद में। शौरसेनी की केवल प्रमुख प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराकर 'शेषं महाराष्ट्रीवत्' लिख दिया है।

पालि और प्राकृत में अनेक समानताएं हैं। वस्तुतः पालि में जिन परिवर्तनों का प्रारम्भ हुआ था, प्राकृतों में उनका अधिकाधिक विकास देखने को मिलता है इसलिए दोनों में संमानता स्वाभाविक है। दोनों भाषाओं में निम्न बातें समान ही हैं--

(१) दोनों ही भाषाओं में ए, ओ, ळ और ळ्ह ध्वनियां मिलती हैं किन्तु ऐ, औ, ऋ, ॠ, और ऌ का प्रयोग नहीं मिलता।

(२) पालि के समान प्राकृत में भी द्विवचन नहीं मिलता। निय प्राकृत में अपवादस्वरूप कुछ द्विवचनात्मक प्रयोग अवश्य मिलते हैं।

(३) पालि के समान प्राकृतों में भी आत्मनेपदी धातुओं तथा व्यंजनान्त शब्दों की मात्रा घट रही थी।

(४) पालि के समान प्राकृत में तत्सम शब्दों की संख्या घट रही थी। परवर्ती प्राकृत में तो तत्सम शब्दों की संख्या अत्यल्प रह गयी है।

(५) विसर्ग का प्रयोग पालि और प्राकृत दोनों में ही नहीं मिलता।

उक्त समानताओं से स्पष्ट है कि पालिकाल में आर्यभाषा में परिवर्तन की जो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी वह परवर्तीकाल में और तेज होती गयी। दोनों भाषाओं की समानताओं के पश्चात् उनकी असमानताओं पर भी विचार कर लेना चाहिए। ये निम्नांकित हैं--

(१) पालि में ऊष्म वर्णों में केवल **स** का प्रयोग मिलता है जवकि शौरसेनी प्राकृत में **श, ष, स,** महाराष्ट्री में **श** और **स,** मागधी में केवल **श** तथा शेष में **स** का प्रयोग मिलता है।

(२) प्राकृतों में न का ण के रूप में विकास हुआ है, अपभ्रंश में यह प्रवृति और भी अधिक विकसित हुई है जबकि पालि में ऐसा नहीं मिलता।

(३) पालि पूर्णतः संयोगात्मक भाषा है जबकि प्राकृतों में वियोगात्मकता के लक्षण दिखने लगते हैं जैसे पालि का 'रामस्स घरं' प्राकृत में 'रामस्स केरक घरं' रूप में मिलता है।

(४) पालि में जो ध्वनिपरिवर्तन प्रारम्भ हुए थे, उनकी गति प्राकृतों में बहुत अधिक हो गयी है। आत्मनेपद तथा व्यंजनान्त शब्दों की संख्या प्रायः नहीं के बराबर रह गयी है।

(५) पालि में धातुओं का अर्थ बहुत सुरक्षित था जबकि प्राकृतों में ऐसा नहीं मिलता।

पालि का ध्वनिसमूह

आचार्य मोग्गल्लान ने पालि भाषा में तैंतालिस वर्ण माने हैं--'अआदयो तितालीस वण्णा' किन्तु वैयाकरण कच्चायन 'अक्खरादयो एक चालीसं' कहकर इकतालीस वर्णों को ही मान्यता देते हैं। आचार्य मोग्गल्लान स्वरों में ह्रस्व **ए** और **ओ** को भी स्वीकारते हैं। वे संयुक्त वर्णों से पूर्व **ए** और **ओ** को ह्रस्व कहते हैं। यह व्यावहारिक दृष्टि से युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। अतः वैयाकरण कच्चायन का मत ही अधिक उचित है। वे पालि में इकतालिस वर्ण मानते हैं जिनमें आठ स्वर, एक निग्गहीत (अनुस्वार) तथा तैंतीस व्यंजन हैं। पालि में निग्गहीत (अनुस्वार) को व्यंजनों में माना गया है लेकिन संस्कृत के प्रभावस्वरूप इसे विद्वान् कभी स्वरों में रख देते हैं, कभी व्यंजनों में तथा कभी दोनों से पृथक्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि के ध्वनिसमूह का वर्गीकरण इस प्रकार है--

स्वर--

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ

व्यंजन--

क, ख, ग, घ, ङ,	(कण्ठ्य)
च, छ, ज, झ, ञ,	(तालव्य)
ट, ठ, ड, ढ, ण,	(मूर्धन्य)
त, थ, द, ध, न,	(दन्त्य)
प, फ, ब, भ, म,	(ओष्ठ्य)
य, र, ल, व,	(अन्तस्थ)
स,	(ऊष्म)
ह,	(प्राणध्वनि)
ळ,	(अतिरिक्त ध्वनि)
अं,	(निग्गहीत)

संस्कृत वर्णमाला से तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि पालि में संस्कृत की ऋ, ॠ, लृ, ऐ, औ, विसर्ग, श, ष, ध्वनियां छोड़ दी गयी हैं। ळ ऐसी ध्वनि है जो पालि में उपलब्ध है लेकिन उसे संस्कृत ने ग्रहण नहीं किया। संस्कृत की जिन ध्वनियों को पालि ने ग्रहण नहीं किया, उनके स्थान पर पालि में अन्य ध्वनियों से ही काम चलाया जाता है। यहां ऐसी ध्वनियों पर संक्षिप्त दृक्पात कर लेना चाहिए।

(१) संस्कृत की ऋ और ॠ के स्थान पर पालि में अ, इ और उ से काम निकाला जाता है। आज उत्तर प्रदेश के हिन्दी भाषी उच्चारण में ऋ का रि से (ऋषि > रिषि या रिशि) तथा महाराष्ट्र की मराठी भाषा रु से (ऋषि > रुषि या रुशि) काम चलाते हैं। यही प्रवृत्ति पालि में उच्चारण तथा लेखन दोनों में पायी जाती है। यथा--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(क) घृत > घत, वृक > वक, मृग > मग
(ख) कृत > कित, ऋद्धि > इद्धि, वृश्चिक > विच्छिक
(ग) ऋजु > उजु, ऋतु > उतु, पृच्छति > पुच्छति

(२) ऌ का प्रयोग संस्कृत साहित्य में ही बहुत कम देखने को मिलता है। पालि में इसके स्थान पर उ का प्रयोग होता है यथा--

क्लृप्त > कुत्त, क्लृप्ति > कुत्ति

(३) संस्कृत की ऐ तथा ओ ध्वनियां पालि में क्रमशः ए और ओ में बदल जाती हैं। कहीं-कहीं इ और उ से भी काम चलाया जाता है। जैसे--

(क) वैनतेयः>वेनतेय्यो, वैयाकरणः>वेय्याकरणो, शेवः>सेब्बो,
(ख) कौशिकः>कोसिओ, औदुम्बरं>ओदुम्बरं, दौवरिकः>दोवारिको,
(ग) सैन्धवः > सिन्धवो, ग्रैवेयं > गीवेय्यं, गैरिक > गेरुक
(घ) औत्सुक्य>उत्सुक, मौक्तिकम्>मुक्तिकं, कौसिद्य>कोसज्ज

(४) पालि में विसर्ग का सर्वत्र अभाव है। इसके स्थान पर अकारान्त शब्दों के अन्त में ओ का प्रयोग मिलता है। शब्द के मध्यस्थित विसर्ग का समावेश आगे आने वाले व्यंजन में हो जाता है। शेष शब्दों में इसका पूर्णतः लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ--

(क) देवः > देवो, बुद्धः > बुद्धो, धर्मः > धम्मो,
(ख) दुःख > दुक्ख, दुःशील > दुस्सील,
(ग) अग्निः > अग्नि, धेनुः > धेनु

(५) पालि में श और ष के स्थान पर भी स का ही प्रयोग होता है। जैसे--

(क) श्वसुरं > ससुरं, क्रोशं > कोसं, निवेशनं > निवेसनं
(ख) कृषि > कसि, मानुषः > मानुसो, परिवेषणा > परिवेसना,

(६) पालि में र वर्ण तो है लेकिन इसका स्वररहित प्रयोग नहीं किया जाता, इसलिए रेफ कई रूपों में परिवर्तित होता है। वर्ण के नीचे लगने वाले रेफ का प्रायः लोप हो जाता है, वर्ण के ऊपर लगने वाला रेफ अगले वर्ण को द्वित्व प्रदान करके स्वयं लुप्त हो जाता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। रेफ की इन विभिन्न स्थितियों को उदाहरण सहित समझ लेना आवश्यक है--

(क) अश्रुमुखा > अस्सुमुखा, व्रतसम्पन्नः > वतसम्पनो, प्रमोदः > पमोदो,

(ख) वर्णाः > वण्णा, दुर्मना > दुम्मना, धर्मः > धम्मो

(ग) निर्हृत्य > नीहरित्वा, निर्हारयेत > नीहरापेथ

(७) संयुक्त वर्ण क्ष, त्र, ज्ञ भी पालि में नहीं मिलते। इनके स्थान पर अन्य ध्वनियों से काम चलाना पड़ता है। क्ष के स्थान पर प्रायः ख, क्ख, छ या च्छ, त्र के स्थान पर प्रायः त, त्त या त्थ और ज्ञ के स्थान पर प्रायः ञ या ञ्ञ से काम निकाला जाता है। उदाहरणार्थ--

(क) क्षीरम् > खीरं, चक्षु > चक्खु, क्षुल्लः > छुल्लो, पक्षः > पच्छोः,

(ख) पुत्रम् > पुत्तं या पुतं, अत्र > अत्थ, मित्रम् > मित्तं,

(ग) आज्ञा > अञ्ञा, राज्ञः > रञ्ञो, ज्ञानम् > ञानं,

(८) संस्कृत के श्र और द्य के स्थान पर पालि में क्रमशः स और ज्ज का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ--

(क) श्रावस्ती > सार्वात्थ, श्रामणेरः > सामणेरो, श्रेष्ठः > सेट्ठो,

(ख) विद्या > विज्जा, अद्य > अज्ज, विद्याधरः > विज्जाहरो

ध्वनिपरिवर्तन

संस्कृत भाषा के शब्द पालि में किंचित परिवर्तित रूप में ही प्रयुक्त होते है। यह परिवर्तन प्रायः ध्वन्यात्मक ही होता है। पालि में जिन ध्वनियों का अभाव है उनके स्थान पर प्रयुक्त होने वाली ध्वनियों की चर्चा तो पीछे ही हो चुकी है, यहां उन ध्वनियों का विवेचन किया जा रहा है जो पालि में विद्यमान होने पर भी परिवर्तित हो जाती हैं। पालि में होने वाले इस ध्वनि परिवर्तन का स्वरूप कुछ इस प्रकार है।

स्वरपरिवर्तन

(१) पालि में अ ध्वनि के लिए आ, इ, उ तथा ए ध्वनियां प्रयुक्त होती हैं। यथा--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रत्यमित्रः > पच्चमित्तो, तमिस्रा > तिमिस्सा

निषण्णः > निसिन्नो, चन्द्रमा > चन्दिमा

समुद्गः > सुमुग्गो, कर्मणा > कम्मुना

फल्गु > फेल्गु, शय्या > सेय्या

(२) पालि में आ ध्वनि के लिए अ और ए ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा--

लासिका > लसिका, आचार्यः > आचरियो

मातृका > मेत्तिका

(३) पालि में इ ध्वनि के लिए अ, उ, ए और ओ ध्वनियां प्रयुक्त होती हैं। यथा--

पुष्करिणी > पोक्खरणी, पृथिवी > पठवी

इषु > उसु, राजिलः > राजुलो

विष्णु > वेण्हु, महिषी > महेसी

इक्ष्वाकुः > ओक्काको

(४) पालि में ई ध्वनि के लिए अ और ए ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा--

कौसीद्यम् > कोसज्जं, गृहिणी > घरनी

ईरयति > एरेति, विहिंस > विहेसा

(५) पालि में उ ध्वनि के लिए अ, इ, ए और ओ ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा--

शष्कुली > सक्खली, मुकुल > मकुल

मृदुता > मुदिता, स्नुषा > सुणिसा

डुण्डभ, > डेण्डुभ, प्रामुख्यम् > प्रामोख्यं

पुष्करिणी > पोक्खरणी, उल्का > ओक्का

(६) पालि में ऊ के स्थान पर अ और ओ ध्वनियां प्रयुक्त होती हैं। जैसे--

कूर्परः > कप्परो, गुडूची > गोळोची

(७) पालि में ए ध्वनि के लिए अ और इ ध्वनि का प्रयोग होता है। यथा--

मलेच्छ > मिलक्ख, केयूरम् > कायूरं

प्रतिवेश्यक > पटिविस्सक, प्रसेवक > पसिब्बक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(८) पालि में ओ ध्वनि के लिए उ और ऊ ध्वनि का प्रयोग होता है। यथा--

गोनाम् > गुन्नं, नीलोत्पलम् > नीलुप्पलं

विशोक > विसूक

(९) पालि में कहीं-कहीं ह्रस्व स्वर का दीर्घ और कहीं दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है। यथा--

मुनीन्द्रः > मुनिन्दो, चूर्णः > चुण्णो, कवीन्द्रः > कविन्दो

जीर्णः > जिण्णो, नीडम् > निड्डं

सिंहः > सीहो, संरम्भः > सारम्भो

निर्याति > नीयाति, विंशति > वीसति

(१०) पालि में कभी-कभी आदि स्वर का लोप भी हो जाता है। यथा--

अपि > पि, इति > ति

अदकम् > दकं

व्यंजनपरिवर्तन

(१) पालि में क के स्थान पर प्रायः ख, ग, ट, व और य का प्रयोग होता है। यथा--

कीलः > खीलो, शुनकः > सुनखो

प्रतिकृत्य > पटिगच्च, मूकः > मूगो

कुन्दः > चुन्दो, शुकः > सुवो

कक्कोलम् > टक्कोलं, भिषक् > भिसक्को

कौशिकः > कोसियो, स्वकम् > सयं

लौकिक > लोकिय,

(२) पालि में ग ध्वनि के स्थान पर क और घ ध्वनियों का प्रयोग भी मिलता है। यथा--

तडागः > तळाको, कुलोपकः > कुलूपको

गृहम् > घरं, गृहीत्वा > घेत्तूण

(३) पालि में घ ध्वनि के स्थान पर प्रायः ख और ह ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा--

परिघः > पलिखो, प्राघुणः > पाहुणो

लघुकः > लहुको

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(४) पालि में च के लिए ज और त ध्वनि का प्रयोग मिलता है। यथा--

लकुचम् > लबुजं, स्रुच् > सुजा

चिकित्सति > तिकिच्छति

(५) पालि में ज ध्वनि के लिए च, द और य का प्रयोग मिलता है। यथा--

प्राजनम् > पाचनं, प्राजयति > पाचेति

जुगुप्सा > दिगुच्छा, प्रसेनजित् > पसेनदि

निजम् > नियं

(६) पालि में ट ध्वनि के लिए ठ, ड, ल और ळ में परिवर्तित हो जाती है। यथा--

कण्टकम् > कण्ठकं, स्फटिक > फलिक

आटविक > आळविक, पटहः > पड़हो

(७) पालि में ड ध्वनि के लिए ळ ध्वनि का भी प्रयोग होता है। यथा--

जड़ः > जळो, तडागः > तळाको

(८) पालि में त ध्वनि के लिए प्रायः ट, थ और द ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा--

आर्त > अट्टो, तषः > थुसो,

उताहो > उदाहु, वितस्ति > विदत्थि

(६) पालिभाषा में थ के स्थान पर कभी-कभी त, ट और ठ का प्रयोग भी देखा जाता है। यथा--

कथिका > कतिका

अर्थ > अट्ठो, ग्रन्थि > गण्ठि

(१०) पालि में द के स्थान पर प्रायः ट, ड, त, य आदि ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। यथा--

दंशः > डंसो, दाहः > डाहो

कुसीदः > कुसीतो, चेदिः > चेति

खादितः > खायितो, दोहदः > दोहळो

(११) पालि में ध ध्वनि के लिए द, भ, ह और ळ्ह ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा--

अधिरोहण > अभिरोहण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रुधिरम् > रुहिरं, साधुः > साहु

क्षुधा > खुदा, द्वैधकं > द्वेळ्हकं

(१२) पालि में प ध्वनि के स्थान पर कहीं-कहीं क और व का प्रयोग मिलता है। यथा--

पतन्तः > वडन्ता, पिपिलकः > किपिल्लको

(१३) पालि में फ के स्थान प ध्वनि का प्रयोग होता है। यथा--

स्फोटयति > पोटेति, कफोणिः > कपोणि

(१४) पालि में ब के स्थान पर प, भ और व ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा--

पापः > पावो, कपित्थः > कवित्थो

लाबु > लापु, प्रावरणम् > पापुरणं

बुसम् > भुसं, अलाबुः > अलापु

(१५) पालि में भ के स्थान पर प्रायः ध और ह ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा--

अभिप्रायः > अधिप्पायो, अभिमान > अधिमान

प्रभूतम् > पहूतं, प्रभवति > पहोति, भूत्वा > हुत्वा

(१६) पालि में य ध्वनि के लिए प्रायः ल और व का प्रयोग मिलता है। यथा--

आयुधः > आवुधो, जरायु > जरावु

यष्टिः > लट्ठि

(१७) पालि में र ध्वनि के स्थान पर ल ध्वनि का प्रयोग भी मिलता है--

रुद्रः > लुद्दो, राहुल > लाधुल

रुक्ष > लुक्ख,

(१८) पालि में ह ध्वनि के स्थान पर ध और भ का प्रयोग भी मिलता है--

इह > इध, गह्वर > गब्भर

(१९) पालि में पद के आदि में नीचे लगने वाला रेफ प्रायः लुप्त हो जाता है तथा ऊपर लगने वाले रेफ का लोप होने पर व्यंजन का द्वित्व हो जाता है, कहीं-कहीं य से पूर्व के रेफ का रिय भी हो जाता है। यथा--

क्रीतः > कीतो, त्रिपिटकं > तिपिटकं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रक्रमः > पक्कमो, धर्मः > धम्मो
दुर्मना > दुम्मना, कार्यम् > करियं
कदर्यम् > कदरियं, मौर्य > मोरिय

(२०) पालि में पद के आदि में स्थित द्य का ज तथा मध्यस्थित द्य का ज्ज हो जाता है। यथा--

द्युतिः > जुति, अद्य > अज्ज
विद्यते > विज्जते, विद्या > विज्जा

(२१) पालि में पद के आदिस्थित ध्य का झ, त्य का च, ज्ञ का ञ तथा मध्यस्थित ध्य का ज्झ, त्य का च्च तथा ज्ञ का ञ्ञ हो जाता है। यथा--

ध्यानम् > झानं, त्यागो > चागो
त्यजति > चजति, ज्ञानम् > ञानं
बुध्यते > बुज्झते, प्रत्ययः > पच्चयो
नृत्यम् > नच्चं, प्रज्ञा > पञ्ञा, सत्यम् > सच्चं
संज्ञा > संञ्ञा

(२२) पालि में न्य तथ ण्य ध्वनियों का ञ्ञ हो जाता है। जैसे--

अन्यम् > अञ्ञं, शून्यम् > सुञ्ञं
हिरण्यम् > हिरञ्ञं, पण्य > पञ्ञं

(२३) पालि में ष्ट और ष्ठ के स्थान पर ट्ठ, स्त के स्थान पर थ, त्थ या त्त हो जाता है। यथा--

दुष्टः > दुट्ठो, तुष्टः > तुट्ठो
षष्ठः > छट्ठो, स्तनम् > थनं
स्तम्भः > थम्भो, हस्ति > हत्थी
दुस्तरं > दुत्तरं, पुष्टः > पुट्ठो

(२४) पालि में स्था का थ या ठ, प्त का त्त, प्स का च्छ तथा स्ख का ख हो जाता है। उदाहरणार्थ--

स्थूलः > थूलो, स्थानम् > ठानं
प्राप्तः > पत्तो, अप्सरा > अच्छरा
स्खलनम् > खलनं, स्तोकम् > थोकं, ठोकं

(२५) पालि में ष्क का क्क या क्ख, ब्ध का द्द, त्र का त्थ तथा ण्ट का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ण्ड हो जाता है। यथा--

चतुष्कः > चतुक्को, पुष्कर > पोक्खर
लुब्धकः > लुद्दको, अत्र > अत्थं,
तत्र > तत्थ, निघण्टु > निघण्डु

(२६) पालि में त्स का च्छ, च्य का च, ग्य का ग्ग, स्म का म्ह हो जाता है। तथा--

कुत्सित > कुच्छित, मत्सर > मच्छर
च्युतो > चुतो, सौभाग्य > सोभग्ग
अस्माकम् > अम्हाकं, युस्माकम् > तुम्हाकं

(२७) पालि में अन्तिम स्वररहित व्यंजन का लोप हो जाता है। यथा--

देवात् > देवा, पश्चात् > पच्छा, भगवान् > भगवा

(२८) पालि में स्वररहित अन्त्य म का अनुस्वार तथा अकारान्त शब्द के बाद के विसर्ग का ओ हो जाता है। यथा--

धर्मम् > धम्मं, कण्टकम् > कण्ठकं
बुद्धः > बुद्धो, कीलः > खीलो

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय द्वितीय

सन्धि और समास

सन्धि

'सन्धि' शब्द का अर्थ है मेल। दो शब्दों के मेल को सन्धि कहते हैं। इस प्रकरण में प्रथम पद के अन्त और द्वितीय पद के प्रारम्भ में होने वाले स्वर-व्यंजनों के परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। पालि भाषा में यह ध्वनि-परिवर्तन संस्कृत के समान एक निश्चित दिशा में नहीं चलता, बल्कि अनेक विकल्प लिये रहता है, इसीलिए पालि के सन्धि-नियमों में भी सुनिश्चित व्यवस्था का अभाव है। लगता है, विविध परिवर्तनों को सूचीबद्ध कर दिया गया है।

पालि के दोनों प्रमुख वैयाकरणों-मोग्गल्लान और कच्चायन-ने सन्धियों का विभाग नहीं किया है। भिक्षु जगदीश काश्यप ने अध्येताओं की सुविधा को दृष्टि में रखते हुए अपने 'पालि महाव्याकरण' में सन्धियों का विभाग प्रस्तुत किया है। यद्यपि पालि में निग्गहीत (अनुस्वार) को व्यंजनों के अन्तर्गत माना जाता है तथापि सन्धि-प्रकरण में उसे स्वर-व्यंजनों से पृथक् महत्त्व दिया गया है। इस प्रकार सन्धियों के तीन भेद किये गये हैं-स्वरसन्धि, व्यंजनसन्धि, निग्गहीतसन्धि।

स्वरसन्धि

जब प्रथम शब्द का अन्तिम और दूसरे शब्द का आदि वर्ण स्वर हो तो उन दोनों शब्दों की सन्धि 'स्वर सन्धि' कहलाती है। इस सन्धि के कई प्रकार हैं। यहां इनका संक्षिप्त सोदाहरण विवेचन किया जा रहा है।

१. सरो लोपो सरे-यदि स्वर वर्ण से परे असमान स्वर हो तो कभी-कभी पूर्व स्वर का लोप हो जाता है। यथा--

यस्स + इन्द्रियाणि = यस्स् = इन्द्रियाणि = यस्सिन्द्रियाणि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तत्र + इमे = तत्र् + इमे = तत्रिमे

सद्धा + इन्द्रियं = सद्ध् + इन्द्रियं = सद्धिन्द्रियं

तथा + एव = तथ् + एव = तथेव

भिक्खुनो + ओवादो = भिक्खुन् + ओवादो = भिक्खुनोवादो

समेतु + आयस्मा = समेत् + आयस्मा = समेतायस्मा

महा + ओघो = मह् + ओघो = महोघो

अज्ज + अपोसथो = अज्ज् + अपोसथो = अज्जुपोसथो

अभिभू + आयतनं = अभिभ् +आयतन = अभिभायतनं

एसो + आवुसो = एस् + आवुसो = एसावुसो

उदधि + ऊमियो = उदध् + ऊमियो = उदधूमियो

असन्तो + एत्थ = असन्त् + एत्थ = असन्तेत्थ

२. परो क्व चि–यदि स्वर वर्ण से परे असमान स्वर हो तो कभी-कभी पर स्वर का लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ--

चत्तारो + इमे = चत्तारो + मे = चत्तारोमे

यतो + अहं = यतो + हं = यतोहं

आकासे + इव = आकासे + व = आकासेव

वसलो + इति = वसलो + ति = वसलोति

सो + अपि = सो + पि = सोपि

छाया + इव = छाया + व = छायाव

ते + अहं = ते + हं = तेहं

३. न द्वे वा–यदि स्वर वर्ण से परे असमान स्वर हो तो कभी-कभी पूर्व या पर दोनों में से किसी स्वर का लोप नहीं होता। कभी-कभी पूर्ववत् वैकल्पिक स्थिति भी बनी रहती है। यथा--

लता + इव = लताइव, लताव और लतेव भी बनता है। पूर्व स्वर का लोप हो (नियम १ के अनुसार) और परे इ तथा उ हो तो कभी-कभी इ का ए तथा उ का ओ हो जाता है। यथा--

वात + ईरित = वात् ईरित = वातेरित

तस्स + इदं = तस्स् + इदं = तस्सेदं

मुख + उदकं = मुख् + उदकं = मुखोदकं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाम + उरु = वाम् + उरु = वामोरु

चन्द + उदयं = चन्द् + उदयं = चन्दोदयं

५. **यवा सरे**-यदि इ तथा उ से परे असमान स्वर हो तो कभी-कभी उनका क्रमशः य और व हो जाता है। उदाहरणार्थ--

वि + अकासि = व्य् + अकासि = व्याकासि

अग्गि + आगारं = अग्ग्य् + आगारं = अग्ग्यागारं

सु + आगतं = स्व् + आगतं = स्वागतं

वत्थु + एव = वत्थ्व् + एव = वत्थ्वेव

अपवाद-कभी-कभी यह नियम प्रभावी नहीं होता है। जैसे--

गच्छामि + अहं = गच्छामहं

कभी-कभी य के स्थान पर इय् और व के स्थान पर इव् होता है। जैसे--

पंचमी + अत्थे = पंचमियत्थे

परि + एसना = परियेसना

पुथु + आसने = पुथुवासने

६. **ए ओ नं**-यदि ए और ओ से परे असमान स्वर हो तो कभी-कभी उसका क्रमशः य और वा हो जाता है। जैसे--

ते + अहं = त्याहं, विकल्प से तेहं भी

सो + अहं = स्वाहं, विकल्प से सोहं भी

सो + अस्स = स्वस्स

मे + अयं = म्यायं, विकल्प से मेयं भी

७. **गोस्सावङ्**-यदि 'गो' शब्द से परे कोई स्वर आवे तो 'गो' को 'गव' आदेश हो जाता है। यथा--

गो + अस्सं = गव + अस्सं = गवास्सं

८. **दीर्घ**-यदि स्वर से परे असमान स्वर होने के कारण पूर्व स्वर का लोप हो जाता है (नियम १ के अनुसार) तो परस्वर विकल्प से दीर्घ हो जाता है। मोग्गल्लान ने इस सन्धि का विवेचन नहीं किया। उदाहरण प्रस्तुत हैं--

दुक्खो + अयं = दुक्ख् + अयं = दुक्खायं

सचे + अहं = सच् + अहं = सचाहं

तदा + उपसम्मत्ति = तद् + उपसम्मत्ति = तदूपसम्मत्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९. पुब्बो च-यदि स्वर से परे असमान स्वर होने के कारण परस्वर का लोप होता है (नियम २ के अनुसार) तो पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है यदि वह ह्रस्व हो। इसका विवेचन भी मोग्गल्लान ने नहीं किया है।

देव + इति = देव + ति = देवाति

वि + अतिमानेति = वि + तिमानेति = वीतिमानेति

किंसु + इधयित्त = किंसु + धयित्त = किंसूधयित्त

लोकस्स + इति = लोकस्स + ति = लोकस्साति

१०. यदि अ, इ और उ से परे समान स्वर आए तो दोनों मिलकर दीर्घ हो जाते हैं। यह संस्कृत व्याकरण का नियम है। पालि में व्याकरण में इस नियम का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु भाषा इसका पालन करती है। जैसे--

ञाण + आलोकेन = ञाणालोकेन

देमि + इति = देमीति

बुद्ध + अनुस्सति = बुद्धानुस्सति

सम्मन्ति + इध = सम्मन्तीध

बहु + उपकारं = बहूपकारं

व्यंजन सन्धि

जब पूर्व शब्द के अन्तिम या पर शब्द के आदि में से कम से कम एक व्यंजन हो तो ऐसे शब्दों की सन्धि व्यंजन सन्धि कहलाती है। पालि में व्यंजन सन्धि के नियम संस्कृत व्याकरण की अपेक्षा बहुत कम हैं। यहां कुछ प्रमुख नियमों का सोदाहरण संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है--

१. व्यञ्जने दीघरस्सा-यदि पूर्व स्वर से परे व्यंजन हो तो प्रायः पूर्व स्वर में ह्रस्व को दीर्घ एवं दीर्घ को ह्रस्व हो जाता है। यथा--

मुनि + चरे = मुनीचरे

सम्म + धम्म = सम्माधम्म

खन्ति + परमं = खन्तीपरमं

जायति + सोको = जायतीसोको

माला + भारी = मालभारी

भोवादी + नाम = भोवादिनाम

यथाभावी + गुणेन = यथाभाविगुणेन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. सरम्हा द्वे-यदि स्वर से परे व्यंजन हो तो कभी-कभी उस स्वर का द्वित्व हो जाता है। उदाहरणार्थ--

प + गहो = पग्गहो, दु + कतं = दुक्कतं

यथा + कमं = यथाक्कमं, इध + पमादो = इधप्पमादो

३. चतुत्थदुतियेस्वेसं ततिय पठमा-यदि किसी भी वर्ग का चतुर्थ तथा द्वितीय वर्ण स्वर के बाद आए तो चतुर्थ तथा द्वितीय वर्ण अपने वर्ग के क्रमशः तृतीय एवं प्रथम वर्ण में बदल जाता है। यथा-नि + घोसो में द्वित्व होकर निघ्घोसो होना चाहिए था लेकिन इस नियम से प्रथम घ अपने ही वर्ग के तृतीय वर्ग ग में बदल गया और 'निग्घोसो' शब्द निष्पन्न हो गया।

अ + खन्ति = अख्खन्ति = अक्खन्ति

नि + ठानं = निठ्ठानं = निट्ठानं

अ + फुटं = अफ्फुटं = अप्फुटं

सेत + छत्तं = सेतछ्छत्तं = सेतच्छत्तं

यस + थेरो = यसथ्थेरो = यसत्थेरो

महा + धनो = महाध्धनो = महद्धनो

४. एओनम वण्णे-यदि ए और ओ के बाद कोई भी वर्ण हो तो ए और ओ का कहीं-कहीं 'अ' हो जाता है। जैसे--

सो + सीलवा = स सीलवा, एसो + अत्थो = एस अत्थो

एसो + धम्मो = एस धम्मो, याचके + आगते = याचकमागते

५. वितिस्सेवे वा-यदि इति शब्द के बाद एव शब्द आता हो तो इति को विकल्प से इत्व आदेश हो जाता है। यथा--

इति + एव = इत्वेव, विकल्प से इच्चेव भी

निग्गहीत सन्धि

वैसे पालि भाषा में निग्गहित (अनुस्वार) को व्यंजनों में ही माना जाता है किन्तु सन्धि-प्रकरण में उससे सम्बद्ध सन्धि-नियमों को व्यंजन सन्धि में न रखकर, स्वतंत्र रूप से रखा जाता है। इस वर्ग के प्रमुख नियम यहां सोदाहरण दिए जा रहे हैं--

१. निग्गहीतं-सन्धि करते समय कहीं-कहीं निग्गहीत (अनुस्वार) का आगम हो जाता है। उदाहरणार्थ--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चक्खु + उदपादि = चक्खुं उदपादि

त + सभावो = तंसभावो

अव + सिरो = अवंसिरो

पुरिम + जाति = पुरिमं जाति

अणु + थुलानि = अणुं थुलानि

२. **लोपो**-कहीं-कहीं पूर्व शब्द के अन्त में विद्यमान निग्गहीत (अनुस्वार) का सन्धि होने पर लोप हो जाता है। यथा--

बुद्धानं + शासनं = बुद्धानसासनं

येसं + अहं = येस + अहं = येसाहं

कथं + अहं = कथ + अहं = कथाहं

विदूनं + अग्गं = विदून + अग्गं = विदूनग्गं

३. **वग्गे वग्गन्तो**-यदि निग्गहीत (अनुस्वार) से परे कोई वर्गीय व्यंजन आता है तो कभी-कभी उस निग्गहीत (अनुस्वार) के स्थान पर वर्ग का पंचम वर्ण हो जाता है। यथा--

तं + करोति = तङ्करोति, तं + चरति = तञ्चरति

तं + ठानं = तण्ठानं, तं + पाति = तम्पाति

तं + धनं = तन्धनं

४. **परस्सरस्स**-कभी-कभी निग्गहीत (अनुस्वार) से परे आने वाले स्वर का लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ--

किं + इदानि = किन्दानि, अलं + इदानि = अलंदानि

त्वं + असि = त्वंसि, अभिनन्दुं + इति = अभिनन्दुंति

विकल्प से किमिदानि, अलमिदानि, त्वमसि, अभिनन्दु इति भी।

५. **येवहि सुञ्ञो**-यदि निग्गहित के बाद या, एव तथा हि शब्द आते हैं तो निग्गहित (अनुस्वार) विकल्प से ञ में परिवर्तित हो जाता है। जैसे--

यं + यदेव = यञ् + यदेव = यञ्ञदेव

तं + एव = तञ् + एव = तञ्ञेव

तं + हि = तञ् + हि = तञ्हि

६. **ये संस्स**-य शब्द परे होने पर सं शब्द के निग्गहित का विकल्प से ञ हो जाता है। उदाहरणार्थ--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सं + युत्तं = सञ् + युत्तं = सञ्ञुत्तं

सं + यमो = सञ् + यमो = सञ्ञमो

सं + योग = सञ् + योग = सञ्ञोग

विकल्प से संयुत्त, संयमो तथा संयोग भी।

७. **मयदासरे**-स्वर परे होने पर कभी-कभी निग्गहित म, य तथा द में भी परिवर्तित हो जाता है। यथा--

तं + अहं = तम + अहं = तमहं

एतं + अवोच = एतदवोच

तं + इदं = तमिदं, विकल्प से तयिदं भी

तं + अलं = तमलं

८. **छा ळो**-यदि छ शब्द के बाद कोई भी स्वर आवे तो विकल्प से ळ् का आगम हो जाता है। यथा--

छ + अंगं = छळङ्गं

छ + आयतनं = छळायतनं, छ + अभिञ्ञा = छळभिञ्ञा

९. **यवतरगा चागमा**-स्वर यदि बाद में रहे तो विकल्प से म, य, द, व, न, त, र और ग का आगम होता है। यथा--

लहु + एस्सति = लहुयेस्सति

चिरं + आयाति = चिरन्नायाति

इतो + आयादि = इतो नायादि

अज्ज + अग्गे = अज्जतग्गे

अत्त + अत्यमभिञ्ञाय = अत्तदत्थमभिञ्ञाय

ति + अङ्गिकं = तिवङ्गिकं

भन्ता + उदिक्खति = भन्तावुदिक्खति

१०. **तवग्गवरणानं ये चवग्गबयञा**-यदि 'य' बाद में हो तो तवर्ग (त, थ, द, ध और न) का चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) तथा व्, र्, ण् को क्रमशः ब्, य् ञ् आदेश होता है। यथा--

यदि + एवं = यद् + य् + एवं = यज्जेवं

अधि + अत्तं = अध् + य् + अत्तं = अज्झतं

परि + एसना = पर् + य् + एसना = पय्येसना

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पोक्खरणी + यो = पोक्खरञी + यो = पोक्खरञ्ञो

११. तदमिनादीनि-निम्नलिखित सन्धि निपात हैं--

तं + इमिना = तदमिना

सकिं + आगामी = सकदागामी

एकं + इध = अहं = एकमिदाहं

संविधाय + अवहारो = संविदावहारो

वारिनो + वाहको = वलाहको

जीवन + मूतो = जीमूतो

छव + सयनं = सुसानं

समास

समास का शब्दार्थ है संक्षेप। चूंकि यह पदों का होता है इसलिए 'पद-संक्षेप' कहना अधिक उचित होगा। दो या दो से अधिक विभक्तियुक्त भिन्नार्थक पदों का एकार्थीभाव समास कहलाता है। समास में शब्द और अर्थ दोनों का एकीकरण आवश्यक है। एकीकरण की इस प्रक्रिया में कभी पूर्व पदार्थ प्रधान हो जाता है तो कभी द्वितीय पदार्थ, कभी दोनों ही प्रधान हो जाते हैं तो कभी दोनों से इतर पदार्थ। संस्कृत में इस पद-प्रधानता पर बहुत विचार किया गया है लेकिन अन्य भारतीय आर्यभाषाओं ने इसे विशेष महत्त्व नहीं दिया है।

पालि व्याकरण में समास के प्रयोजन पर भी विचार किया गया है। 'रूप-सिद्धि' शीर्षक पुस्तक में कहा गया है कि समास का प्रयोजन एकपदत्व तथा एकविभक्तत्व है। वस्तुतः एकपदत्व ही एकविभक्तित्व है। समास में जो दो विभक्तियुक्त पद समस्त होतें हैं उन दोनों की विभक्तियां लुप्त हो जाती हैं और प्रकृतिमात्र अवशिष्ट रहती है। तदुपरान्त उन दोंनों के अंशों को अन्य नामों के समान ही विभक्ति, लिंग, वचन आदि प्रदान किया जाता है। संस्कृत में समस्त पदों में सन्धि अनिवार्य मानी जाती है, किन्तु पालि में कभी-कभी इस नियम की अवहेलना भी कर दी जाती है।

संस्कृत और पालि में समास के स्वरूप तथा भेदों में मूलतः कोई अन्तर नहीं है किन्तु पालि में कभी-कभी संस्कृत नियमों के विपरीत प्रयोग भी देखे जाते हैं। उक्त दोनों भाषाओं के सन्धि-नियमों में अन्तर होने के कारण समासों में भी विभिन्नता आ जाती है। संस्कृत के समान पालि में भी समास के छः भेद माने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जाते हैं--(१) अव्ययीभाव, (२) तत्पुरुष, (३) कर्मधारय, (४) द्विगु, (५) द्वन्द्व और (६) बहुव्रीहि। पालि में कभी-कभी स्वतंत्र प्रकृति वाले समास भी दिखते हैं।

(१) अव्ययीभाव (असंख्य)

अव्ययीभाव में जिन दो पदों का समास होता है उनमें प्रथम पद प्रायः अव्यय रहता है और दूसरा पद संज्ञा। समास होने पर यह पद (समस्त पद) अव्यय के समान प्रायः नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन में प्रयुक्त होता है। ध्वनि परिवर्तन के अतिरिक्त, संस्कृत, पालि तथा हिन्दी में इस समास में कोई अन्तर नहीं है।

इसके प्रमुख नियम निम्नलिखित हैं--

(१) विभिक्त, सम्पत्ति, साकल्य अभाव, यथा, पश्चात् और युगपद-इन अर्थों में अव्यय के साथ यह समास होता है। आचार्य मोग्गल्लान ने इसे इस प्रकार सूत्रबद्ध किया है-'असंख्यं विभत्तिसम्पत्तिसाकल्या-भावयथापच्छायुगपदत्थे' इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं--

विभक्ति- इत्थीसु कथा पवत्ता-अधि इत्थी (अधित्थि)

सम्पत्ति- सम्पन्नं ब्रह्मं-सब्रह्मं

समिद्धि भिक्खानं-सुभिक्खं

समीप- नगरस्स समीपं-उपनगरं

गंगाय समीपं-उपगंगं

साकल्य- सह तिणेन-सतिणं

अभाव- मक्खिकानं अभावो-निम्मक्खिकं

अतिगतानि तिणानि-नित्तिणं

यथा- रूपस्स योग्गं-अनुरूपं

सत्तिं अनतिकम्म-यथासत्ति

पश्चात्- रथस्स पच्छा-अनुरथं

युगपद- सहचक्केन-सचक्कं

(२) अवधारण (इतना) के अर्थ में 'याव' शब्द के साथ यह समास होता है। मोग्गल्लान के शब्दों में 'यावावधारो'। यथा--

याव जीवो ताव-यावजीवं (आजीवन)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(३) परि, अप, आ, वहि, तिरो, पुरे, पच्छा-इन शब्दों को पंचम्यन्त शब्दों के साथ समास होता है और वैकल्पिक रूप से द्वितीयान्त शब्दों के साथ भी (पच्चपाबाहितिरो पुरे पच्छावा पञ्चम्या)। इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं--

परिपब्बतं वस्सि देवो	-	परिपब्बता
अपपब्बतं वस्सि देवो	-	अपपब्बता
आपाटलिपुत्तं वस्सि देवो	-	आपाटलिपुत्ता
बहिगामं वस्सि देवो	-	बहिगामा

(४) ओरे, उपरि, पटि, पारे, मज्झे, हेट्ठ, उद्ध, अधो, अन्तो-इन शब्दों का षष्ठ्यन्त शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है। मोग्गल्लान का सूत्र है--'ओरेपरिपटिपारेमज्झेहेट्ठुद्धान्तो वा छट्ठिया।' इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं--

गंगाय ओरे	-	ओरे गंगं
सिखरस्स उपरि	-	उपरिसिखरं
सोतस्स पटि	-	पटिसोतं
यमुनाय पारे	-	पारेयमुनं
गंगाय मज्झे	-	मज्झेगंगं
पासादस्स हेट्ठा	-	हेट्ठापासादं
पासादस्स अत्तो	-	अत्तोपासादं
गंगाय अधो	-	अधोगंगं

इन्हीं शब्दों के तत्पुरुष के आधार पर गंगओरं (गंगोरं), सिखरोपरि, गंगअधो (गंगाधो) आदि रूप भी बनेंगे।

(५) कुछ निपात समास भी होते हैं।

तिट्ठन्ति गावों यस्मिं काले	-	तिट्ठकालो
वहन्ति गावो यस्मिं काले	-	वहग्गुकालो
आयन्ति गावो यस्मिं काले	-	आयतिगवं
खले यवा यस्मिं काले	-	खलेयवं
लूयमाना यवा यस्मिं काले	-	लूनयवं

(६) सामीप्य और आयाम (विस्तार) के अर्थ में अनु उपसर्ग के साथ भी अव्ययीभाव समास होता है (समीपायामेस्वनु)। उदाहरणार्थ--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवनं असनि गता। अनुगंगं वाराणसी।

पर सं - परोसतं

पर सहसं - परोसहस्सं

(२) तत्पुरुष (तप्पुरिस)

जहां दो पदों का समास होने पर पूर्व पद की विभक्ति का लोप हो जाता है, वहां तत्पुरुष समास होता है। यह विभक्ति द्वितीया से लेकर सप्तमी तक हो सकती है। इसी आधार पर तत्पुरुष के छः भेद किए जाते हैं। यहां इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

द्वितीया - अरञ्ञंगतो-अरञ्ञगतो

गामंगतो-गामगतो

मुहुतसुखं-मुहुतसुखं

सुखं पत्तो- सुखपत्ते

तृतीया - असिना छिन्नो-असिच्छिन्नो

बुद्धेन भासितो-बुद्धभासितो

सुखेन सहगतं-सुखसहगतं

बिज्जुना ताडितो-बिज्जुताडितो

तृतीया तत्पुरुष में कहीं-कहीं मध्यपद का लोप भी हो जाता है। उदाहरणार्थ--

दधिना उपासित्तं भोजनं-दधिभोजनं

गुळेन मिस्सो ओदनं-गुळोदनं

चतुर्थी - यूपाय दारु-यूपदारु

रजनाय दोणि-रजनदोणि

पञ्चमी - गामस्मानिग्गतो-गामनिग्गतो

रुक्खस्मा पतितो-रुक्खपतितो

सासनम्हा चुतो-सासनचुतो

षष्ठी-षष्ठी तत्पुरुष में पूर्वपद में विद्यमान अन्त्य ई और ऊ ह्रस्व में परिवर्तित हो जाते हैं। इसके उदाहरण प्रस्तुत हैं--

नदीया तीरं-नदितीरं

चन्दनस्स गन्धो-चन्दनगन्धो

रञ्ञो पुरिसो-राजपुरिसो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नदीया सोतो-नदिसोतो

सप्तमी - अरञ्ञे वासो-अरञ्ञवासो

दाने अभिरतो-दानभिरतो, दानाभिरतो

धम्मे लीनो-धम्मलीनो

कुछ अन्य तत्पुरुष

(१) **अलुक् तत्पुरुष**-इसमें पूर्वपद की विभक्ति का लोप नहीं होता जो तत्पुरुष की प्रधान विशेषता है। अलुप्त विभक्ति के साथ ही उत्तर पद का समास हो जाता है। जैसे--

उरसि लोमा अस्ति इति - उरसिलोमो

पभं करोति इति - पभंकरो

अन्ते वसति इति - अन्तेवासी

(२) **उपपद तत्पुरुष**-इसमें दूसरा पद धातु रूप होता है और समास होने पर जहां पूर्वपद की विभक्ति का लोप होता है वहां उत्तर पद की न केवल विभक्ति वल्कि धातु का भी कुछ अंश लुप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ--

उरसा गच्छति इति - उरगा

पादेन पिबति इति - पादपो

कुम्भं करोति इति - कुम्भकारो

(३) कर्मधारय (कम्मधारय)

जहां विशेषण और विशेष्य पदों का समास होता है, उसे कर्मधारय समास कहा जाता है। उदाहरण के लिए--

नीलञ्च तं उप्पलं - नीलुप्पलं (नीलोत्पल)

खत्तिया च सा कञ्ञा चाति - खत्तियकञ्ञा

लोहितञ्ञ तं चन्दनञ्चाति - लोहितचन्दनं

सीलमेव धनं - सीलधनं

'न' के साथ विभक्तियुक्त शब्द का समास होने पर कर्मधारय ही होता है। इसे कुछ विद्वान् न्यञ् समास भी कहते हैं। यथा--

न अस्स कुलमत्थि इति - नकुलो

न अस्स खमत्थि इति - नखो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न ओकासं	–	अनोकासं
न ब्राह्मणो	–	अब्राह्मणो
न अक्खातं	–	अनक्खातं

'कु', 'प' आदि के साथ विभक्तियुक्त शब्दों का समास होने पर कर्मधारय समास होता है। उत्तरपद स्वर से आरम्भ हो तो 'कु' को 'कद' तथा अल्पार्थ में प्रयुक्त होने पर 'कु' को 'का' आदेश हो जाता है। उत्तरपद 'पुरिस' होने पर कु को विकल्प से 'का' आदेश होता है। इसके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

कुत्सितो ब्राह्मणो	–	कुब्राह्मणो
कु लवणं	–	कालवणं
कु पुरिसो	–	कापुरिसो, विकल्प से कुपुरिसो भी
पग्गतो आचरियो	–	पाचरियो
अतिक्कन्तो मञ्चं	–	अतिमञ्चो
अवकुट्ठं कोकिलाय वनं	–	अवकोकिलं
परिगिलानो अज्झेनाय	–	परियज्झेनो
निग्गतो कोसम्बिया	–	निक्कोसम्बि

(४) द्विगु

जहां पूर्व पद संख्यावाची विशेषण हो उसे द्विगु समास कहा जाता है। यह नपुसकलिंगांत होता है। कुछ विचारक इसे कर्मधारय का ही अंग मानते हैं जबकि दूसरे स्वतंत्र समास मानने के पक्षधर हैं। स्वरूप की स्पष्टता के लिए इसे स्वतंत्र मानना ही अधिक युक्तिसंगत है। वैयाकरण मोग्गल्लान ने इसका विवेचन कर्मधारय के अन्तर्गत ही किया है।

द्विगु के दो भेद होते हैं-समाहार द्विगु और असमाहार द्विगु। समाहार द्विगु समूहवाचक होता है। यह उल्लिखित वस्तुओं के समूह का ज्ञान कराता है। उदाहरणार्थ--

पञ्चन्नं गुन्नं समाहारो	–	पञ्चगवं
द्विन्नं रत्तीनं समाहारो	–	द्विरत्तं
तिन्नं लोकानं समाहारो	–	तिलोकं
चतुन्नं सच्चानं समाहारो	–	चतुसच्चं

असमाहार द्विगु समूहवाचक नहीं होता, बल्कि उससे उल्लिखित संख्या वाले

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यक्तियों या पदार्थों का बोध होता है। इसे एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। 'चार दिशा' की व्याख्या यदि यों की जाए कि 'चारों दिशाओं का समूह' तो समाहार द्विगु होगा किन्तु यदि इसे 'चार दिशाएं' इस रूप में स्पष्ट किया जाए जो केवल चार दिशाओं (पृथक्-पृथक्) का बोध कराता है तो इसे असमाहार द्विगु कहा जायेगा। इसके कुछ उदाहरण देना प्रसंग प्राप्त है--

चतस्सो दिसा	-	चतुदिसा
तयो भवा	-	तिभवा
पञ्च इन्द्रियाणि	-	पञ्चिन्द्रियाणि

(५) द्वन्द्व (द्वन्द)

द्वन्द्व में दोनों पद प्रधान होते हैं। यह और (च) के अर्थ में होता है जिसका समास होने पर लोप हो जाता है। इसके दो प्रमुख भेद हैं। इतरेतर द्वन्द्व और समाहार द्वन्द्व। इतरेतर द्वन्द्व में जिन दो पदार्थों या व्यक्तियों का समास होता है, वे अपना महत्त्व पृथक्-पृथक् रखते हैं तथा समस्त पद का वचन दोनों पदों के संयुक्त वचन के अनुसार होता है। उदाहरणार्थ--

समणो च ब्राह्मणो च	-	समणब्राह्मणा
चन्दिमो च सुरियो च	-	चन्दिमसुरिया
अग्गी च धूमो च	-	अग्गिधूमा
धम्मो च अत्थो च	-	धम्मत्था
यमो च वरुणो च	-	यमवरुणा
ब्राह्मणो च गहपतिको च	-	ब्राह्मणगहपतिका
देवा च मनुस्सा च	-	देवमनुस्सा
मुखं च नासिकं च	-	मुखनासिक

समाहार द्वन्द्व में दोनों पद मिलकर समूह को व्यक्त करते हैं। अतः प्रायः नपुंसकलिंग और एकवचन में प्रयुक्त होते हैं। प्राणी या सेना के अंगों, नित्य बैरियों, क्षुद्र जन्तुओं, ग्रंथों और नदियों के अर्थों में यह समाहार द्वन्द्व होता है। उदाहरणार्थ--

कीटं च पतंगं च तेसं समाहारो	-	कीटपतंगं
चक्खुं च सोतं च तेसं समाहारो	-	चक्खुसोतं
काको च उलूको च तेसं समाहारो	-	काकोलूकं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मुरजं च गोमुखं च तेसं समाहारो - मुरजगोमुखं
गीतं च वादितं च तेसं समाहारो - गीतवादितं
असि च चम्मं च तेसं समाहारो - असिचम्मं

(६) बहुव्रीहि (बहुव्रीहि)

बहुव्रीहि समास अन्य पद-प्रधान है। इसमें पूर्व पद तथा उत्तर पद मिलकर किसी अन्य व्यक्ति या पदार्थ का बोध कराते हैं-जैसे पीताम्बर (पीत+अम्बर) यदि यह पीले कपड़े को व्यक्त करे तो कर्मधारय समास होगा लेकिन बहुव्रीहि में 'पीला है कपड़ा जिसका' यह विग्रह होकर, यह कृष्ण को द्योतित करेगा। इस प्रकार कृष्ण का भाव न पीत शब्द में है और न अम्बर में, वल्कि यह दोनों शब्दों से भिन्न वस्तु या व्यक्ति ही है। मोग्गल्लान और कच्चायन दोनों ही वैयाकरणों ने अपनी परिभाषा में अन्यार्थ की प्रधानता को ही स्वर दिया है। यहां बहुव्रीहि के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं--

जितानि इन्द्रियानि येन सो - जितिन्द्रियो
लम्बा कण्णो यस्स सो - लम्बकण्णो
छिन्ना हत्थ यस्स सो - छिन्नहत्थो
अत्थिखीरं यस्सा सो - अत्थिखीरा
दक्खिणस्सा च पुब्बस्सा च दिसाय यदन्तरालं - दक्खिण-पुब्बादिसा
कल्याण भरिया यस्स सो - कल्याणभरिया
दीघा जङ्घा यस्स सो - दीघजङ्घो
चन्दो विय मुखं यस्सा सा - चन्दमुखी
कुमारी भरीया यस्स सो - कुमारभरिया
दण्डोहत्थे यस्स सो - दण्डहत्थो
पञ्ञा एव बलं यस्स सो - पञ्ञबलो
न सन्ति पुत्ता अस्स - अपुत्तो

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय तृतीय

कारक

पद या रूप दो तत्त्वों से मिलकर बनता है जो प्रातिपदिक और प्रत्यय कहलाते हैं। इन्हें ही आज भाषाविज्ञान की शब्दावली में क्रमशः अर्थतत्त्व और सम्बन्ध तत्त्व कहा जाता है।

पालि रूप 'रामस्स' का विश्लेषण करने से ये दोनों घटक स्पष्ट हो जाएंगे। इसमें 'राम' मूल प्रातिपदिक है जो किसी संबंध को नहीं बताता, बल्कि वस्तुमात्र का अस्तित्व सिद्ध करता है। इसके साथ जुड़ा हुआ 'स्स' अंश प्रत्यय है जो राम का संबंध बताता है। इस अंश से ही संबंध कारक तथा एकवचन की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार प्रथम अंश केवल अर्थ को द्योतित करता है और द्वितीय अंश संबंध मात्र को। इसी प्रकार धातु रूप 'पठति' में 'पठ' अंश पढ़ने की क्रिया को व्यक्त करता है और 'ति' वर्तमान काल, प्रथम पुरुष और एकवचन को। निष्कर्षतः मूल शब्द या प्रातिपदिक में संबंध विशेष को द्योतित करने के लिए कुछ प्रत्यय या विभक्तियाँ जोड़ी जाती हैं, अतः संबंधविषयक अर्थ विभक्तियों के अपने अर्थ हैं। इन अर्थों का संबंध क्रिया से होने के कारण ये अर्थ ही कारक कहलाते हैं। कभी तो विभक्तियाँ कारक को बताती हैं और कभी कुछ विशेष शब्दों के योग कारक से भिन्न रहकर अर्थ व्यक्त कर देते हैं। इन्हें क्रमशः कारक विभक्ति और उपपद विभक्ति कहते हैं।

पालिभाषा में भी संस्कृत के समान सात ही विभक्तियाँ होती हैं। सम्बोधन को 'आलपन' कहा जाता है और इसमें प्रायः प्रथमा का ही प्रयोग होता है। पालि में विभक्तियाँ संस्कृत से कुछ भिन्न रूप में प्रयुक्त होती हैं। अतः इन्हें यहां संक्षेप में समझ लेना चाहिए।

प्रथमा विभक्ति (पठमा विभत्ति)

१. कर्तृवाच्य के कर्ता में अथवा प्रातिपदिक के अर्थमात्र का ज्ञान कराने में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। यथा--

(क) बुद्धो धम्मं पकासति-बुद्ध धर्म को प्रकाशित करते हैं।

(ख) अग्गि, फलानि आदि

२. आमन्त्रण (सम्बोधन) में 'आलपन विभत्ति' का प्रयोग होता है जिसमें प्रथमा विभक्ति ही लगती है। जैसे--

भो पुरिस ! किं त्वं सीलं न रक्खसि?

द्वितीया विभक्ति (दुतिया विभत्ति)

१. कर्तृवाच्य के कर्म में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है। यथा--

सूदो आदेनं पचति-पाचक चावल बनाता है।

बालो आदिच्चं पस्सति-बच्चा सूर्य को देखता है।

२. क्रिया, गुण तथा द्रव्य के लगातार होने पर समय तथा दूरीवाचक शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है। उदाहरणार्थ--

सामणेरो मासं धम्मं पठति-श्रामणेर एक मास धर्म पढ़ता है।

भच्चो कोसं गच्छति-नौकर एक कोस जाता है।

३. धि (धिक्कार), **अन्तरा** (बीच), **पति** (प्रति), **बिना, अभितो** (दोनों ओर), **उभयतो** (दोनों ओर), **परितो** (चारों ओर), **सब्बतो** (सब ओर) **आदि के योग में** द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे--

धिरत्थु मं अलसं पुत्तं	- मुझ आलसी बेटे को धिक्कार है।
न सिज्झति धम्मो विरियं बिना	- पुरुषार्थ के बिना धर्म सफल नहीं होता।
अन्तरा च राजगहं अन्तरा च नालन्दा	- राजगृह और नालन्दा के बीच।
भूपं अन्तरेन पासादो न सोभति	- राजा के बिना महल शोभित नहीं होता।
तळागं अभितो रुक्खा तिट्ठन्ति	- तालाब के दोनों ओर वृक्ष खड़े हैं।
गामं उभयतो सरा सोभन्ति	- ग्राम के दोनों ओर तालाब शोभित हैं।
गामं परितो सब्बतो वा खेत्ता	- गांव के चारों ओर खेत हैं।
साधु देवदत्तो मातरं पति	- देवदत्त मां के प्रति भला है।

४. संकेत करने, भेद बतलाने, व्याप्त करने तथा भाग होने के अर्थ में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभि, पति (प्रति), यदि और अनु शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। उदाहरणार्थ--

पब्बतं अभिजलति अनलो-पर्वत की ओर आग लगी है।

सो रुक्खं रुक्खं अभितिट्ठति-वह वृक्ष-वृक्ष के नीचे खड़ा होता है।

देवदत्तो पसन्नो बुद्धमनु-देवदत्त बुद्ध के अनुकूल है।

साधु देवदत्तो मातरं परि-देवदत्त मां के प्रति भला है।

रुक्खमनु विज्जोतते विज्जु-वृक्ष की ओर बिजली चमकती है।

एतं भागं मं परिभवति अनुभवति वा-वह भाग मेरे हिस्से का है।

५. साथ होने के अर्थ में, अनु के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा--

आचरियं अनुगच्छति सिस्सो-शिष्य आचार्य के साथ जाता है।

सो पुत्तं अनुगच्छति-वह पुत्र के साथ जाता है।

६. रिते (ऋते), बिना तथा अञ्ञत्र (अन्यत्र) शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। उदाहरणार्थ--

सधम्मं रिते अञ्ञो को धम्मो जने रक्खति-सद्धर्म के बिना कौन अन्य धर्म रक्षा कर सकता है।

जलं बिना रुक्खो सुक्खति-पानी के बिना वृक्ष सूख जाता है।

रामं अञ्ञत्र को अञ्ञो लोकरक्खको-राम के बिना कौन अन्य लोकरक्षक है?

७. कभी-कभी तृतीया, षष्ठी और सप्तमी के अर्थ में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा--

सचे मं समणो गोतमो नालपिस्सति।

अपिस्सु मं अग्गिवेस्सन तिस्सो उपमायो पटिभंसु।

एकं समये भगवा सावत्थियं विहरति।

तृतीया विभक्ति (ततिया विभत्ति)

१. कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के कर्ता में, करण कारक तथा क्रियाविशेषण में तृतीया विभक्ति होती है। यथा--

कर्मवाच्य - रञ्ञा धनं दीयते-राजा द्वारा धन दिया जाता है।
बालेन चन्दो दिस्सति-बालक द्वारा चन्द्रमा देखा जाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कारण कारक- दण्डेन गोपालो गावो पाचेति-ग्वाला दण्ड से गायों को हांकता है।

दण्डेन सप्पं पहरति-दण्ड से सर्प पर चोट करता है।

दुचक्केन गामं याति-साइकिल से गांव जाता है।

क्रिया विशेषण-गोत्तेन गोतमो-गोत्र से गौतम है।

माणवो पापको नाम नामेन-बालक नाम से पापक है।

भाववाच्य-बालकेहि अत्र भूयते-लड़के यहां मौजूद हैं।

सब्बेहि अत्र भूयेयय-सबको यहां उपस्थित होना चाहिए।

२. सह (साथ) बोधक शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे--

पुत्तेन सद्धि आगतो - पुत्र के साथ जाता है।

सिस्सेहि सह समं वा

आगच्छति आचरियो - आचार्य शिष्य के साथ आता है।

३. तुल्य के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है, विकल्प से षष्ठी भी मान्य है। उदाहरणार्थ--

आचरिय सदिसो सिस्सो - शिष्य आचार्य के समान है।

जनकेन तुल्यो पुत्तो - पुंत्र पिता के समान है।

'आचारियस्स सदिसो सिस्सो' तथा 'जनकस्स तुल्यो पुत्तो' भी ठीक है।

४. लक्षण तथा हेतु के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। यथा--

लक्षण-तिदण्डेन परिव्बाजको बुज्झति- त्रिदण्ड से संन्यासी समझा जाता है।

रामो नयनेन काणो पादेन खञ्जो अत्थि- राम आंख से काणा तथा पैर से लंगड़ा है।

हेतु-सो अन्नेन इध वसति - वह यहां अन्न के लिए रहता है।

धम्मेन यसो बड्ढति - धर्म से यश बढ़ता है।

५. बिना और अञ्ञत्र (अन्यत्र) के योग में तृतीया विभक्ति होती है। विकल्प से द्वितीया भी होती है। यथा--

जलेन बिना रुक्खो सुक्खति- जल के बिना वृक्ष सूख जाता है।

धम्मेन अञ्ञत्र को अञ्ञे सहायको- धर्म के अलावा और कौन सहायक है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६. **पुथ (पृथक्) और नाना (भिन्न) शब्दों के योग में** तृतीया विभक्ति होती है। उदाहरणार्थ--

पुथेगेन गामेन सो अरञ्ञं अधिवसति - गांव से दूर वह अरण्य में रहता है।

सोगतधम्मेन नानातित्थियधम्मो - सुगत धर्म से भिन्न ही तैर्थिको का धर्म है।

७. कभी-कभी सप्तमी के स्थान पर भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। यथा--

तेन खो पुन समयेन भगवा सत्ताहं एक पल्लङ्केन निसिन्नो होति-उस समय भगवान् एक सप्ताह एक ही पलंग पर पड़े रहे।

चतुर्थी विभक्ति (चतुत्थी विभत्ति)

१. **सम्प्रदान में** चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा--

ब्राह्मणानं भोजनं ददाति-ब्राह्मणों को भोजन देता है।

याचकस्स भिक्खं ददाति-याचक को भीख देता है।

२. **'उसके लिए'** इस अर्थ में भी चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है यथा--

लोकहिताय बुद्धोधम्मं पकासति- लोकहित के लिए बुद्ध धर्म को प्रकाशित करते हैं।

सूदो पाकाय भोजनघरं गच्छति-पाचक खाना बनाने के लिए रसोई जाता है।

माणवकानं अनज्झायो रुच्चति-बच्चों को अनध्याय अच्छा लगता है।

३. **सिलाघ, हनु, ठा, सप, धार, पिट, कुछ, दुह, इस्स-इन धातुओं के प्रयोग में कारक की सम्प्रदान संज्ञा होती है** अतः चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ--

बुद्धस्स अञ्ञतित्थिया पिहयन्ति।

उपतिट्ठेयय सक्यपुत्तान बड्ढकी।

दुहयति दिसानं मेघो। मय्हं सपते।

सुवण्णं ते धारये। देवदत्तस्स कोधयति।

पञ्चमी विभक्ति

१. **अपादान कारक में** पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गहपतिको चोरस्मा रक्खति-गृहपति चोरों से रक्षा करता है।

पापा चित्ता निवारये-पाप से चित्त हटाता है।

माणवो गामस्मा आगच्छति-विद्यार्थी गांव से आता है।

२. रक्षणार्थक धातुओं के योग में जिससे रक्षा की जाए, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। उदाहरणार्थ--

काकेहि रक्खन्ति तण्डुला-कौओं से चावलों की रक्षा करते हैं।

३. वर्जन के अर्थ में 'अप' और 'परि' शब्दों के योग में पञ्चमी विभिक्त होती है। यथा--

अप पाटलिपुत्तस्मा वुट्ठो देवो।

परि पाटलिपुत्तस्मा वुट्ठो देवो।

४. प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ वाले 'पति' के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे--

बुद्धस्मा पति सारिपुत्तो-सारिपुत्र बुद्ध के प्रतिनिधि हैं।

घतं तेलस्मा पति ददाति-तेल लेकर घी देता है।

५. रिते (ऋते), **बिना, अञ्ञत्र** (अन्यत्र), **पुथ** (पृथक्) तथा **नाना** (भिन्न) शब्दों के योग में विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा--

रामस्मा रिते अञ्ञो को जनो रक्खति।

रामस्मा अञ्ञत्र को अञ्ञो लोकरक्खको।

जलस्मा बिना रुक्खो सुक्खति।

पुथगेव गामस्मा सो अरञ्ञं अधिवसति।

सोगतधम्मस्मा नाना तित्थियधम्मो।

६. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर भी पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग पालि साहित्य में देखा जाता है। यथा--

अननुबोधा अप्पटिवेधा चतुन्नं अरियसच्चानं यथाभूतं अदस्सना।

षष्ठी विभक्ति (छट्ठी विभत्ति)

१. सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा--

आचारियस्स पुत्तो अत्थि-आचार्य का पुत्र है।

तिट्ठन्ति धम्मस्स ञातारो-धर्मज्ञ विद्यमान हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. जाति, गुण और क्रिया की दृष्टि से जहां अनेक में से एक का निर्धारण किया जाए, वहां षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे--

मनुस्सानं खत्तियो सेट्ठो-मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है।

दानानं धम्मदानं सेट्ठं-दानों में धर्मदान श्रेष्ठ है।

कण्हा गावीनं सम्पन्नखीरतमा-कृष्णा गायों में अधिक दूध देने वाली श्रेष्ठ है।

३. हेतु अर्थ वाले शब्दों के योग में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। यथा--

उदरस्स हेतु इध वसति।

४. पालि में कभी-कभी द्वितीया, तृतीया, पंचमी या सप्तमी के स्थान पर भी षष्ठी का प्रयोग देखा जाता है। यथा--

न तेसं कोचि सरति-उन्हें कोई स्मरण नहीं करता।

एवं में सुतं-ऐसा मैंने सुना है।

सब्बे तसन्ति दंडस्स-सभी दंड से डरते हैं।

द्वे यक्खा भगवतो पसन्ना अंहसु-दो पक्ष भगवान पर प्रसन्न हुए।

सप्तमी विभक्ति (सत्तमी विभत्ति)

१. क्रिया के आधार पर (अधिकरण) में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा--

सामणेरो अरञ्ञे अधिवसति।

सकुणा आकासे विचरन्ति।

माणवका उय्याने विहरन्ति।

२. जिस निमित्त से कोई क्रिया सम्पन्न की जाये, उस निमित्त में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे--

कुञ्जरो दन्तेसु हञ्जते।

अजिनम्हि मिगं हञ्जति।

३. जो क्रिया अन्य क्रिया का संकेत करती हो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है--

आचरियं आगते सिस्सा उट्ठन्ति।

गावीसु दय्हमानासु गतो।

४. जहां बहुत सी वस्तुओं में से एक का निर्धारण किया जाए, वहां विकल्प से सप्तमी विभक्ति होती है। उदाहरणार्थ--

दुजेसु ब्राह्मणो सेट्ठो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चतुप्पदेस्तु सीहो, मच्छेसु आनन्दमच्छो, सकुणेसु सुवण्णहंसो मानुसेसु नपो सेट्ठो।

५. अधिक होने के अर्थ में उपशब्द तथा स्वामी होने के अर्थ में अधि के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा--

उपनिक्खे कहापणं-कर्षापण निष्क से अधिक है।

अधि पञ्चालेसु ब्रह्मदत्तो-ब्रह्मदत्त पांचालों का अधिपति है।

६. हेतु अर्थ का ज्ञान करानेवाले शब्दों के योग में 'सब्बः' आदि सर्वनाम के साथ सभी विभक्तियां हो सकती हैं। यथा--

किं कारणं। केन कारणेन। कस्स हेतुस्स।

कस्मा हेतुस्मा। कस्स पयोजनस्स। कस्मिं पयोजनस्मिं।

७. कभी-कभी चतुर्थी और पंचमी के स्थान पर भी सप्तमी का प्रयोग पालिभाषा में देखा जाता है। जैसे--

संघे दिन्नं महप्फलं-संघ को दान देना महाफल है।

कदलीसु गजे रक्खति- केलों से हाथियों को नचाते हैं।

संस्कृत और पालि कारक

संस्कृत और पालि के कारकों में अद्भुत साम्य दिखाई देता है। वस्तुतः दोनों लगभग समकालीन तथा एक ही स्थान पर विकसित हुई हैं और स्रोत भी दोनों का प्रायः समान ही है, अतः यह साम्य आश्चर्यजनक नहीं है। यदि विभिन्न कारकों की सामान्य विशेषताओं को छोड़ भी दिया जाए तो भी दोनों भाषाओं के कारकों में बहुत अधिक साम्य है। संस्कृत व्याकरण में हा, धिक्, उभयतः, परितः, सर्वतः, अभितः आदि शब्दों के योग में द्वितीया, सहबोधक शब्दों के अर्थ में तृतीया, तुल्यार्थ में तृतीया और षष्ठी, पृथक्, बिना और नाना के योग में द्वितीया, तृतीया और पंचमी का विधान किया गया है। उक्त शब्दों के योग में पालि व्याकरण में भी इन्हीं विभक्तियों का निर्देश मिलता है। जैसे अंगविकार में तृतीया, निर्धारण में षष्ठी और सप्तमी आदि। सारतः दोनों भाषाओं के कारकों में बहुत साम्य है। मौलिक अन्तर बहुत ही कम है, नगण्य ही है।

विभक्तियों के साम्य के साथ उदाहरणों में भी काफी निकटता है। इस दृष्टि से पालि व्याकरण संस्कृत का बहुत ऋणी है। अनेक उदाहरण उसने संस्कृत से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिये हैं और ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ प्रस्तुत कर दिये हैं। 'मासं गुड़धाना', 'क्रोश गिरिः', 'क्रोशं कुटिला नदी', 'चर्मणि द्वीपिनं र्हान्त दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरं', 'गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा', 'गोषु दुहयमानासु गतः' आदि संस्कृत व्याकरण के लब्धप्रतिष्ठ उदाहरण हैं जो पालि व्याकरण में भी यथावत् स्वीकार किये गये हैं।

पालि के प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य मोग्गल्लान और संस्कृत व्याकरण के मुख्याधार पाणिनि के नियमों (सूत्रों) की भाषा में भी पर्याप्त साम्य है जिसे देखकर स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य मोग्गल्लान को न केवल पाणिनीय व्याकरण का अच्छा ज्ञान था, बल्कि उनके व्याकरणिक विवेचन पर भी उसका भरपूर प्रभाव पड़ा है। आचार्य मोग्गल्लान के अनेक नियम (सूत्र) पाणिनि-सूत्रों के पालि रूपान्तर से लगते हैं। उदाहरणस्वरूप 'कालद्धानमच्चन्तसंयोग' (कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे), 'लक्खणे', (इत्थं भूतलक्षणे), 'हेतुम्हि' (हेतौ), 'तादत्थ्ये' (तादर्थ्ये चतुर्थीवाच्या) 'छट्ठी हेत्वत्थेहि' (षष्ठी हेतुप्रयोगे) 'यतो निद्धारणं' (यतश्च निधारणं), 'छट्ठी अनादरे' (षष्ठी चानादरे), 'यब्भावो भावालक्खणं' (यस्य च भावेन भावलक्षणम्) आदि सूत्रों को लिया जा सकता है जो न केवल भाव, बल्कि भाषा की दृष्टि से भी अभिन्न हैं।

संस्कृत और पालि के कारकों में अत्यधिक साम्य के उपरान्त भी कुछ विभिन्नताएँ हैं। संस्कृत ने जहां प्रादेशिक प्रयोगों को अपाणिनीय (अमान्य) स्वीकारा है वहां पालि ने इन्हें महत्त्व दिया है। यही कारण है कि पालि में एक के स्थान पर अन्य कारक भी प्रयुक्त मिलते हैं। कुछ उदाहरण देकर इसे संपुष्ट करना आवश्यक है। सप्तमी के स्थान पर द्वितीया, तृतीया और षष्ठी का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है-'एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डकस्स आरामे' (एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डकस्स आरामे), 'तेन खो पन समयेन अञ्ञातकोण्डञ्ञो निसिन्नो होति' (तस्मिन् खलु पुनः समये अज्ञातकोण्डण्यो निषण्णो भवति), 'द्वे यक्खा भगवतों पसन्ना अहेंसु' (द्वौ यक्षौ भगवति प्रसन्नौ आस्ताम्)। तृतीया के स्थान पर द्वितीया, पञ्चमी और षष्ठी के प्रयोग के भी उदाहरण प्रस्तुत हैं-'सो मं आलपिस्सति' (स मया आलपिष्यति), 'अननुबोधा अप्पटिवेधा चतुन्नं अरियसच्चानं यथाभूतं अदस्सना' (अननुबोधेन, अप्रतिव्यधेन चतुर्णामार्यसत्यानां यथाभूतमदर्शनेन), 'एवं में सुत्तं (एवं मया श्रुतम्)। पञ्चमी के स्थान पर षष्ठी और सप्तमी का एक-एक उदाहरण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

देकर इस प्रसंग को समाप्त करना ही अधिक संगत होना-'सब्बे तसन्ति दण्डस्स' (सर्वे त्रसन्ति दण्डात्), 'कदलीसु गजे रक्खन्ति' (कदलीभ्यो गजान् रक्षन्ति)। उक्त सोदाहरण विवेचन का प्रयोजन यही बताना है कि अनेकरूपता, जो पालिभाषा ने अपनी उपजीव्य भाषा वैदिक संस्कृत से ग्रहण की है, कारकों में भी दृष्टिगत होती है। यही विभिन्नता पालि कारकों को संस्कृत से भिन्न बना देती है क्योंकि संस्कृत ने केवल प्रमुख रूप को मान्यता देकर शेष सभी प्रादेशिक रूपों या विशेषताओं को अपाणिनीय (अशुद्ध) ही माना है।

इस संक्षिप्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि संस्कृत और पालि के कारकों में अत्यधिक साम्य है। पालि में कुछ प्रयोग ही संस्कृत नियमों के विपरीत पाये जाते हैं। वैयाकरण मोग्गल्लान ने भी संस्कृत भाषा एवं व्याकरण का विधिवत् अध्ययन करके, उसका भरपूर उपयोग करते हुए पालि अध्येताओं की सुविधा के लिए अपना व्याकरण लिखा है। यही कारण है कि उनके सूत्र एवं उदाहरण पालिरूपान्तर जैसे जान पड़ते हैं।

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय चतुर्थ

कृत, तद्धित और स्त्री प्रत्यय

कृत् प्रत्यय

धातु से क्रियापद बनाने वाले तिङ् प्रत्ययों के अतिरिक्त जो भी प्रत्यय धातु से जुड़कर शब्द-निर्माण करते हैं, वे सभी कृत् प्रत्यय कहलाते हैं और इनसे निष्पन्न शब्दों को कृदन्त कहा जाता है। जिस प्रकार तिङ्न्तों से धातु के वाच्य, फल और व्यापार अभिव्यक्त होते हैं उसी प्रकार कृदन्तों से भी। वाच्य, फल और व्यापारविषयक विभिन्नताओं को अभिव्यक्त करने के लिए ही धातुओं में विभिन्न कृत्प्रत्यय लगाये जाते हैं।

यहां पालि के प्रमुख कृत्प्रत्ययों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है--

तब्ब, अनीय और ध्यण्

तब्ब और अनीय संस्कृत प्रत्यय तव्यत् और अनीयर् के ही पालिरूप हैं। यदि इन प्रत्ययों से निष्पन्न संस्कृत शब्दों का पालि नियमों के अनुसार ध्वनि-परिवर्तन कर दिया जाये तो पालि शब्द ही बन जायेंगे। अतः नियमतः कोई भिन्नता नहीं है। भाववाच्य और कर्मवाच्य में धातु से परे 'तब्ब' और 'अनीय' प्रत्यय होते हैं। ये 'चाहिए' अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इसी अर्थ में धातु से ध्यण् प्रत्यय लगता है जिसका 'य' शेष रहता है। उदाहरणार्थ--

भू + तब्ब = भवितब्बं, पठ + तब्ब = पठितब्बं,
गम + तब्ब = गन्तब्बं, हस + तब्ब = हसितब्बं,
कर + तब्ब = कत्तब्बं, कातब्बं, सेव + तब्बं = सेवितब्बं,
भू + अनीय = भवनीयं, हस + अनीय = हसनीयं,
दा + अनीय = दानीयं, पा + अनीय = पानीयं,
कर + अनीय = करणीयं, सु + अनीय = सवनीयं,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कर + ध्यण् = कसरियं, चि + ध्यण् = चेय्यं,
दिट्ठ + ध्यण् = दिट्ठेयं, दा + ध्यण् = देय्यं
वच + ध्यण् = वाक्यं, पा + ध्यण् = पेय्यं,
वज्ज + ध्यण् = वज्जयं, वज्जं, लिह + ध्यण् = लेययं

विशेष

(१) तब्ब, अनीय और ध्यण् प्रत्ययों से निष्पन्न शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ--

रमणीयानि अरञ्ञानि-रमणीय जंगल
पेय्यानि जलानि-पीने योग्य पानी
उपट्ठानीयो सिस्सो-सेवा योग्य शिष्य
कातब्बं कम्मं-करने योग्य कार्य

(२) उक्त प्रत्यय लगने पर इकारान्त और उकारान्त धातुओं के इ और उ को क्रमशः ए और ओ हो जाता है। ब्रू धातु इसका अपवाद है। यथा--

चि + तब्ब = चेतब्बं, जि + तब्ब = जेतब्बं
सु + तब्ब = सोतब्बं, चि + अनीय = चयनीय
सु + अनीयं = सवनीयं, चि + ध्यण् = चेय्यं
जि + ध्यण् = जेय्यं, भू + अनीयं = भवनीयं

(३) धातु के लघु उपान्त इ और उ को क्रमशः ए और ओ हो जाता है। उदाहरणार्थ--

इस + तब्ब = इसितब्बं
कुस + तब्ब = कुसितब्बं

(४) मकारान्त और नकारान्त धातुओं के बाद में, यदि य के अतिरिक्त कोई अन्य व्यंजन हो तो म और न का अनुस्वार हो जाता है। यथा--

गम + तब्ब = गन्तब्बं,
मन + तब्ब = मन्तब्बं,
हन + तब्ब = हन्तब्बं,

तुं, ताये, तवे

ये प्रत्यय संस्कृत के तुमुन् प्रत्यय के ही पालि रूप हैं और इसी के अर्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में प्रयुक्त भी होते हैं। इनमें तुं के रूप ही अधिक बनते हैं, ताये और तवे के बहुत सीमित रूप मिलते हैं। ये प्रत्यय निमित्तार्थक हैं, 'इस कार्य के निमित्त' इस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इनके तु, ताये और तवे शेष रहते हैं। उदाहरणार्थ--

कर + तुं = कातुं, सु + तुं = सोतुं
भुज + तुं = भोत्तुं, वच + तुं = वत्तुं
कर + ताये = कत्ताये, कर + तवे = कातवे
गम + तुं = गत्तुं, खाद + तुं = खादितुं

विशेष

(१) उक्त अर्थों के अतिरिक्त योग्य, समर्थ तथा पर्याप्त आदि अर्थों में भी तुं प्रत्यय होता है। जैसे--

सो निन्दितुं अरहति- वह निन्दा के योग्य है।
माणवो गन्तुं सक्कोति- छात्र जाने में समर्थ है।

(२) कर धातु से तब्ब, तुन और तवे प्रत्यय लगाने पर कर को विकल्प से का आदेश हो जाता है। यथा--

कर + तवे = कातवे, कर + तब्ब = कातब्बं

तून, क्त्वान, क्त्वा, प्य

जब दो धातुओं का एक ही कर्ता होता है तो पूर्वकालिक धातुओं में विकल्प से तुन, क्त्वान और क्त्वा प्रत्यय होते हैं। यहां वर्णित क्त्वान और क्त्वा प्रत्यय संस्कृत के कत्वा प्रत्यय के ही पालिरूप हैं और उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। तून का प्रयोग सीमित ही मिलता है। क्त्वान और कत्वा में मूलतः कोई अन्तर नहीं है, शब्दान्त में कहीं न शेष रह जाता है जिससे क्त्वान हो जाता है। इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं--

सु + तून = सोतून, कर + तून = कातून, गम + तून = गन्तून,
सु + क्त्वान = सुत्वान, जि + क्त्वान = जित्वान
गम + क्त्वान = गत्वान, सु + क्त्वा = सुत्वा
जि + क्त्वा = जित्वा, दा + क्त्वा = दत्वा
धोव + क्त्वा = धोवित्वा, बन्ध + क्त्वा = बन्धित्वा

'प्य' संस्कृत के ल्यप् प्रत्यय का पालिरूप है। संस्कृत में यह क्त्वा के अर्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में ही प्रयुक्त होता है। जहां धातु से पूर्व उपसर्ग हो, वहां क्त्वा को ल्यप् आदेश हो जाता है जिसका 'य' शेष रहता है जैसे- भू+क्त्वा=भूत्वा, परि+भू+क्त्वा= परि+भू+ल्यप्=परिभूय। इसी प्रकार अभिभूय, उपसंक्रम्य, आदाय, अधिकृत्य आदि रूप बनते हैं। पालि का प्य भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है और इसका य शेष रहता है। पालि में यह विकल्प से होता है अर्थात् कहीं क्त्वा के स्थान पर आदेश हो जाता है और कहीं नहीं भी। कहीं-कहीं उपसर्ग पूर्व होने पर भी क्त्वा और प्य दोनों के रूप भी चलते हैं। यथा--

आ + सज + प्य = आसज्ज, नि + धा + प्य = निधाय
आ + दा + प्य = आदाय, उप + सं + कम्म + प्य = उपसंकय

वैकल्पिक रूप--

उ + पाट + क्त्वा = उप्पाटेत्वा (उत्पाट्य)
सं + नि + पत + क्त्वा = सन्निपातेत्वा (सन्निपात्य)
आ + गम + क्त्वा = आगन्त्वा (आगत्य)
उ + धा + क्त्वान = उद्धारत्वान (उद्धृत्य)
प + गह + क्त्वान = पग्गहेत्वान (प्रगृह्य)
उ + गिर + क्त्वान = उच्छरित्वान (उद्गीर्य)

दोनों रूप--

अभि+भू+प्य= अभिभूय, अभि+भू+क्त्वा= अभिभवित्वा
अधि+कर+प्य= अधिकिच्च, अधि+कर+क्त्वा= अधिकरित्वा
उप+सं+कम्म+प्य= उपसंकम्य, उप+सं+कम+क्त्वा= उपसंगमित्वा

विशेष

(१) पालि में धातु से पूर्व उपसर्ग होने पर प्य ही हो, यह आवश्यक नहीं है, कभी-कभी क्त्वा, क्त्वान और कभी प्य तथा क्त्वा, क्त्वान दोनों होते हैं। इनके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं।

(२) कभी-कभी प्य के स्थान पर तुं प्रत्यय भी लग जाता है। यथा--

अभि + हर + तुं = अभिहट्टुं (अभिहरित्वा भी)

(३) उपसर्ग होने पर हन धातु से परे य, या, त्वा को विकल्प से रुच्च (अच्च) आदेश हो जाता है। यथा--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आ + हन + प्य = आहच्च

आ + हन + क्त्वा = आहनित्वा

(४) स, अस और अधि उपसर्ग पूर्व होने पर कर तथा इ धातु को त्वा का विकल्प से च्च हो जाता है। यथा--

सक्कच्च, सक्करित्वा = सत्कार करके

अधिकिच्च, अधिकारित्वा = अधिकार करके

अधिच्च, अधित्वा = पढ़कर

अन

भाव तथा कर्म के अर्थ में अन प्रत्यय होता है। यह संस्कृत के ल्युट् का पालिरूप है। कच्चायन व्याकरण से यह तथ्य अधिक स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने इस अर्थ में यु प्रत्यय का विधान किया है जो अन में परिवर्तित हो जाता है। संस्कृत में ल्युट् का यु शेष रहता है जिसे अन आदेश हो जाता है। इस प्रकार यह अन प्रत्यय संस्कृत के ल्युट् का ही पालिरूप है-यह स्पष्ट हो जाता है। कुछ उदाहरण--

उप + आस + अन = उपासन, दस + अन = दस्सन

गम + अन = गमन, नन्द + अन = नन्दन

दा + अन = दान, भज + अन = भजन

पठ + अन = पठन, नी + अन = नयन

रकारान्त धातु होने पर न का ण हो जाता है--

चर + अन = चरण, भर + अन = भरण

हर + अन = हरण, कर + अन = करण

ल्तु, णक

'इस काम को करने वाला' इस अर्थ में ल्तु और णक् प्रत्यय होते हैं। इनके क्रमशः तुं और अक शेष रहते हैं। कच्चायन अक के स्थान पर ण्वु प्रत्यय मानते हैं जिनका वु शेष रहता है और उस वु को अक आदेश हो जाता है। वस्तुतः यह संस्कृत के ण्वुल् प्रत्यय का पालिरूप है। संसकृत में ण्वुल् का वु शेष रहता है और उस वु को अक आदेश हो जाता है। इन दोनों प्रत्ययों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दा + तु = दातु (दाता), दा + अक = दायक
नी + तु = नेतु (नेता), नी + अक = नायक
सु + तु = सोतु (सोता), सु + अक = सावक
वच + तु = वतु (वत्ता), वच + अक = वाचक
कर + तु = कर्तु (कर्त्ता), कर + अक = कारक
पठ + अक = पाठक, गा + अक = गायक
उप + आस + अक = उपासक, तर + अक = तारक

क्तवन्तु, क्तावी

भूतकाल का अर्थ बताने के लिए सभी धातुओं से क्तवन्तु और क्तावी प्रत्यय लगाते हैं। इनसे निष्पन्न शब्द कर्ता के लिंग एवं वचन के अनुसार ही प्रयुक्त होते हैं। शब्दों में क्तवन्तु का त्वतु और क्तावी का तावी शेष रहता है। इनमें क्तावी के शब्द सीमित ही होते हैं, जबकि क्त्वन्तु प्रत्ययान्त शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। इन प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के नमूने दर्शनीय हैं--

वि + जि + क्तवन्तु = विजितवन्तु, हु + क्तवन्तु = हुतवन्तु
सुस + क्तवन्तु = सुक्खवन्तु, लु + क्तवन्तु = लुनवन्तु
मुच + क्तवन्तु = मुक्कवन्तु, भिद + क्तवन्तु = भिन्नवन्तु
गम + क्तवन्तु = गतवन्तु, पा + क्तवन्तु = पीतवन्तु
वि + जि + क्तावी = विजितावी, हु + क्तावी = हुतावी
भुज + क्तावी = भुत्तावी, वस + क्तावी = वुसितावी

पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग में विजितवन्तु शब्द के रूप गुणवन्तु के समान तथा विजितावी के दण्डी के समान होंगे। स्त्रीलिंग में विजिवन्तु का रूप विजितवती या विजितवन्ती तथा विजितावी का रूप विजिताविनी हो जायेगा तथा उनके रूप स्त्रीलिंग इकारान्त शब्द इत्थी के समान होंगे।

क्त

भूतकाल के अर्थ में कर्म और भाववाच्य में धातु से परे क्त प्रत्यय होता है। वस्तुतः यह संस्कृत का क्त प्रत्यय ही है जो वहां इसी अर्थ में प्रचलित है। पालि में इससे निष्पन्न शब्दों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं--

कर + क्त = कतं, वि + जि + क्त = विजितं,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मुच + क्त = मुक्कं, मुत्तं, पा + क्त = पीतं,
गम + क्त = गतं, जन +क्त = जातं,
यज + क्त = इट्ठं, लू + क्त = लूनं

विशेष

(१) क्त प्रत्यय लगने से निष्पन्न रूप कर्म का विशेषण होता है। यथा--
नगरं विजितं रञ्ञा = राजा द्वारा नगर जीत लिया गया।

(२) भाववाच्य में वह सदैव नपुंसकलिंग एकवचन में रहता है। उदाहरणार्थ--
मया हसितं = मेरे द्वारा हँसा गया।

(३) क्रियारम्भ के अर्थ में कर्तृवाच्य में भी धातु से परे क्त प्रत्यय होता है और यथाप्राप्त कर्म और भाववाच्य में भी।

(४) गमनार्थक और अकर्मक धातुओं से परे आधार के अर्थ में भी क्त प्रत्यय होता है।

(५) भोजनार्थक तथा पानार्थक धातुओं से परे आधार के अर्थ में भी क्त प्रत्यय होता है।

घण

भाव के अर्थ में धातु से परे घण प्रत्यय लगता है। यह प्रैत्यय संस्कृत के घञ् का पालिरूप है। यदि संस्कृत व्याकरण से निष्पन्न घञ् प्रत्ययान्त शब्द का पालि रूपान्तर कर दिया जाये तो स्वरूप वही बनेगा जो पालि व्याकरण से निष्पन्न दिखाया जाता है। उदाहरणार्थ संस्कृत धातु त्यज् से घञ् प्रत्यय लगाकर त्याग शब्द निष्पन्न होगा। इसका पालिरूपान्तरण करने पर चागो रूप बनता है। पालि व्याकरण से भी चागो रूप ही बनेगा। पालि में घण से कुछ शब्द इस प्रकार बनेंगे--

कुध + घण = कोध	खिद + घण = खेद
तप + घण = ताप	लुभ + घण = लोभ
त्रस + घण = त्रास	दह + घण = दाह
पत + घप = पात	भर + घण = भार
भुज + घण = भोज	मुद + घण = मोद

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'घ' अनुबंध वाले प्रत्यय लगने से धातु के अन्त्य च को क तथा ज को ग हो जाता है। यथा--

पच + घण = पाक सुच + घण = सोक
भुज + घण = भोग युज + घण = योग
रुज + घण = रोग

तद्धित प्रत्यय

धातुओं से प्रत्यय लगाकर जो शब्द निष्पन्न होते हैं, वे कृदन्त कहलाते हैं। निष्पन्न शब्दों से अपत्य आदि के अर्थ में प्रत्यय लगाकर पुनः नवीन शब्द भी बनते हैं। इस प्रक्रिया में लगने वाले प्रत्यय तद्धित कहलाते हैं और उनसे निष्पन्न शब्द तद्धितान्त। उदाहरण के लिए, 'भगिनी' शब्द बहिन के अर्थ में प्रचलित है। इसमें अपत्यवाचक 'णेय्य' प्रत्यय लगाकर 'भगिनेय्य' (भागिनेय= बहिन का लड़का) शब्द बनता है। यहां णेय्य प्रत्यय तद्धित प्रत्यय है और 'भगिनेय्य' शब्द तद्धितान्त। इस प्रकार कृदन्त धातु से प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है जबकि तद्धितान्त शब्द से प्रंत्यय लगकर बनता है।

संस्कृत में तद्धित प्रत्ययों का बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है। पालि में प्रायः संस्कृत शब्दों का ही ध्वन्यात्मक परिवर्तन होता है। किन्तु कहीं-कहीं पालि रूप से भी प्रत्यय लगते हैं। यहां पालि के प्रमुख तद्धित प्रत्ययों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

ण

अपत्य के अर्थ में विकल्प से ण प्रत्यय होता है। जैसे--

वसिट्ठस्स अपच्चं = वसिट्ठ + ण = वसिट्ठो, वासेट्ठो (वासिष्ट)
वसुदेवस्स अपच्चं = वसुदेव + ण = वासुदेवो (वासुदेव)
भरद्वाजस्स अपच्चं = भरद्वाज + ण = भारद्वाजो (भारद्वाज)
गोतमस्स अपच्चं = गोतम + ण = गोतमो (गौतम)

णान, णायन

अपत्य के अर्थ में वच्छ (वत्स) आदि गोत्रवाचक शब्दों से, विकल्प से, णान और णायन प्रत्यय होते हैं। जैसे--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वच्छस्स गोत्तापच्च्वं = वच्छ + णान = वाच्छानो (वात्स्यायन)
कच्चस्स गोत्तापच्च्वं = कच्च + णान = कच्चानो (कात्यायन)
मोग्गलस्स गोत्तापच्च्वं = मोग्गल + णान = मोग्गल्लानो (मौद्ग्ल्यायन)

इसी प्रकार--

वच्छस्स गोत्तापच्च्वं = वच्छ + णायन = वच्छायनो (वात्स्यायन)
कच्चस्स गोत्तापच्च्वं = कच्च + णायन = कच्चायनो (कात्यायन)
मोग्गलस्स गोत्तापच्च्वं = मोग्गल + णायन = मोग्गल्लायनो (मौद्ग्ल्यायन)

णेय्य, णेर

अपत्य के अर्थ में कत्तिका आदि शब्दों में णेय्य तथा विधवा आदि शब्दों में णेर प्रत्यय लगते हैं। यथा--

कत्तिकाय अपच्च्वं = कत्तिका + णेय्य = कत्तिकेय्यो (कार्तिकेय)
विनताय अपच्च्वं = विनता + णेय्य = वेनतेय्यो (वैनतेय)
भगिनिया अपच्च्वं = भगिनी + णेय्य = भगिनेय्यो (भागिनेय)

इसी प्रकार--

विधवाय अपच्च्वं = विधवा + णेर = विधवेरो
नालिकिया अपच्च्वं = नालिकी + णेर = नालिकेरो
बन्धकिया अपच्च्वं = बन्धकि + णेर = बन्धकेरो
समणस्स अपच्च्वं = समण + णेर = सामणेरो

ण्य

अपत्य के अर्थ में दिति आदि शब्दों से ण्य प्रत्यय होता है। यथा--

दितिया अपच्च्वं = दिति + ण्य = देच्चो (दैत्यः)
अदितिया अपच्च्वं = अदिति + ण्य = आदिच्चो (आदित्य)
कुण्डनिया अपच्च्वं = कुण्डनि + ण्य = कोण्डञ्ञो (कौण्डिन्य)

णि

अकारान्त शब्दों से परे अपत्य के अर्थ में विकल्प से णि प्रत्यय होता है। यथा--

दक्खस्स अपच्च्वं = दक्ख + णि = दक्खि
दत्तस्स अपच्च्वं = दत्त + णि = दत्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वरुणस्स अपच्चं = वरुण + णि = वारुणि

दोणस्स अपच्चं = दोण + णि = दोणि

णिक

यह बहुप्रचलित प्रत्यय है। इसका प्रयोग भी अनेक अर्थों में देखा जाता है। इसके कुछ प्रयोग दर्शनीय है--

'उसे पढ़ता है, उसे जानता है' इस अर्थ में णिक प्रत्यय का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ--

वेदमधीते जानाति वा = वेद + णिक = वेदिको

विनयमधीते जानाति वा = विनय + णिक = वेनयिको

पदमधीते जानाति वा = पद + णिक = पदिको

व्याकरणमधीते जानाति वा = व्याकरण + णिक = वेय्याकरणो

'इसके लिए होता है' इस अर्थ में भी णिक प्रत्यय का प्रयोग देखा जाता है। यथा--

पुनब्भवाय संवत्तति इति = पुनब्भव + णिक = पोनोभाविको

सग्गाय संवत्तति इति = सग्ग + णिक = सोवग्गिको

'उससे उत्पन्न या आया हुआ' इस अर्थ में भी णिक प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे--

मातितो सम्भूतं आगतं वा = मातु + णिक = मत्तिक

पितरा सम्भूतं आगतं वा = पितु + णिक = पेत्रिक

'यह इसका है या इससे सम्बन्धित है' इस अर्थ में भी णिक प्रत्यय का प्रयोग होता है। यथा--

संघस्स इदं = संघ + णिक = संघिक

पुग्गल इदं = पुग्गल + णिक = पुग्गलिक,

णेय्य

यह भी पालि का अतिप्रचलित प्रत्यय है तथा अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। इसके प्रमुख अर्थ निम्नांकित हैं--

'उसके लिए पात्र होना' इस अर्थ में णेय्य प्रत्यय लगता है। उदाहरणार्थ--

दक्खिणं अरहतीति दक्खिण + णेय्य = दक्खिणेय्यो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'उसका विकार या उसका अवयव' इस अर्थ में भी णेय्य प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे--

एणस्स मंसं = एण + णेय्य = ऐणेय्य मंसं

कोसस्स निम्मितं = कोस + णेय्य = कोसेय्यं

'इस विषय में उचित है, हितकर है' इस अर्थ में भी णेय्य प्रत्यय का प्रयोग होता है। यथा--

पथे साधु = पथ + णेय्य = पाथेय्यं

इक

इक भी पालि का बहुप्रचलित तद्धित है। इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। इसके प्रमुखं प्रयोग इस प्रकार हैं--

'वह इस विषय में कुशल है या उचित है' इस अर्थ में इक प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। यथा--

कथायं साधु = कथा + इक = कथिको

पवासे साधु = पवास + इक = पवासिको

संगामे साधु = सगाम + इक = संगामिको

'वह यहां है या इसका है' इस अर्थ में भी इक प्रत्यय का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ--

दण्डो एत्थ अस्स वा अत्थीति = दण्ड + इक = दण्डिको

गन्धो एत्थ अस्स वा अत्थीति = गन्ध + इक = गन्धिको

रूपो एत्थ अस्स वा अत्थीति = रूप + इक = रूपिको

'वहाँ रहता है, नियुक्त है, उसमें आस्था रखता है' इन अर्थों में भी इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे--

भण्डागारे वसति = भण्डागार + इक = भण्डागारिको

रुक्खमूले वसति = रुक्खमूल + इक = रुक्खमूलिको

लोके विदितो = लोक + इक = लोकिको

द्वारे नियुत्तो = द्वार + इक = दोवारिको

मन्तु, वन्तु

'वह यहाँ हे या इसका है' इस अर्थ में मन्तु तद्धित का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गावो एत्थ देसे अस्स वा पुरिसस्स सन्ति = गो + मन्त = गोमा
गति एत्थ अस्स वा अत्थीति = गति + मन्तु = गतिमा
सति एत्थ अस्स वा अत्थीति = सति + मन्तु = सतिमा

यदि अकारान्त या आकारान्त शब्द से परे मन्तु प्रत्यय आता है तो मन्तु का वन्तु हो जाता है। यथा--

सीलं एत्थ अस्स वा अत्थीति = सील + वन्तु = सीलवा
पञ्ञा एत्थ अस्स वा अत्थीति = पञ्ञा + वन्तु = पञ्ञवा
गुणं एत्थ अस्स वा अत्थीति = गुण + वन्तु = गुणवा

ई, स्सी, आलु

'वह यहाँ है या इसका है' इस अर्थ में इ और स्सी प्रत्यय भी प्रचलित हैं। इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं--

दण्डो एत्थ अस्स वा अत्थीति = दण्ड + ई = दण्डी
गन्धो एत्थ अस्स वा अत्थीति = गन्ध + ई = गन्धी
रूपो एत्थ अस्स वा अत्थीति = रूप + ई = रूपी

इसी प्रकार--

तपो एत्थ अस्स वा अत्थीति = तप + स्सी = तपस्सी
यसो एत्थ अस्स वा अत्थीति = यस + स्सी = यसस्सी
मनो एत्थ अस्स वा अत्थीति = मन + स्सी = मनस्सी

इसी अर्थ में--

अभिज्झा एत्थ अस्स वा अत्थीति = अभिज्झा + आलु = अभिज्झालु
निद्दा एत्थ अस्स वा अत्थीति = निद्दा + आलु = निद्दालु
दया एत्थ अस्स वा अत्थीति = दया + आलु = दयालु

कण

'इसमें होने वाला' इस अर्थ में कण प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ--

कुसिनारायं भवो = कुसिनारा + कण = कोसिनारको
मगधे भवो = मगध + कण = मागधको
अरञ्ञे भवो = अरञ्ञ + कण = आरञ्ञको

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कण प्रत्यय समूह के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। इसके भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं--

रजूनं समूहो = राजा + कण = राजकं

मानुसानं समूहो = मानुस + कण = मानुसकं

क

यह पालिभाषा का अतिप्रचलित तद्धित है तथा कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। निन्दा, अज्ञात, अल्प प्रतिभाग, ह्रस्व, दया, संज्ञा- इन अर्थों में क प्रत्यय का प्रयोग होता है। यहां इनका एक-एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा--

निन्दितो मुण्डो = मुण्ड + क = मुण्डको (निन्दित साधु)

निन्दितो समणो = समण + क = समणको (निन्दित श्रमण)

अञ्ञागे अस्सो = अस्स + क = अस्सको (अज्ञात अश्व)

अप्पं तेल = तेल + क = तेलको (थोड़ा तेल)

हत्थी विय = हत्थि + क = हत्थिको (हस्तितुल्य)

बजिवद्दो विय = वलिवद्द + क = बलिवद्दको (वृषभकल्प)

रस्सो रुक्खो = रुक्ख + क = रुक्खको (छोटा वृक्ष)

दयापत्तो पुत्तो = पुत्त + क = पुत्तको (स्नेहमय पुत्र)

मोरो विय = मोर + क = मोरको (मोरसंज्ञा वाला)

'यह इसका परिमाण है' इस अर्थ में भी क प्रत्यय का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ--

दोणो परिमाणस्स = दोणक्क = दोणिको

पञ्च परिमाणस्स = पञ्च + क = पञ्चकं

छः परिमाणस्स = छ + क = छक्कं

अट्ठ परिमाणस्स = अट्ठ + क = अट्ठकं

स्व अर्थ में भी क प्रत्यय का प्रयोग होता है। यथा--

हीनो व = हीन + क = हीनको

पोतो व = पोत + क = पोतको

मुत्तो व = मुत्त + क = मुत्तको

स्त्री प्रत्यय

स्त्री प्रत्यय उन प्रत्ययों को कहा जाता है जो पुंल्लिंग शब्दों में जुड़कर उनसे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्त्रीलिंग शब्द बनाते हैं। कुछ शब्द तो मूलतः स्त्रीलिंग होते हैं जैसे मातु, लेकिन कुछ शब्द मूलतः पुंल्लिंग होने पर भी कुछ प्रत्ययों से सम्पन्न होकर स्त्रीलिंग बन जाते हैं, जैसे 'भिक्खु' शब्द पुंल्लिंग है किन्तु 'नी' प्रत्यय लगाकर बना 'भिक्खनी' शब्द स्त्रीलिंग बन जाता है। इस प्रकार के प्रत्यय जो पुंल्लिंग से स्त्रीलिंग शब्दों का निर्माण करते हैं, स्त्री प्रत्यय कहे जाते हैं।

ये स्त्री प्रत्यय सामान्य अर्थ में ही प्रयुक्त नहीं होते, बल्कि अनेक अर्थों को अभिव्यक्त करते हैं जैसे उपाध्याय की पत्नी-उपाध्यायी, द्वितीय स्वयं ही उपाध्याय का कार्य करने वाली-उपाध्याया। इसी प्रकार क्षत्रिय से निष्पन्न स्त्रीवाची शब्द दो अर्थों को प्रकट करते हैं : प्रथम, क्षत्रिया अर्थात् क्षत्रिय की लड़की, भले ही किसी अन्य वर्ण की भार्या हो, द्वितीय, क्षत्रियी अर्थात् क्षत्रिय की भार्या भले ही जन्मना क्षत्रिय न हो। इस प्रकार इन भिन्न-भिन्न अर्थों को प्रकट करने वाले भिन्न-भिन्न प्रत्यय लगाये जाते हैं।

पालि में सात स्त्री प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। ये हैं-आ, ङी, इनी, नी, आनी, ऊ और ति। यहां इनके स्वरूप को संक्षेप मेकं समझ लेना चाहिए।

आ

पुंल्लिंग से स्त्रीवाची शब्द बनाने के लिए आ प्रत्यय का प्रयोग होता है। यह संस्कृत के टाप् (आ) प्रत्यय का ही पालिरूप है। इससे निष्पन्न शब्द दर्शनीय हैं--

अज + आ = अजा, खत्तिय + आ = खत्तिया
सुसील + आ = सुसीला, सबल + आ = सबला
धनिक + आ = धनिका, धम्मदिन्न + आ धम्मदिन्ना

विशेष

स्त्री प्रत्यय लगने पर अधातु शब्द के 'क' से पूर्व अ को प्रायः इ हो जाता है। यथा--

बालक + आ = बालिका, उपासक + आ = उपासिका
कारक + आ = कारिका, जनक + आ = जनिका

ङी

नद आदि शब्दों से परे ङी प्रत्यय लगता है। इसका ई शेष रहता है। कच्चायन ङी के स्थान पर ई ही मानते हैं। वस्तुतः यह प्रत्यय संस्कृत के ङीप् और ङीष् का पालिरूपान्तर है। यही कारण है कि मोग्गल्लान ङी मानते हैं तो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कच्चायन ई; दोनों ही रूपों में ई शेष रहता है। उसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं--

नद + ङी = नदी, सीह + ङी = सीही

कुमार + ङी = कुमारी, गोतम + ङी = गोतमी

किन्नर + ङी = किन्नरी, मह + ङी = मही

(१) ङी प्रत्यय लगने पर न्त और न्तु को विकल्प से, त्त हो जाता है। उदाहरणार्थ--

गच्छन्त + ङी = गच्छती, गच्छन्ती

रसवन्तु + ङी = रसवती, रसवन्ती

(२) ङी प्रत्यय लगने पर 'भवन्त' शब्द को, विकल्प से, 'भीत' आदेश हो जाता है। यथा--

भवन्त + ङी = भोती, भवन्ती

(३) ङी प्रत्यय लगने पर 'गो' को 'गाव' आदेश हो जाता है। यथा--

गो + ङी = गाव + ई = गावी

(४) ङी प्रत्यय लगने पर 'पुथु' शब्द को 'पथव' तथा 'पुथव' आदेश हो जाता है। उदाहरणार्थ--

पुथु + ङी = पथव + ई = पथवी

पुथु + ङी = पुथव + ई = पुथवी

इनी

यक्ख (यक्ष) आदि शब्दों से पर इनी प्रत्यय लगता हे और विकल्प से ङी भी। यथा--

यक्ख + इनी = यक्खिनी, यक्ख + ङी = यक्खी

नाग + इनी = नागिनी, नाग + ङी = नागी

सीह + इनी = सीहिनी, सीह + ङी = सीही

मानुस + इनी = मानुसिनी, मानुस + इनी = मानुसी

कुछ शब्दों में केवल इनी प्रत्यय लगता है। यथा--

राज + इनी = राजिनी

मोर + इनी = मोरिनी

आरामिक + इनी = आरामिकिनी,

अत्थकाम + इनी = अत्थकामिनी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त और ऊकारान्त शब्दों से परे प्रायः नी प्रत्यय लगता है। उदाहरणार्थ--

दण्डी + नी = दण्डिनी, भिक्खु + नी = भिक्खुनी

बन्धु + नी = बन्धुनी, अहिंसारत्ति + नी = अहिंसारत्तिनी

परचित्तविद्द + नी = परचित्तविदुनी, बच्छगिद्धिनी + नी = बद्धगिद्धिनी

विशेष

नी प्रत्ययान्त कुछ शब्द निपात सिद्ध हैं। उदाहरणार्थ--

घरणी, पोक्खरणी, आचारिनी आदि।

आनी

भार्या के अर्थ में मातुल आदि शब्दों से परे आनी प्रत्यय लगता है। यह प्रत्यय भी संस्कृत का ही पालि रूप है। संस्कृत में इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य-इन शब्दों में ङीष् (ई) लगने से पूर्व आनुक् (आन) का आगम हो जाता है। अतः इन्द्राणी, वरुणानी, भवानी आदि शब्द निष्पन्न होते हैं। इन्हीं के पालि रूपों की सिद्धि के लिए आनी प्रत्यय की विवेचना की गयी है। यथा--

मातुल + आनी = मातुलानी, वरुण + आनी = वरुणानी

आचरिय + आनी = आचरियानी, खत्तिय + आनी = खत्तियानी

ऊ

उरु (जांघ) के उपमान स्वरूप संहित आदि शब्दों के साथ ऊ प्रत्यय लगता है। यह प्रत्यय संस्कृत के ऊङ् प्रत्यय का, जिसका ऊ शेष रहता है, ही पालि रूप है। उङ् प्रत्यय, संहित, शफ, लक्षण और वाम उपमानवाची शब्द हैं पूर्व में जिसके ऐसे उरु शब्द से परे ही लगता है। पालि प्रत्यय ऊ भी प्रायः इन्हीं शब्दों में लगता है। यथा--

करभोरु + ऊ = करभोरू, संहितारू + ऊ = संहितोरू

सहोरु + ऊ = सहोरू, वामोऊ + ऊ = वामोरू

लक्खणोरू + ऊ = लक्खणोरू, सञ्ञतोरू + ऊ = सञ्ञतोरू

ति

स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'युव' शब्द से परे ति प्रत्यय लगता है। यह प्रत्यय संस्कृत का है। वहां भी इस प्रत्यय से केवल एक ही शब्द निष्पन्न दिखाया गया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है और पालि में भी एक ही। शब्द है--

युव + ति = युवति

विशेष

(१) संस्कृत के समान पालि में भी एक शब्द के कई स्त्रीवाची शब्द बनते हैं जैसे मानुस शब्द से मानुसा, मानुसी और मानुसिनी तीन स्त्रीवाची शब्द निष्पन्न होते हैं। इसी प्रकार अत्थ काम शब्द से अत्थकामा, अत्थकामी और अत्थकामिनी तीन शब्द।

(२) संस्कृत के समान, पालि में भी प्रत्ययगत भिन्नता मिलती है। संस्कृत में उपाध्याय से दो स्त्रीवाची शब्द निष्पन्न होते हैं-- उपाध्याया और उपाध्यायी। इनमें उपाध्याया उसे ही कहा जा सकता है जो स्वयं अध्यापन करती हो, जबकि उपाध्यायी उपाध्याय की पत्नी के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। इसी प्रकार पालि में खत्तिय से बने दो शब्दों-खत्तिया और खत्तियी-में 'खत्तिया' शब्द अभार्या के अर्थ में चलता है अर्थात् क्षत्रिय जाति की कन्या, भले ही वह अक्षत्रिय की पत्नी हो, जबकि 'खत्तियी' शब्द क्षत्रिय को भार्या के अर्थ में ही चलता है भले ही वह जन्मना क्षत्रिय न हो।

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय पञ्चम

शब्द-रूप

शब्द-रूपों के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषता से बनने वाले रूपों या पदों का विवेचन आता है। शब्द से सम्बन्ध तत्त्व जुड़ने पर वे पद या रूप कहलाते हैं। शब्द-रूप तीन सम्बन्धों को बताता है : लिंग, वचन और कारक। जैसे 'राम' शब्द से 'रामस्स' पद बनता हैं जो पुंल्लिंग एकवचन तथा सम्बन्ध कारक को स्पष्ट करता है। पालि में तीन लिंग तथा दो वचन होते हैं। लिंग हैं: पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। लिंग की दृष्टि से पालि और संस्कृत में कोई विशेष अन्तर नहीं है। पालि में दो वचन होते हैं : एकवचन और अनेकवचन। संस्कृत के समान द्विवचन यहां नहीं मिलता। बहुवचन को अनेकवचन कहा जाता है जबकि संस्कृत तथा हिन्दी में बहुवचन कहा जाता है।

पालि में सात विभक्तियाँ तथा आलपन (सम्बोधन) होता है। इन सभी में शब्दों के विभिन्न रूप बनते हैं। शब्द में लगने वाले पालिके विभक्ति-चिह्न मूलतः इस प्रकार है--

विभक्ति	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सि	यो
दुतिया	अं	यो
ततिया	ना	हि
चतुत्थी	स	नं
पञ्चमी	स्मा	हि
छट्ठी	स	नं
सत्तमी	स्मिं	सु
आलपन	सि (ग)	यो

जिस प्रकार संस्कृत में शब्द की विभक्तियाँ सुप् कहलाती है और उनसे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्युत्पन्न रूप सुबन्त, उसी प्रकार पालि में इन्हीं 'सिसु' कहा जाता है और इनके निर्मित रूपों को सिसुन्त।

पालि में संस्कृत के प्रभावस्वरूप ही चतुर्थी और षष्ठी दो विभक्तियाँ मानी जाती हैं। वैयाकरण मोग्गल्लान ने चतुर्थी और षष्ठी जो दो विभक्तियाँ मानी हैं उनमें सम्प्रदान तथा सम्बन्ध का भेद दिखाना ही तात्पर्य है अन्यथा शब्दों के रूपों के आधार पर यह भेद ज्ञात ही नहीं हो सकता।

पालि के कुछ अतिप्रचलित मानक शब्दों के रूप यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। शेष शब्दों के लिंग, तथा अन्य वर्ण के आधार पर इसी प्रकार रूप बनेंगे। अतः अवशिष्ट शब्दों के रूप इन्हीं के आधार पर समझने चाहिए।

अकारान्त पुंल्लिंग 'बुद्ध' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	बुद्धो (बुद्धे)	बुद्धा
दुतिया	बुद्ध	बुद्धे
ततिया	बुद्धेन	बुद्धेहि, बुद्धेभि
चतुत्थी	बुद्धाय, बुद्धस्स	बुद्धानं
पञ्चमी	बुद्धा, बुद्धम्हा, बुद्धस्मा	बुद्धेहि, बुद्धभि
छट्ठी	बुद्धस्स	बुद्धानं
सत्तमी	बुद्धे, बुद्धम्हि, बुद्धस्मिं	बुद्धेसु
आलपन	बुद्ध, बुद्धा	बुद्धा

धम्म, रुक्ख, पमाद आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

अकारान्त नपुंसकलिंग 'फल' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	फलं	फला, फलानि
दुतिया	फलं	फले, फलानि
आलपन	फल, फला	फलानि

शेष रूप 'बुद्ध' के समान। लोचन, मूल, वन, आयुध आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अकारान्त स्त्रीलिंग 'लता' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	लता	लता, लतायो
दुतिया	लतं	लता, लतायो
ततिया	लताय	लताहि, लताभि
चतुत्थी	लताय	लतानं
पञ्चमी	लताय	लताहि, लताभि
छट्ठी	लताय	लतानं
सत्तमी	लतायं, लताय	लतासु
आलपन	लते	लता, लतायो

कञ्ञा (कन्या), अविज्जा (अविद्या), करुणा आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

इकारान्त पुंल्लिंग 'मुनि' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	मुनि	मुनी, मुनयो
दुतिया	मुनिं	मुनी, मुनयो
ततिया	मुनिना	मुनीहि, मुनीभि
चतुत्थी	मुनिनो, मुनिस्स	मुनीनं
पञ्चमी	मुनिना, मुनिम्हा, मुनिस्मा	मुनीहि, मुनीभि
छट्ठी	मुनिनो, मुनिस्स	मुनीवं
सत्तमी	मुनिम्हि, मुनिस्मिं	मुनिसु, मुनीसु
आलपन	मुनि, मुनी	मुनी, मुनयो

कवि, इसि (ऋषि), हरि, पति आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

इकारान्त नपुंसकलिंग 'वारि' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	वारि	वारी, वारीनि
दुतिया	वारिं	वारी, वारीनि
तंतिया	वारिना	वारीहि, वारीभि
चतुत्थी	वारिनो, वारिस्स	वारीनं
पञ्चमी	वारिना, वारिम्हा, वारिस्मा	वारीहि, वारीभि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छट्ठी	वारिनो, वारिस्स	वारीनं
सत्तमी	वारिम्हि, वारिस्मिं	वारीसु
आलपन	वारि	वारी, वारीनि

अट्ठि (अस्थि), दधि, अक्खि आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

इकारान्त स्त्रीलिंग 'रत्ति' (रात्रि) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	रत्ति	रत्ती, रत्तियो, रत्यो
दुतिया	रत्तिं	रत्ती, रत्तियो, रत्यो
ततिया	रत्तिया, रत्या	रत्तीहि, रत्तीभि
चतुत्थी	रत्तिया, रत्या	रत्तीनं
पञ्चमी	रत्तिया, रत्या	रत्तीहि, रत्तीभि
छट्ठी	रत्तिया, रत्या	रत्तीनं,
सत्तमी	रत्तियं, रत्यं, रत्या रत्तिं, रत्तो, रत्तिया	रत्तीसु, रत्तिसु
आलपन	रत्ति	रत्ती, रत्तियो, रत्यो

बोधि, युत्ति (युक्ति), कित्ति (कीर्ति), पालि आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

ईकारान्त पुंल्लिंग 'दण्डी' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	दण्डो	दण्डी, दण्डिनो
दुतिया	दण्डिनं, दण्डिं	दण्डी, दण्डिनो, दण्डिने
ततिया	दण्डिना	दण्डीहि, दण्डीभि,
चतुत्थी	दण्डिनो, दण्डिस्स	दण्डीनं
पञ्चमी	दण्डिना, दण्डिस्मा, दण्डिम्हा	दण्डीहि, दण्डीभि
छट्ठी	दण्डिनो, दण्डिस्स	दण्डीनं
सत्तमी	दण्डिनि, दण्डिम्हि, दण्डिस्मिं	दण्डिसु, दण्डीसु
आलपन	दण्डि, दण्डी	दण्डी, दण्डिनो

करी (हाथी), कामी, दन्ती, योगी आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

ईकारान्त नपुंसकलिंग 'सुखकारी' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सुखकारिं	सुखकारीनि, सुखकारी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दुतिया	सुखकारिं	सुखकारीनि, सुखकारी
आलपन	सुखकारि	सुखकारीनि, सुखकारी

शेष 'दण्डी' के समान।

ईकारान्त स्त्रीलिंग 'इत्थी' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	इत्थी	इत्थी, इत्थियो
दुतिया	इत्थियं, इत्थिं	इत्थी, इत्थियो
ततिया	इत्थिया	इत्थीहि, इत्थीभि
चतुत्थी	इत्थिया	इत्थीनं
पञ्चमी	इत्थिया	इत्थीहि, इत्थीभि
छट्ठी	इत्थिया	इत्थीनं
सत्तमी	इत्थियं, इत्थिया	इत्थीसु
आलपन	इत्थि	इत्थी, इत्थियो

नदी, मही, कुमारी, नारी आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

उकारान्त पुंल्लिंग 'भिक्खु' (भिक्षु) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	भिक्खु	भिक्खु, भिक्खवो
दुतिया	भिक्खुं	भिक्खु, भिक्खवो
ततिया	भिक्खुना	भिक्खूहि, भिक्खूभि
चतुत्थी	भिक्खुनो, भिक्खुस्स	भिक्खूनं
पञ्चमी	भिक्खुना, भिक्क्षुस्मा, भिक्खुम्हा	भिक्खूहि, भिक्खूभि
छट्ठी	भिक्खुनो, भिक्खुस्स	भिक्खुसु, भिक्खूसु
आलपन	भिक्खु	भिक्खु, भिक्खवे, भिक्खवे

सेतु (पुल), भानु, राहु, सिन्धु आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

उकारान्त नपुंसकलिंग 'आयु' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	आयु	आयूनि, आयू
दुतिया	आयुं	आयूनि, आयू

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आलपन	आयु	आयूनि, आयू

शेष 'भिक्खु' के समान। चक्खु (आंख), वसु, दारू, वत्थु, (वस्तु=कहानी) आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

उकारान्त स्त्रीलिंग 'धेनु' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	धेनु	धेनू, धेनूयो
दुतिया	धेनुं	धेनू, धेनुयो
ततिया	धेनुया	धेनूहि, धेनूभि
चतुत्थी	धेनुया	धेनूनं
पञ्चमी	धेनु	धेनूहि, धेनूभि
छट्ठी	धेनुया	धेनूनं
सत्तमी	धेनुयं, धेनुया	धेनूसु
आलपन	धेनु	धेनू, धेनुयो

धातु, रज्जु (रस्सी), कासु (गर्त) आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

ऊकारान्त पुंल्लिंग 'सब्बञ्ञू' (सर्वज्ञ) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सब्बञ्ञू	सब्बञ्ञू, सब्बञ्ञुनो
दुतिया	सब्बञ्ञुं	सब्बञ्ञु, सब्बञ्ञुनो
ततिया	सब्बञ्ञुना	सब्बञ्ञुहि, सब्बञ्ञूभि
चतुत्थी	सब्बञ्ञुनो, सब्बञ्ञुस्सु	सब्बञ्ञूनं
पञ्चमी	सब्बञ्ञुना, सब्बञ्ञुस्स, सब्बञ्ञुम्हा	सब्बञ्ञूहिं, सब्बञ्ञूभि
छट्ठी	सब्बञ्ञुनो, सब्बञ्ञुस्स	सब्बञ्ञूनं
सत्तमी	सब्बञ्ञुम्हि, सब्बञ्ञुस्मिं	सब्बञ्ञुसु
आलपन	सब्बञ्ञु	सब्बञ्ञू, सब्बञ्ञुनो

मग्गञ्ञू (मार्गज्ञ), धम्मञ्ञू (धर्मज्ञ), कतञ्ञू (कृतज्ञ) आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऊकारान्त नपुंसकलिंग 'सयम्भू' (स्वयम्भू) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सयम्भु	सयम्भू, सयम्भुनि
दुतिया	सयम्भुं	सयम्भू, सयम्भुनि
आलपन	सयम्भु	सयम्भु, सयम्भुनि

शेष 'सब्बञ्ञू' के समान। विभू, अभिभू, सहभू आदि के रूप इसी प्रकार होंगे।

ऊकारान्त स्त्रीलिंग 'वधू' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	वधू	वधू, वधूयो
दुतिया	वधुं	वधू, वधुयो
ततिया	वधुया	वधूहि, वधूभि
चतुत्थी	वधुया	वधूनं
पञ्चमी	वधुया	वधूहि, वधूभि
छट्ठी	वधुया	वधूनं
सत्तमी	वधुयं, वधुया	वधूसु
आलपन	वधु	वधू, वधुयो

जम्बू, सुतनू (सुन्दरी), वामोरू (स्त्री) आदि के रूप इसी प्रकार से होंगे।

ओकारान्त पुंल्लिंग 'गो' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	गो	गावो, गवो
दुतिया	गावुं, गावं, गवं	गावो, गवो
ततिया	गावेन, गवेन, गावा, गवा	गोहि, गोभि
चतुत्थी	गावस्स, गवस्स, गवं	गवं, गुन्नं, गोनं
पञ्चमी	गवा, गावा, गावस्मा गावम्हा, गवस्मा, गवम्हा	गोहि, गोभि
छट्ठी	गावस्स, गवस्स, गवं	गवं, गुन्नं, गोनं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सत्तमी	गावे, गवे, गावम्हि, गावस्मिं, गवस्मिं	गावेसु, गवेसु, गोसु
आलपन	गो	गावो, गवो

विशेष : पालि भाषा में प्रायः एकारान्त शब्द नहीं मिलते। 'गो' को छोड़कर अन्य ओकारान्त भी प्रायः नहीं मिलते। स्त्रीलिंग में भी, 'गो' शब्द के रूप पुंल्लिंग के समान ही होते हैं।

ओकारान्त नपुंसकलिंग 'चित्तगो' (विचित्र गायों वाला) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	चित्तगु	चित्तगू, चित्तगूनि
दुतिया	चित्तगुं	चित्तगू, चित्तगूनि
आलपन	चित्तगु	चित्तगू, चित्तगूनि

शेष उकारान्त नपुंसकलिंग 'आयु' के समान।

विशेष : 'गो' शब्द के स्थान पर सभी विभक्तियों में, विकल्प से, 'गोण' आदेश हो जाता है और उसके रूप पुंल्लिंग अकारान्त 'बुद्ध' के समान होते हैं।

अनियमित पुंल्लिंग शब्द

इन शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनके रूप ऊपर निर्दिष्ट रूपों से भिन्न पाये जाते हैं। वस्तुतः इस वर्ग के अन्तर्गत वे शब्द आते हैं जो संस्कृत में व्यंजनान्त थे लेकिन पालि में अन्तिम व्यंजन का लोप हो गया। पालिरूप में ये स्वरान्त अवश्य हो गये लेकिन अन्य शब्दों से इनके रूप भिन्न ही रहे। ऐसे कुछ शब्दों के रूप, उदाहरण के लिए नीचे दिये जा रहे हैं।

अत्त (आत्मा) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	अत्ता	अत्ता, अत्तानो
दुतिया	अत्तानं, अत्तं	अत्तानो, अत्ते
ततिया	अत्तेन, अत्तना	अत्तेहि, अत्तेभि, अत्तनेहि, अत्तनेभि
चतुत्थी	अत्तनो, अत्तस्स	अत्तानं
पञ्चमी	अत्तना, अत्तस्मा, अत्तम्हा	अत्तेहि, अत्तेभि, अत्तनेहि, अत्तनेभि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छट्ठी	अत्तनो, अत्तस्स	अत्तानं
सत्तमी	अत्तनि, अत्तस्मिं, अत्तम्हि, अत्ते	अत्तनेसु, अत्तेसु
आलपन	अत्त, अत्ता	अत्ता, अत्तानो

ब्रह्म (ब्रह्मा) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	ब्रह्मा	ब्रह्मा, ब्रह्मानो
दुतिया	ब्रह्माणं, ब्रह्म	ब्रह्मानो
ततिया	ब्रह्माना, ब्रह्मुना	ब्रह्मेहि, ब्रह्मेभि, ब्रह्मूहि, ब्रह्मूभि
चतुत्थी	ब्रह्मुनो, ब्रह्मस्स	ब्रह्मानं, ब्रह्मूनं
पञ्चमी	ब्रह्मना, ब्रह्मस्स	ब्रह्मोहि, ब्रह्मेभि, ब्रह्मूहि, ब्रह्मूभि
छट्ठी	ब्रह्मनो, ब्रह्मस्स	ब्रह्मानं, ब्रह्मूनं
सत्तमी	ब्रह्मे, ब्रह्मानि, ब्रह्मस्मिं, ब्रह्मम्हि	ब्रह्मेसु, ब्रह्मूसु
आलपन	ब्रह्मो	ब्रह्मा, ब्रह्मानो

राज (राजा) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	राजा	राजा, राजानो
दुतिया	राजानं, राजं	राजानो
ततिया	रञ्ञा, राजने, राजिना	राजेहि, राजूहि, राजेभि, राजूभि
चतुत्थी	रञ्ञो, रञ्ञस्स, राजिनो, राजस्स	रञ्ञं, राजूनं, राजानं
पञ्चमी	रञ्ञा, राजम्हा, राजस्मा	राञ्जेहि, राजेभि, राजूहि, राजूभि
छट्ठी	रञ्ञो, रञ्ञस्स, राजिनो, राजस्स	रञ्ञं, राजूनं, राजानं
सत्तमी	रञ्ञे, राजिनि, राजस्मिं, राजम्हि	राजूसु, राजेसु
आलपन	राज, राजा	राजनो, राजा

पुम (मनुष्य) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	पुमा, पुमो	पुमो, पुमानो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दुतिया	पुमानं, पुमं	पुमानो, पुमाने, पमे
ततिया	पुमाना, पुमुना, पुमेन	पुमानेहि, पुमानेभि, पुमेहि, पुनेभि
चतुत्थी	पुमुनो, पुमस्स	पुमानं
पञ्चमी	पुमाना, पुमुना, पुमा, पुमस्मा, पुमम्ह	पुमानेहि, पुमानेभि, पुमेहि, पुमेभि
छट्ठी	पुमुनो, पुमस्स	पुमानं
सत्तमी	पुमाने, पुमे, पुमस्मिं, पुमम्हि	पुमासु, पुमानेसु, पुमेसु
आलपन	पुमं, पुम	पुमानो, पुमा

युव (युवक) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	युवा	युवा, युवानो, युवाना
दुतिया	युवानं, युवं	युवाने, युवे
ततिया	युवाना, युवानेन, युवेन	युवानेहि, युवानेभि, युवेहि, युवेभि
चतुत्थी	युवानस्स, युवस्स, युविनो	युवानानं, युवानं
पञ्चमी	युवाना, युवानस्मा, युवानम्हा	युवानेहि, युवानेभि, युवेहि, युवेभि
छट्ठी	युवानस्स, युवस्स, युविनो	युवानानं, यवानं
सत्तमी	युवे, युवाने, युवानस्मिं	युवानेसु, युवासु, युवेसु, युवास्मिं, युवानम्हि, युवम्हि
आलपन	युव, युवा, युवाना, युवान	युवाने, युवाना

पितु (पिता) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	पिता	पितरो
दुतिया	पितरं	पितरे, पितरो
ततिया	पितरा	पितरेहि, पितरेभि, पितूहि, पितूभि
चतुत्थी	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितानं, पितूनं
पञ्चमी	पितरा	पितरेहि, पितरेभि, पितूहि, पितूभि
छट्ठी	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितानं, पितूनं
सत्तमी	पितरि	पितरेसु, पितूसु
आलपन	पित, पिता	पितरो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मातु (माता) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	माता	मातरो,
दुतिया	मातरं	मातरे, मातरो
ततिया	मातुया	मातरेहि, मातरेभि
चतुत्थी	मातुया	मातरानं, मातानं, मातूनं
पञ्चमी	मातुया	मातरेहि, मातरेभि
छट्ठी	मातुया	मातरानं, मातानं, मातूनं
सत्तमी	मातारि	मातरेसु, मातुसु
आलपन	मात, माता	मातरो

'वन्तु' और 'मन्तु' प्रत्ययान्त

'वाला' के अर्थ में अकारान्त में 'वन्तु' और शेष में 'मन्तु' प्रत्यय लगते हैं जैसे गुणवन्तु (गुणवाला), कुलवन्तु (अच्छे कुलवाला), गतिमन्तु (गतिवाला), जतिमन्तु (तेजवाला) आदि। इन सभी के रूप इसी प्रकार चलते हैं।

गुणवन्तु (गुणवान्) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	गुणवा	गुणवन्तो, गुणवन्ता
दुतिया	गुणवन्तं	गुणवन्ते
ततिया	गुणवता, गुणवन्तेन	गुणवन्तेहि, गुणवन्तेभि
चतुत्थी	गुणवतो, गुणवन्तस्स	गुणवतं, गुणवन्तानं
पञ्चमी	गुणवता, गुणवन्तस्मा, गुणवन्तम्हा	गुणवन्तेहि, गुणवन्तेभि
छट्ठी	गुणवतो, गुणवन्तस्स	गुणवन्तानं, गुणवतं
सत्तमी	गुणवति, गुणवन्ते, गुणवन्तस्मिं, गुणवन्तम्हि	गुणवन्तेसु
आलपन	गुणवं, गुणव, गणवा	गुणवन्तो, गुणवन्ता

नपुंसकलिंग 'मन' शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	मनो	मना, मनानि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दुतिया	मनं, मनो	मने, मनानि
ततिया	मनसा, मनेन	मनेहि, मनेभि
चतुत्थी	मनसो, मनस्स	मनानं
पञ्चमी	मनसा, मनस्मा, मनम्हा	मनेहि, मनेभि
छट्ठी	मनसो, मनस्स	मनानं
सत्तमी	मनसि, मने, मनम्हि, मनस्मिं	मनेसु
आलपन	मनं, मना	मनानि

सर्वनाम शब्द : 'सब्ब' (सब)

पुंल्लिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सब्बो	सब्बे
दुतिया	सब्बं	सब्बे
ततिया	सब्बेन	सब्बेहि, सब्बेभि
चतुत्थी	सब्बस्स	सब्बेसं, सब्बेसानं
पञ्चमी	सब्बम्हा, सब्बस्मा	सब्बहि, सब्बेभि
छट्ठी	सब्बस्स	सब्बेसं, सब्बेसानं
सत्तमी	सब्बम्हि, सब्बस्मिं	सब्बेसु
आलपन	सब्ब, सब्बा	सब्बे

नपुंसकलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सब्बं	सब्बानि
दुतिया	सब्बं	सब्बे, सब्बानि
आलपन	सब्ब, सब्बा	सब्बानि

विशेष : शेष रूप पुंल्लिंग के समान।

स्त्रीलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सब्बा	सब्बा, सब्बायो
दुतिया	सब्बं	सब्बा, सब्बायो
ततिया	सब्बाय	सब्बाहि, सब्बाभि

 CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चतुत्थी	सब्बस्सा, सब्बाय	सब्बासं, सब्बासानं
पञ्चमी	सब्बाय	सब्बाहि, सब्बाभि
छट्ठी	सबस्सा, सब्बाय	सब्बासं, सब्बासानं
सत्तमी	सब्बस्सं, सब्बायं	सब्बासु
आलपन	सब्बे	सब्बा, सब्बासो

किं (कौन) शब्द

पुंल्लिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	को	के
दुतिया	कं	के
ततिया	केन	केहि, केभि
चतुत्थी	कस्स, किस्स	केसं, केसानं
पञ्चमी	कम्हा, कस्मा, किस्मा	केहि, केभि
छट्ठी	कस्स, किस्स	केसं, केसानं
सत्तमी	कम्हि, किम्हि, कस्मिं, किस्मिं	केसु

नपुंसकलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	किं, कं	के, कानि
दुतिया	किं, कं	के, कानि

विशेष : शेष रूप पुंल्लिंग के समान।

स्त्रीलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	का	का, कायो
दुतिया	कं	का, कायो
ततिया	काय	काहि, काभि
चतुत्थी	कस्सा, काय	कासं, कासानं
पञ्चमी	काय	काहि, काभि
छट्ठी	कस्सा, काय	कासं, कासानं
सत्तमी	कस्सं, कायं	कासु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विशेष : 'य' (जो) के रूप तीनों लिंगों में किं (कौन) के समान ही होते हैं।

अम्ह (मैं) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	अहं	मयं, अस्मा, अम्हे, नो
दुतिया	मं, ममं	अम्हं, अम्हाकं, अम्हे नो
ततिया	मया, मे	अम्हेहि, अम्हेभि, नो
चतुत्थी	मम, मरुहं, अम्हं, ममं, मे	अस्माकं, अम्हाकं, अम्हं, अम्हे, नो
पञ्चमी	मया	अम्हेहि, अम्हेभि
छट्ठी	मय, मरहं, अम्हं, मम, मे	अम्हाकं, अम्हं, अम्हे, नो
सत्तमी	मयि	अस्मासु, अम्हेसु

तुम्ह (तुम) शब्द

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	त्वं, तुवं	तम्हे, वो
दुतिया	तं, तवं, तुवं, त्वं	तम्हं, तुंम्हाकं, तम्हे, वो
ततिया	त्वया, तया, ते	तम्हेहि, तम्हेभि, वो
चतुत्थी	तव, तम्हं, तम्हं, ते	तुम्हाकं, तुम्हे, वो
पञ्चमी	त्वया, तया, त्वम्हा	तुम्हेहि, तुम्हेभि
छट्ठी	तव, तुरहं, तुम्हं, ते	तुम्हाकं, तुम्हे, वो
सत्तमी	त्वयि, तयि	तुम्हे, सु

विशेष : अम्ह और तुम्ह के रूप तीनों लिंगों में समान ही होते हैं। सर्वनाम में आलपन (सम्बोधन) नहीं होता है।

त (वह) शब्द

पुंल्लिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सो, स्यो	ते, ने
दुतिया	तं, नं	ते, ने
ततिया	तेन, नेन	ते, ने
चतुत्थी	तस्स, नस्स, अस्स	तेसं, नेसं, तेसानं, नेसानं
पञ्चमी	तम्हा,अमहा,नम्हा,तस्मा,नस्मा,अस्मा	तेहि, नेहि, तेभि, नेभि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छट्ठी	तस्स, नस्स, अस्स	तेसं, नेहि, तेभि, नेभि
सत्तमी	तिम्ह,अम्हि,नम्हि,तस्मिं,अस्मिं,नस्मिं	तेसु, नेसु

नपुंसकलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	तं, नं	ते, तानि, ने, नानि
दुतिया	तं, नं	ते, तानि, ने, नानि

विशेष : शेष पुंल्लिंग के समान।

स्त्रीलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सा, स्या	ता, तायो, ना, नायो
दुतिया	तं, नं	ता, तायो, ना, नायो
ततिया	ताय, नाय, तस्सा, तिस्सा	ताहि, ताभि, नाहि, नाभि
चतुत्थी	तिस्साय, तस्साय, अस्साय, तिस्सा, तस्सा, ताय	तासं, आसं, तासानं
पञ्चमी	ताय, नाय, तस्सा	ताहि, ताभि, नाहि, नाभि
छट्ठी	तिस्साय, तस्साय, अस्साय, तिस्सा, तस्सा, ताय	तासं, आसं, तासानं
सत्तमी	तिस्सं, तस्सं, अस्सं, तायं, तस्सा, तिस्सा	तासु

एत (यह) शब्द

पुंल्लिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	एसो	एते
दुतिया	एतं, एनं	एते, एने
ततिया	एतेन	एतेहि, एतेभि
चतुत्थी	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
पञ्चमी	एतम्हा, एतस्मा	एतेहि, एतेभि
छट्ठी	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
सत्तमी	एतस्मिं, एतम्हि	एतेसु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नपुंसकलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	एतं	एते, एतानि
दुतिया	एतं	एते, एतानि

विशेष : शेष पुंल्लिंग के समान।

स्त्रीलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	एसा	एता, एतायो
दुतिया	एतं	एता, एतायो
ततिया	एताय	एताहि, एताभि
चतुत्थी	एतिस्साय, एतिस्सा, एताय	एतासं, एतासानं
पञ्चमी	एताय	एताहि, एताभि
छट्ठी	एतिस्साय, एतिस्सा, एताय	एतासं, एतासानं
सत्तमी	एतिस्सं, एतस्सं, एतासं	एतासु

इम (यह) शब्द

पुंल्लिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	अयं	इमे
दुतिया	इमं	इमे
ततिया	अनेन, इमिना	एहि, एभि, इमेहि, इमेभि
चतुत्थी	अस्स, इमस्स	एसं, एसानं, इमेसं, इमेसानं
पञ्चमी	अस्मा, इमस्मा, इमम्हा	एहि, एभि, इमेहि, इमेभि
छट्ठी	अस्मिं, इमम्हि, इमस्मिं	एसु, इमेसु

नपुंसकलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	इदं, इमं	इमे, इमानि
दुतिया	इदं, इमं	इमे, इमानि

विशेष : पुंल्लिंग के समान।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्त्रीलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	अयं	इमा, इमायो
दुतिया	इमं	इमा, इमायो
ततिया	इमाय	इमाहि, इमाभि
चतुत्थी	अस्साय, अस्सा, इमिस्साय, इमिस्सा, इमाय	इमासं, इमासनं
पञ्चमी	इमाय	इमाहि, इमाभि
छट्ठी	अस्साय, अस्सा, इमिस्सय, इमिस्सा, इमाय	इमासं, इमासनं
सत्तमी	अस्सं, इमिस्सं, इमाय	इमासु

अमु (वह) शब्द

पुंल्लिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	अमु, अमुको	अमू, अमुयो
दुतिया	अमुं	अमू, अमुयो
ततिया	अमुना	अमूहि, अमूभि
चतुत्थी	अमुस्स	अमूसं, अमूसानं
पञ्चमी	अमुना, अमुम्हा, अमस्सा	अमूहि, अमूभि
छट्ठी	अमूस्स	अमूसं, अमूसानं
सत्तमी	अमुम्हि, अमुस्मिं	अमूसु

नपुंसकलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	अदुं, अमुं	अमू, अमूनि
दुतिया	अदुं, अमुं	अमू, अमूनि

विशेष : शेष पुंल्लिंग के समान।

स्त्रीलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	असु, अमुं	अमू, अमुयो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दुतिया	अमुं	अमू, अमुयो
ततिया	अमुया	अमूहि, अमूभि
चतुत्थी	अमुस्सा, अमुया	अमूसं, अमूसानं
पञ्चमी	अमुया	अमूहि, अमूभि
छट्ठी	अमुस्सा, अमुया	अमूसं, अमूसानं
सत्तमी	अमुस्सं, अमुयं	अमूसु

संख्यावाचक विशेषण-एक

पुंल्लिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	एको	एके
दुतिया	एकं	एके
ततिया	एकेन	एकेभि, एकेहि
चतुत्थी	एकस्स	एकेसं, एकेसानं
पञ्चमी	एकस्मा, एकम्हा	एकेभि, एकेहि
छट्ठी	एकस्स	एकेसं
सत्तमी	एकस्मिं, एकम्हि	एकेसु

स्त्रीलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	एका	एका, एकायो
दुतिया	एकं	एका, एकायो
ततिया	एकाय	एकाभि, एकाहि
चतुत्थी	एकस्सा, एकाय, एकिस्सा	एकासं, एकासानं
पञ्चमी	एकाय	एकाभि, एकाहि
छट्ठी	एकस्सा, एकाय, एकिस्सा	एकासं, एकासानं
सत्तमी	एकस्सं, एकायं	एकासु

नपुंसकलिंग

	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	एकं	एके, एकानि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दुतिया	एकं	एके, एकानि

विशेष : शेष पुंल्लिंगवत्।

	द्वि	ति (पुंल्लिंग)
पठमा	दुवे, द्वे	तयो
दुतिया	दुवे, द्वे	तयो
ततिया	द्वीभि, द्वीहि	तीभि, तीहि
चतुत्थी	द्विन्नं	तिन्नं, तिण्णन्नं
पञ्चमी	द्वीभि, द्वीहि	तीभि, तीहि
छट्ठी	द्विन्नं, दुविन्नं	तिन्नं, तिण्णन्नं
सत्तमी	द्वीसु	तीसु

ति

	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
पठमा	तिस्सो	तीनि
दुतिया	तिस्सो	तीनि
ततिया	तीहि, तीभि	तीहि, तीभि
चतुत्थी	तिस्सन्नं	तण्णं, तिण्णन्नं
पञ्चमी	तीभि, तीहि	तीभि, तीहि
छट्ठी	तिस्सनं	तिण्णं, तिण्णन्नं
सत्तमी	तीसु	तीसु

चतु

	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
पठमा	चत्तारो, चतुरो	चतस्सो	चत्तारि
दुतिया	चत्तारो, चतुरो	चतस्सो	चत्तारि
ततिया	चतूभि, चतुहि	चतुभि, चतूहि	चतूभि, चतूहि
चतुत्थी	चतुन्नं	चतस्सन्नं	चतुन्नं
पञ्चमी	चतूभि, चतूहि	चतूभि, चतूहि	चतूभि, चतूहि
छट्ठी	चतुन्नं	चतस्सन्नं	चतुन्नं
सत्तमी	चतूसु	चतूसु	चतूसु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पञ्च

	एकवचन
पठमा	पञ्च
दुतिया	पञ्च
ततिया	पञ्चभि, पञ्चहि
चतुत्थी	पञ्चन्नं
पञ्चमी	पञ्चभि, पञ्चहि
छट्ठी	पञ्चन्नं
सत्तमी	पञ्चसु

सभी अकारान्त संख्यावाचक शब्दों के रूप (छे से लेकर अठारह तक) पञ्च की तरह रूप रखते हैं।

'एकूनवीसति' (= उन्नीस) से लेकर 'नवनवुति' (= निन्यानवे) तक सभी शब्द नित्य स्त्रीलिंग एकवचन होते हैं। इनमें से इकारान्त शब्दों के रूप 'रत्ति' शब्द के समान तथा आकारान्त शब्दों के रूप 'कञ्ञा' शब्द के समान चलते हैं। ये शब्द इस प्रकार हैं--

२०	वीसति
२१	एकवीसति
२२	द्वेवीसति, द्वावीसति
२३	तेवीसति
२४	चतुवीसति
२५	पञ्चवीसति
२६	छब्बीसति
२७	सत्तवीसति
२८	अट्ठवीसति
२९	एकूनतिंसति
३०	तिंसति
३१	एकतिंसति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३२ द्वतिंसति
३३ तेत्तिंसति
३४ चतुत्तिंसति
३५ पञ्चतिंसति
३६ छत्तिंसति
३७ सत्ततिंसति
३८ अट्ठतिंसति
३९ एकूनचत्तालीसति
४० चत्तालीसति
४१ एकचत्तालीसति
४२ द्विचत्तालीसति
४३ तेचत्तालीसति, तिचत्तालीसति
४४ चतुचत्तालीसति
४५ पञ्चचत्तालीसति
४६ छचत्तालीसति
४७ सत्तचत्तालीसति
४८ अट्ठचत्तार्लीसति
४९ एकूनपञ्चसा
५० पञ्चासा
५१ एकपञ्चासा
५२ द्विपञ्चासा
५३ तिपञ्चासा
५४ चतुपञ्चासा
५५ पञ्पञ्चासा
५६ छपञ्चासा
५७ सत्तपञ्चासा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५८ अट्ठपञ्चासा

५९ एकूनसट्ठि

६० सट्ठि

६१ सट्ठि से ६९ एकूनसत्तति तक पूर्व प्रकार से

७० सत्तति

७१ एकसत्तति से ७९ एकूनासीति तक पूर्व प्रकार से

८० असीति

८१ एकासीति

८२ तियासीति, तिअसीति से ८९ एकूननवुति तक पूर्व प्रकार से

९० नवुति

९१ एकनवुति से ९९ नवनवुति तक पूर्व प्रकार से

संत (= सौ) से लेकर सतसहस्सं (= शतसहत्र) तक सभी शब्द नपुंसकलिङ्ग एकवचन होते हैं, जैसे सत मनुस्सा, सहस्सं कञ्ञायो, सतसहस्सं फलानि। किन्तु सतं तथा सहस्सं शब्दों का प्रयोग विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुरूप सामान्य विशेषण की तरह भी हो सकता है, जैसे सता इत्थियो, सतेहि कहापणेहि।

'कोटि', 'पकोटि', 'कोटिप्पकोटि' तथा 'अक्खोहिणी' शब्द स्त्रीलिङ्ग एकवचन होते हैं, जैसे कोटि मनुस्सा, कञ्ञायो, फलानि वा।

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय षष्ठ

धातु-रूप

क्रिया के अर्थ को प्रकट करने वाले शब्द को धातु (क्रियत्थ) कहते हैं। यह धातु वाक्य में प्रयुक्त होने से पूर्व कुछ प्रत्ययों से समन्वित होती है। यह समन्वित रूप ही धातुरूप कहलाता है। धातुरूप तीन संबंधों को व्यक्त करता है : काल, पुरुष और वचन। उदाहरणार्थ, 'पठति' धातुरूप पठ् धातु और ति प्रत्यय के संयोग से बना है। पठ का अर्थ पढ़ना है और ति का संयोग तीन बातें व्यक्त करता है-वर्तमान काल, प्रथम पुरूष और एकवचन। भाषाविज्ञान में धातु को अर्थतत्त्व और प्रत्यय को सम्बन्धतत्त्व कहा जाता है।

गण

रूप बनाने की सुविधा के लिए प्राचीन आर्यभाषाओं में सभी धातुओं को कुछ वर्गों में विभाजित कर लिया गया है जो गण कहलाते हैं। संस्कृत में दस गण मान गये हैं जबकि पालि में नौ। इन गणों का नामकरण गण में परिगणित धातुओं में से प्रथम धातु के आधार पर किया गया है। ये गण इस प्रकार हैं--

(१) भ्वादि गण

(२) रुधादिगण

(३) दिवादिगण

(४) तुदादि गण

(५) ज्यादि गण

(६) क्यादि गण

(७) स्वादि गण

(८) तनादि गण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(६) चुरादि गण

संस्कृत में एक अन्य 'अदादिगण' होता है जो पालि में नहीं माना गया। पालि में अन्य गणों की धातुओं का झुकाव भ्वादि गण की ओर रहता है ज्यादि एवं तुदादि का तो भ्वादिगण में अन्तर्भाव ही हो जाता है।

लकार

विभिन्न कालों का ज्ञान कराने के लिए पृथक्-पृथक् प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। एक काल से सम्बद्ध इन प्रत्ययों की अभिव्यक्ति के लिए 'लकार' शब्द का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत-काल में दस लकार माने जाते थे जिनमें लट् लकार को संस्कृत ने भी ग्रहण नहीं किया। उसका प्रयोग केवल वेद में ही देखा जाता है। पालि ने लुट् को भी ग्रहण नहीं किया। इस प्रकार पालि में लकारों की संख्या केवल आठ रह गयी है जो इस प्रकार है :

(१) लट् लकार (वर्तमान काल)

(२) लिट् लकार (परोक्षभूत)

(३) लृट् लकार (भविष्यकाल)

(४) लोट् लकार (आज्ञावाचक)

(५) लङ् लकार (अद्यतनभूत)

(६) विधि लिङ् लकार

(७) लुङ् लकार (अनद्यतनभूत)

(८) लृङ् लकार (कालातिपत्ति)

पद

संस्कृत में धातुरूपों को दो भागों में विभाजित किया गया है : आत्मनेपद और परस्मैपद। वहां कृर्तगामी क्रियाफल में आत्मनेपद तथा परगामी क्रियाफल में परस्मैपद का प्रयोग होता है। उक्त विभाजन तो पालि में भी मिलता है, लेकिन प्रयोगविषयक विधान का अभाव है। पालि में आत्मनेपदी धातुएँ परस्मैपदी हो गयी हैं।

अब प्रत्येक गण की एक-एक प्रमुख धातु के रूप प्रस्तुत किये जा रहे हैं। भ्वादिगण के रूप आत्मनेपद और परस्मैपद दानों रूपों में है और शेष के केवल परस्मैपद में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भ्वादिगण

भू धातु के रूप

(१) लट् लकार

	परस्मैपद		आत्मनेपद	
	एकवचन	अनेकवचन	एकवचन	अनेकवचन
पठम पुरिस	भवति	भवन्ति	भवते	भवन्ते
मज्झिम पुरिस	भवसि	भवथ	भवसे	भवव्हे
उत्तम पुरिस	भवामि	भवथ	भवसे	भ्वाम्हे

(२) लिट् लकार

पठम पुरिस	बभूव	बभूवु	बभूवित्थ	बभूविरे
मज्झिम पुरिस	बभूवे	बभूवित्थ	बभूवित्थो	बभूविब्हो
उत्तम पुरिस	बभूव	बभूविम्ह	बभूवि	बभूविम्हे

(३) लृट् लकार

पठम पुरिस	भविस्सति	भविस्सन्ति	भविस्सते	भविस्सन्ते
मज्झिम पुरिस	भविस्ससि	भविस्सथ	भविस्ससे	भविस्सव्हे
उत्तम पुरिस	भविस्सामि	भविस्साम	भविस्सं	भविस्साम्हे

(४) लोट् लकार

पठम पुरिस	भवतु	भवन्तु	भवतं	भवन्तं
मज्झिम पुरिस	भव, भवाहि	भवथ	भवस्सु	भवव्हो
उत्तम पुरिस	भवामि	भवाम	भवे	भवामसे

(५) लङ् लकार

पठम पुरिस	अभवा, अभव	अभूवू, अभवुं	अभवत्थ	अभवत्थुं
मज्झिम पुरिस	अभवो	अभवत्थ	अभवसे	अभवव्हं
उत्तम पुरिस	अभव, अभवं	अभवम्हा	अभविं	अभवम्हसे

(६) विधिलिङ्

पठम पुरिस	भवेय्य, भवे	भवेय्युं	भवेथ	भवेरं
मज्झिम पुरिस	भवेय्यासि, भवे	भवेय्याथ	भवेय्यासि, भवे	भवेय्यव्हो
उत्तम पुरिस	भवेय्यामि, भवे	भवेय्याम	भवेय्यामि, भेवे	भवेय्याम्हे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(७) लुङ् लकार

पठम पुरिस	अभवि, अभवी	अभवुं,अभविंसु	अभवा,अभवित्थ	अभवू
मज्झिम पुरिस	अभवो, अभवि	अभवित्थ	अभविसे	अभविव्हे
उत्तम पुरिस	अभविं	अभविम्हा, अभविम्ह	अभव, अभवं	अभविम्हे

(८) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अभविस्स, अभविस्सा	अभविस्संसु	अभविस्सथ	अभविस्सिंसु
मज्झिम पुरिस	अभविस्स, अभविस्से	ओविस्सथ	अभविस्ससे	अभविस्सव्हे
उत्तम पुरिस	अभविस्सं	अभविस्सम्हा	अभविस्सं	अभविस्साम्हसे

विशेष :

(१) भ्वादि गण की प्रमुख धातुएँ हैं : गम (जाना), पठ (पढ़ना), पच (पकाना), अद (खाना), अस (होना), दह (जलना), दिस्स (देखना), पा (पीना), आदि। इन सभी के रूप भू के समान होते हैं।

(२) भ्वादिगण के अतिरिक्त अन्य गणों के रूप केवल पाँच लकारों में परस्मैपद में उपलब्ध होते हैं : लट् (वर्तमान), लृट् (भविष्य), लङ् (भूत काल), विधिलिंग (आशीः) और लोट् (आज्ञा)।

रुधादिगण

रुध (रोकना) धातु परस्मैपद

(१) लट् लकार

	एकवचन	अनेकवचन
पठम पुरिस	रुन्धति, रुन्धित, रुन्धोति रुन्धीति, रुन्धेति	रुन्धन्ति
मज्झिम पुरिस	रुन्धसि, रुन्धिसि, रुन्धीति रुन्धोति, रुन्धेति	रुन्धथ
उत्तम पुरिस	रुन्धामि, रुन्धिमि, रुन्धीमि रुन्धेमि, रुन्धोमि	रुन्धाम

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	रुन्धिस्सति	रुन्धिस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	रुन्धिस्ससि	रुन्धिस्सथ
उत्तम पुरिस	रुन्धिस्सामि	रुन्धिस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	रुन्धतु	रुन्धतु
मज्झिम पुरिस	रुन्ध, रुन्धाहि	रुन्धथ
उत्तम पुरिस	रुन्धामि	रुन्धाम

(४) विधिलिंङ्

पठम पुरिस	रुन्धे, रुन्धेय्य	रुन्धं, रुन्धेय्य
मज्झिम पुरिस	रुन्धे, रुन्धेय्यासि	रुन्धेय्याथ
उत्तम पुरिस	रुन्धे, रुन्धेय्यामि	रुन्धेमु, रुन्धेय्याम, रुन्धेय्यामु

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अरुनिध, रुन्धि	अरुन्धिंसु, रुन्धिसु
मज्झिम पुरिस	अरुन्धि, रुन्धि	अरुन्धित्थ, रुन्धित्थ
उत्तम पुरिस	अरुन्धिं, रुन्धि	अरुन्धिम्हा, रुन्धिम्हा

विशेष :

छिद (छेदना), भिद (भेदना), बध (बांधना), भुज (खाना), लिप (लेपना), सिच (सींचना) आदि इस गण की प्रमुख धातु हैं। इनके रूप रुध के समान ही होते हैं।

दिवादिगण

दिव (खेलना) धातु परस्मैपद

(१) लट् लकार

पठम पुरिस	दिब्बति	दिब्बन्ति
मज्झिम पुरिस	दिब्बसि	दिब्बथ
उत्तम पुरिस	दिब्बामि	दिब्बाम

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	दिब्बिस्सति	दिब्बिस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	दिब्बिस्ससि	दिब्बिस्सथ
उत्तम पुरिस	दिब्बिस्सामि	दिब्बिस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	दिब्बतु	दिब्बन्तु
मज्झिम पुरिस	दिब्ब, दिब्बाहि	दिब्बथ
उत्तम पुरिस	दिब्बामि	दिब्बाम

(४) विधिलिङ्

पठम पुरिस	दिब्बे, दिब्बेय्य	दिब्बेय्युं
मज्झिम पुरिस	दिब्बेय्यासि	दिब्बेय्याथ
उत्तम पुरिस	दिब्बेय्यामि	दिब्बेय्याम

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अदिब्बी, दिब्बी, अदिब्ब, दिब्ब	अदिब्बुं, दिब्बुं, अदिब्बिसु, दिब्बंसु
मज्झिम पुरिस	अदिब्बो, दिब्बो, अदिब्ब, दिब्ब	अदिब्बित्थ, दिब्बित्थ
उत्तम पुरिस	अदिब्बिं, दिब्बिं	अदिब्बिम्हा, दिब्बिम्हा, दिब्बिम्हा, अदिब्बिम्ह

विशेष :

कुध (क्रोध करना), कुप (कोपना), गा (गाना), झा (ध्यान करना), युध (लड़ना), रुच (रुचना), लुभ (लोभ करना), हन (मारना) आदि इसी गण की धातुएँ हैं। इन सभी के रूप दिव के समान ही होते हैं।

तुदादिगण

तुद (पीड़ित करना) धातु परस्मैपद

(१) लट् लकार

पठम पुरिस	तुदति	तुदन्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मज्झिम पुरिस	तुदसि	तुदथ
उत्तम पुरिस	तुदामि	तुदाम

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	तुदिस्सति	तुदिस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	तुदिस्ससि	तदिस्सथ
उत्तम पुरिस	तुदिस्सामि	तुदिस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	तुदतु	तुदन्तु
मज्झिम पुरिस	तुद, तुदाहि	तुदथ
उत्तम पुरिस	तुदामि	तुदाम

(४) विधिलिङ् लकार

पठम पुरिस	तुदे, तुदेरुय	तुदुं, तुदेरुयुं
मज्झिम पुरिस	तुदे, तुदेरुयासि	तुदेरुयाथ
उत्तम पुरिस	तुदे, तुदेय्यामि	तुदेमु, तुदेय्याम, तुदेय्यामु

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अतुदि, तुदि, अतुदी, तुदी	अतुदं, तुदुं, अलुदिंसु, तुदिंसु
मज्झिम पुरिस	अतुदो, तुदो, अतुदि, तुदि	अुदित्थ, तुदित्थ, अतुदुत्थ, तुदुत्थ
उत्तम पुरिस	अतुदिं, तुदिं	अतुदिम्हा, तुदिम्हा, अतुदिम्ह, तुदिम्ह

विशेष :

खिप (फेंकना), गिल (गलाना), मुस (चुराना), लिख (लिखना), विद् (जानना), विस (प्रवेश करना) इस गण की प्रमुख धातुएँ हैं। इन सभी के रूप तुद के समान ही होते हैं।

ज्यादिगण

जि (जीतना) गण परस्मैपद

(१) लट् लकार

पठम पुरिस	जिनाति	जिनिन्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मज्झिम पुरिस	जिनासि	जिनाथ
उत्तम पुरिस	जिनामि	जिनाम

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	जिनिस्सति	जिनिस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	जिनिस्सासि	जिनिस्सथ
उत्तम पुरिस	जिनिस्सामि	जिनिस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	जिनातु	जिनन्तु
मज्झिम पुरिस	जिन, जिनाहि	जिनाथ
उत्तम पुरिस	जिनामि	जिनाम

(४) विधिलिङ्

पठम पुरिस	जिनेय्य, जिने	जिनेय्युं
मज्झिम पुरिस	जिनेय्यासि	जिनेय्याथ
उत्तम पुरिस	जिनेय्यामि	जिनेय्याम

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अजिनी, जिनी, अजिनि, जिनि	अजिनिंसु, जिनिंसु
मज्झिम पुरिस	अजिनि, जिनि, अजिन, जिन	अजिनत्थ, जिनित्थ
उत्तम पुरिस	अजिनिं, जिनिं	अजिनिम्हा, जिनिम्हा

विशेष :

इस गण की प्रमुख धातुएँ हैं : अस (खाना), चि (चुनना), ञा (जानना), पू (पवित्र करना), सि (सींना) आदि। इस सभी के रूप जि के समान ही होते हैं।

क्यादि गण

की (खरीदना) धातु परस्मैपद

(१) लट् लकार

पठम पुरिस	किणाति	किणन्ति
मज्झिम पुरिस	किणासि	किणाथ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तम पुरिस	किणामि	किणाम

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	किणिस्सति	किणिस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	किणिस्ससि	किणिस्सथ
उत्तम पुरिस	किणिस्सामि	किणिस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	किणातु	किणन्तु
मज्झिम पुरिस	किण, किणाहि	किणाथ
उत्तम पुरिस	किणामि	किणाम

(४) विधिलिङ्

पठम पुरिस	किणे, किणेय्य	किणेय्युं
मज्झिम पुरिस	किणेय्यासि	किणेय्याथ
उत्तम पुरिस	किणेय्यामि	किणेय्याम

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अकिणी, किणी, अकिणि, किणि	अकिणुं, किणुं
मज्झिम पुरिस	अकिणो, किणो, अकिण, किण	अकिणित्थ, किणित्थ
उत्तम पुरिस	अकिणिं, किणिं	अकिणिम्हा, किणिम्हा

विशेष :

गि (शब्द करना), वु (ढकना), सू (सुनना), इस गण की प्रमुख धातुएँ हैं जिनके रूप की के समान ही होते हैं।

स्वादि गण

सु (सुनना) धातु परस्मैपद

(१) लट् लकार

पठम पुरिस	सुणोति, सुणति	सुणोति, सुणन्ति
मज्झिम पुरिस	सुणोसि, सुणासि	सुणोध, सुणाध
उत्तम पुरिस	सुणोमि, सुणामि	सुणोम, सुणाम

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	सुणिस्सति, सोस्सति	सुणिस्सन्ति, सोस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	सुणिस्ससि, सोस्ससि	सुणिस्सथ, सोस्सथ
उत्तम पुरिस	सुणिस्सामि, सोस्सासि	सुणिस्साय, सोस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	सुणोतु, सुणातु	सुणोतु, सुणन्तु
मज्झिम पुरिस	सुणो, सुणोहि, सुण, सुणाहि	सुणोथ, सुणाथ
उत्तम पुरिस	सुणोमि, सुणामि	सुणोम, सुणाम

(४) विधिलिङ्

पठम पुरिस	सुणे, सुणेय्य	सुणेय्युं
मज्झिम पुरिस	सुणेय्यासि	सुणेय्याथ
उत्तम पुरिस	सुणेय्यामि	सुणेय्याम

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	असुणि, सुणि, असुणी, सुणी	असुणं, सुणं, असुणिंसु, सुणिंसु
मज्झिम पुरिस	असुणो, सुणो, असुण, सुण	असुणित्थ, सुणित्थ असुणित्थो, सुणित्थो, असोसि, सोसि, असोसित्थ, सोसित्थ
उत्तम पुरिस	असुणिं, सुणिं, अस्सोसिं, सोसिं	असुणिम्हा, सुणिम्हा, अस्सोसिम्हा, सोसिम्हा

विशेष :

खी (क्षीण होना), गि (शब्द करना), पाप (प्राप्त करना) इसी गण की प्रमुख धातुएँ हैं जिनके रूप सु के समान ही होते हैं।

तनादि गण

तन (फैलाना) धातु परस्मैपद

(१) लट् लकार

पठम पुरिस	तनोति	तनोन्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मज्झिम पुरिस	तनोसि	तनोथ
उत्तम पुरिस	तनोमि	तनोम

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	तनिस्सति	तनिस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	तनिस्ससि	तनिस्सथ
उत्तम पुरिस	तनिस्सामि	तनिस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	तनोतु	तनोन्तु
मज्झिम पुरिस	तनो, तनोहि	
उत्तम पुरिस	तनोमि	तनोम

(४) विधिलिङ्

पठम पुरिस	तने, तनेय्य	तनेय्युं
मज्झिम पुरिस	तनेय्यासि	तनेय्याथ
उत्तम पुरिस	तनेय्यामि	तनेय्याम

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अतनि, तनि, अतनी, तनी	अतुनं, तनुं
मज्झिम पुरिस	अतनो, तनो, अतनित्थो, तेनित्था	अतनित्थ, तनुत्थ
उत्तम पुरिस	अतनिं, तनिं	अतनिम्हा, तनिम्हा, अतनिम्ह, तनिम्ह

विशेष :

वन (मांगना), मन (जानना), कर (करना), आप (पाना) इसी गण की मुख्य धातुएँ हैं। इनके रूप तन के समान ही होते हैं।

चुरादि गण

चुर (चुराना) धातु परस्मैपद

(१) लट् लकार

पठम पुरिस	चोरेति, चोरयति	चोरेन्ति, चोरयन्ति
मज्झिम पुरिस	चोरेसि, चोरयसि	चोरेथ, चोरयथ
उत्तम पुरिस	चोरेमि, चोरयामि	चोरेम, चोरयाम

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	चोरेस्सति, चोरयिस्सति	चोरेस्सन्ति, चोरयिस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	चोरेस्सासि, चोरयिस्ससि	चोरेस्सथ, चोरयिस्सथ
उत्तम पुरिस	चोरेस्सामि, चोरयिस्सामि	चोरेस्साम, चोरयिस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	चोरेतु, चोरयतु	चोरेयन्तु, चोरयन्तु
मज्झिम पुरिस	चोरे, चोरेहि, चोरय, चोरयहि	चोरेथ, चोरयथ
उत्तम पुरिस	चोरेमि, चोरयामि	चोरेम, चोरयाम

(४) विधिलिंङ्

पठम पुरिस	चोरे, चोरेय्य, चोरये, चोरयेय्य	चोरय्युं, चोरयेय्युं
मज्झिम पुरिस	अचोरयो, चोरयो, अचोरयित्थो, चोरयित्थो	अचोरयित्थ, चोरयित्थ
उत्तम पुरिस	चोरेय्यामि, चोरेयेय्यामि	चोरेय्याम, चोरयेय्याम

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अचोरयि, चोरयि, अचोरयी, चोरयी	अचोरयुं, चोरयुं
मज्झिम पुरिस	अचोरयो, चोरयो, अचेरयित्थो, चोरयित्थो	अचोरयित्थ, चोरयित्थ
उत्तम पुरिस	अचोरयिं, चोरयिं	अचोरयिम्हा, चोरयिम्हा

विशष :

कण्ण (सुनाना), कथ (कहना), गण (गिनना), चित्त (विचारना), पुस (पोसना), पूज (पूजना), दिस (उपदेश देना), वन्द (वन्दना करना) इसी गण की धातुएँ हैं। इनके रूप चुर के समान ही होते हैं।

कुछ अति प्रचलित धातुएँ

गम (जाना) धातु

(१) लट् लकार

पठम पुरिस	गच्छति	गच्छन्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मज्झिम पुरिस	गच्छसि	गच्छथ
उत्तम पुरिस	गच्छमि	गच्छाम

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	गमिस्सति	गमिस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	गमिस्ससि	गमिस्सथ
उत्तम पुरिस	गमिस्सामि	गमिस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	गच्छतु	गच्छन्तु
मज्झिम पुरिस	गच्छ, गच्छहि	गच्छथ
उत्तम पुरिस	गच्छामि	गच्छाम

(४) विधिलिङ्

पठम पुरिस	गच्छेय्य	गच्छेय्युं
मज्झिम पुरिस	गच्छेय्यासि	गच्छेय्याथ
उत्तम पुरिस	गच्छेय्यामि	गच्छेय्याम

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अगमी, गमी, अगमि, गमि	अगमुं, गमुं, अगमिंसु, गमिंसु
मज्झिम पुरिस	अगमो, गमो, अगमित्थो, गमित्थो	अगमित्थ, गमित्थ
उत्तम पुरिस	अगमिं, गमिं	अगमिम्हा, गमिम्हा, अगमुम्हा, गमुम्हा

दा (देना) धातु

(१) लट् लकार

पठम पुरिस	ददाति, देति	ददन्ति, देन्ति
मज्झिम पुरिस	ददासि, देसि	ददाथ, देथ
उत्तम पुरिस	ददामि, देमि, दम्मि	ददाम, देम, देम्म

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) लृट् लकार

पठम पुरिस	ददिस्सति, देस्सति	ददिस्सन्ति, देस्सन्ति
मज्झिम पुरिस	ददिस्ससि, दस्ससि	ददिस्सथ, दस्सथ
उत्तम पुरिस	ददिस्सामि, दस्सामि	ददिस्साम, दस्साम

(३) लोट् लकार

पठम पुरिस	ददातु, देतु	ददन्तु, देन्तु
मज्झिम पुरिस	दद, ददाहि, दे, देहि	ददाथ, देथ
उत्तम पुरिस	ददामि, देमि	ददाम, देम

(४) विधिलिङ्

पठम पुरिस	ददे, ददेय्य, दज्जु	ददेय्युं, दज्जुं
मज्झिम पुरिस	ददेय्यासि	ददेय्याथ
उत्तम पुरिस	ददेय्यामि, दज्जं	ददेय्याम

(५) लृङ् लकार

पठम पुरिस	अददी, ददी, अददि, ददि	अददुं, ददुं, अददिंसु, ददिंसु
मज्झिम पुरिस	अददो,ददो,अददित्थो,दित्थो	अददित्थ, ददित्थ, अदसित्थ, दासित्थ
उत्तम पुरिस	अददिं, ददिं, अदासिं, दासिं	अदसिम्हा, ददिम्हा, अदासुम्हा, दासुम्हा

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वितीय खण्ड

साहित्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय सप्तम

साहित्य परिचय

बुद्धत्व प्राप्ति के समय ही शाक्य-सिंह की यह धारणा बन गयी थी कि अपने विचारों को जनसाधारण तक पहुँचाना है। फलतः बोधिप्राप्ति से परिनिर्वाणपर्यन्त लगभग पैंतालीस वर्ष वे घूम-घूमकर अपने सिद्धान्तों एवं विचारों का प्रचार करते रहे। बुद्धदेव के ये प्रवचन मौखिक ही होते थे। उनके बहुश्रुत तथा स्मृतिमान् भिक्षु इन उपदेशों को कण्ठस्थ कर लेते थे तथा उनके प्रचार-प्रचार में सहयोग करते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वयं बुद्धदेव ने किसी ग्रंथ का प्रणयन नहीं किया। आज त्रिपिटक में जो भी सूत्रादि संगृहीत हैं वे बुद्धवचन हैं लेकिन भिक्षुओं की श्रुतिपरम्परा का लिपिबद्ध संग्रह मात्र।

धर्म-संगीति

बुद्ध के जीवनकाल में ही संघ में काफी मतभेद थे। उनके मरणोपरान्त ये और भी बढ़ गये। परिनिर्वाण को एक सप्ताह भी व्यतीत नहीं हुआ था कि वृद्ध भिक्षु सुभद्र द्वारा यह कहते सुना गया : "भिक्षुओं ! शोक मत करो, विलाप मत करो। अच्छा ही हुआ हमारे महाश्रमण का परिनिर्वाण हो गया। वह हमें सदैव यह कहकर पीड़ित करता था कि यह करो, यह मत करो। अब हम जो चाहेंगे, करेंगे, जो नहीं चाहेंगे, नहीं करेगें।" संघ के इस स्वैराचार को देखकर स्थविर महाकाश्यप ने विनय एवं धर्म के संगायन के निमित्त संगीति की आयोजना की। संगीति का अर्थ है परिषद् या वार्तालाप। बौद्ध धर्म में संगीतियों का विशेष महत्त्व है क्योंकि इन्हीं के द्वारा बौद्ध धर्म के ग्रंथ आकार ग्रहण कर सके हैं। पालि-साहित्य में ऐसी नौ संगीतियों का वर्णन मिलता है लेकिन सभी का धार्मिक एवं साहित्यिक महत्त्व समान नहीं है।

प्रथम संगीति का आयोजन बुद्ध-परिनिर्वाण के तीन मास बाद राजगृह में वैभारगिरि की सप्तपर्णी गुफा में किया गया जिसमें पांच सौ भिक्षुओं ने भाग

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिया। अध्यक्ष स्थविर महाकाश्यप ने उपालि से विनय संबंधी बातें पूछीं और आनन्द से धर्मविषयक। उन्होंने जो भी कहा, उसे सभी ने स्वीकार किया तथा सभी ने उसका संगायन किया। इस संगीति में सुत्तपिटक और विनय का ही मौखिक संगायन हुआ। जिस समय यह सभा अपनी समाप्ति पर थी पुराण नामक वृद्ध भिक्षु विचरण करता हुआ वहां आ निकला। जब उससे संगीति में भाग लेने के लिए कहा गया तो उसने उत्तर दिया : "आवुस ! स्थविरों ने विनय एवं धर्म का सुंदर संगायन किया है। किन्तु मैंने शास्ता से जैसा सुना है, जैसा ग्रहण किया है, वैसा ही धारण करूंगा।"

बुद्ध-परिनिर्वाण के एक सौ वर्ष पश्चात् वैशाली के कुछ भिक्षुओं के नियमविरुद्ध आचरण को देखकर, वैशाली के बालुकाराम में दूसरी संगीति की गयी जो आठ मास चली। इसमें सात सौ भिक्षुओं ने भाग लिया और अध्यक्ष बने महास्थविर रेवत। इसमें विनय एवं धर्म का ही मौखिक संगायन किया गया। पालि साहित्य के विकास की दृष्टि से इस संगीति का विशेष महत्त्व माना जाता है।

तृतीय संगीति का आयोजन बुद्ध-परिनिर्वाण के २३६ वर्ष पश्चात् अशोक के समय में पाटलिपुत्र में किया गया। इसके अध्यक्ष थे मोग्गलिपुत्त तिस्स। इस समय बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्राप्त होने के कारण अनेक अबौद्ध उसमें प्रवेश कर गये थे और अपने-अपने विचारों को बौद्ध धर्म के सिद्धान्त बताने लगे थे। इस संगीति का उद्देश्य इन अबौद्धों को धर्म से निकालना तथा वास्तविक बुद्धवचनों को प्रकाश में लाना था। इस समय तक बौद्ध धर्म अठारह सम्प्रदायों में विभक्त हो चुका था। अध्यक्ष मोग्गलिपुत्त तिस्स ने 'कथावत्थु' नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें बौद्ध धर्म के सत्तरह सम्प्रदायों के दार्शनिक मतों का खण्डन कर थेरवाद (स्थविरवाद) को वास्तविक धर्म सिद्ध किया। यह संगीति नौ मास चली। इस संगीति का विशेष महत्त्व दो कारणों से है : प्रथम, इसमें अभिधम्म पिटक का प्रादुर्भाव हुआ। द्वितीय, इसमें बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए न केवल भारत के विभिन्न भागों में, प्रत्युत विदेशों में भी भिक्षु भेजे गये। अशोक के दूसरे एवं तेरहवें शिलालेख से स्पष्ट होता है कि उसने सीमान्त देशों में बसने वाली यवन, काम्बोज, गान्धार, पितनिक, भोज, आन्ध्र, पुलिन्द आदि जातियों में और केरलपुत्र, सत्यपुत्र, चोल, पाण्ड्य आदि दक्षिणी भारत के राज्यों में तथा सिंहल द्वीप (लंका) में धर्मप्रचारार्थ भिक्षुओं को भेजा था। अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा भी धर्मप्रचारार्थ लंका गये थे। इस संगीति का विशेष महत्त्व होने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

के बाद भी बौद्ध धर्म के विभिन्न संप्रदायों में इसका नामोल्लेख नहीं मिलता। संभवत: थेरवाद (स्थविरवाद) को ही वास्तविक बौद्ध धर्म मानने के कारण अन्य सम्प्रदायों ने इसे विशेष महत्त्व नहीं दिया। अशोक के शिलालेखों में भी इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

लंका में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के पश्चात् वहां कई संगीतियों का आयोजन किया गया। दो संगीतियाँ क्रमशः देवानांप्रिय तिस्स (२४७-२०७ ई० पू०) और दुट्ठगामणि (१०१-७७ ई० पू०) नामक लंकाधिपों के समय में हुईं लेकिन उनका विशेष महत्त्व नहीं है। अभी तक यह परम्परा मौखिक ही चल रही थी। स्मरणशक्ति के ह्रास के कारण बुद्धवचन विस्मृत न हो जाएं-इस आशंका से सिंहलनरेश वट्टगामणि अभय (२९-१७ ई० पू०) ने त्रिपिटक को ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध करा दिया। इसे ही स्थविरवादी परम्परा चतुर्थ संगीति नाम देती है।

विक्रम की प्रथम शती में कुषाणवंशीय कनिष्क ने कश्मीर की राजधानी के पास कुण्डलवन विहार में पाँच सौ भिक्षुओं की सभा आयोजित की जिसके अध्यक्ष महाकवि अश्वघोष थे। इसमें सभी भिक्षु सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के थे। अत्यन्त परिश्रम से उन्होंने बौद्धधर्म के सिद्धान्तों पर अपने मत निश्चित किये, विरोधों का परिहार किया और त्रिपिटक पर विशाल व्याख्या लिखी जो 'महाविभाषा' कहलाती है। कहा जाता है कि कनिष्क ने उन्हें ताम्रपत्रों पर खुदवाकर जमीन में गडवा दिया और वहाँ एक स्तूप भी बनवा दिया। आज यह स्थल ज्ञात नहीं है। सिंहलदेशों के ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन चीन, तिब्बत और मंगोलिया के ग्रन्थों में इसका वर्णन मिलता है। ये लेखक इसे ही चतुर्थ संगीति कहते हैं। स्थविरवादी परम्परा इसके विषय में मौन है, लेकिन बौद्धधर्म की सुव्यवस्था का कारण यही संगीति है।

स्थविरवादी परम्परा के अनुसार पंचम संगीति वर्मा में मांडले नगर में राजा मिण्डो नमिन् के संरक्षण में सन् १८७१ ई० में आयोजित की गयी। इसमें त्रिपिटक का संपादन किया गया और उन्हें संगमरमर की पट्टियों पर खुदवाकर भूमि में गड़वा दिया जिससे धर्मग्रंथों को चिरस्थायी बनाया जा सके। सुत्तपिटक, विनयपिटक तथा अभिधम्मपिटक को क्रमशः ४१०, १११, तथा २८० पट्टियों पर बर्मी अक्षरों में अंकित किया गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छठी संगीति २५०० वीं बुद्ध जयन्ती के अवसर पर बर्मा में रंगून नगर में १९५४-१९५६ ई० तक आयोजित की गयी। इसमें बर्मी भाषा में त्रिपिटक का अंतिम रूप से संशोधन किया गया। इसी पाठ के आधार पर भिक्षु जगदीश काश्यप ने त्रिपिटक का देवनागरी संस्करण संपादित किया है।

थेरवादी परम्परा के अनुसार दो संगीतियां थाईलेंड में आयोजित की गयीं। इनका महत्त्व थाईलेंड में बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से है, पालिभाषा या साहित्य की दृष्टि से नहीं। थेरवादी परम्परा के अतिरिक्त भी कुछ विशाल संगीतियां की गयीं, लेकिन पालिभाषा की दृष्टि से उनका उल्लेख अप्रासंगिक ही होगा।

पालि साहित्य

समस्त बौद्ध-साहित्य को सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है (क) पालि या पिटक, (ख) अनुपालि या अनुपिटक। पालि या पिटक के अन्तर्गत बौद्धधर्म की साम्प्रदायिक रचनाएं आती हैं। ये तीन पिटकों के रूप में संगृहीत हैं जिन्हें संक्षेप में त्रिपिटक कहा जाता है। ये पिटक हैं: सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक। इनमें सुत्तपिटक में चित्तविषयक उपदेश, विनयपिटक में सदाचारविषयक नियम तथा अभिधम्मपिटक में दार्शनिक शिक्षाएं संगृहीत हैं। अनुपालि या अनुपिटक में वे ग्रंथ आते हैं जो त्रिपिटक को आधार बनाकर लिखे गये हैं। इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : धार्मिक ग्रंथ तथा शास्त्रीय ग्रंथ।

(क) पालि या पिटक

इसके अन्तर्गत त्रिपिटक आता है। ये तीन पिटक हैं : सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक। सुत्तपिटक के विभिन्न सुत्तों को आकार की दृष्टि से पांच भागों में विभाजित किया है जो निकाय कहलाते हैं। ये निकाय हैं : दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, सुंयुत्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय और खुद्दकनिकाय। विनयपिटक के पाचं भाग हैं : पाराजिक, पाचित्तिय, महावग्ग, चुल्लवग्ग और परिवार। इन सभी में भिक्षुओं के सदाचार एवं दिनचर्या के नियमों का वर्णन है। अभिधम्मपिटक में दार्शनिक विषय रखे गये हैं। इसके अन्तर्गत सात ग्रंथ आते हैं। धम्मसंगणि, विभंग, धातुकथा, पुग्गलपञ्ञति, कथावत्थु यमक और पट्ठान।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ख) अनुपालि या अनुपिटक

इस वर्ग में वह सम्पूर्ण साहित्य आ जाता है जो त्रिपिटक के अतिरिक्त है। इसे दो उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है : धार्मिक साहित्य और शास्त्रीय साहित्य। धार्मिक के अन्तर्गत वह साहित्य आता है जिसका उपजीव्य त्रिपिटक ही हैं। इसमें बुद्धघोष की अट्ठकथाएं, वंश साहित्य तथा मिलिन्द प्रश्न आदि ग्रंथ आते हैं। इनका मुख्य प्रयोजन धर्मप्रचार ही है। शास्त्रीय साहित्य के अन्तर्गत काव्य, व्याकरण, कोश, छन्दशास्त्र आदि की रचनाएं आती हैं। तेलकटाहगाथा, कच्चायन तथा मोगल्लान व्याकरण, सद्दनीति, अभिधान प्रदीपिका, एकाक्षरकोश आदि ग्रंथ इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

पालि में अनेक शिलालेख भी पाये जाते हैं। केवल अशोक के ही चौदह शिलालेख, सात स्तम्भ लेख, दो फुटकर अभिलेख तथा दो लघु शिलालेख उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त सांची, भरहुत, सारनाथ आदि अभिलेख भी पालि भाषा में उपलब्ध होते हैं, लेकिन इनका महत्त्व साहित्यिक दृष्टि से अधिक नहीं है। हां, ऐतिहासिक तथा धार्मिक दृष्टि से ये अवश्य महत्त्वपूर्ण हैं।

बुद्धवचनों का एक अन्य वर्गीकरण भी उपलब्ध होता है। इसके अनुसार बुद्धवचनों को नौ अंगों में विभाजित किया गया है। ये अंग हैं : सुत्त, गेय्य, वैय्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अब्भुतधम्म और वेदल्ल। यहां इन पर प्रकाश डालना उपयुक्त ही होगा :

(१) सुत्त : यह शब्द सूत्र तथा सूक्त दोनों संस्कृत शब्दों का रूपान्तर समझा जाता है। अधिकांश विचारक सूत्र का ही पालिरूप मानते हैं। दीघनिकाय आदि में संगृहीत गद्य में लिखित बुद्धदेव के उपदेश सुत्त कहलाते हैं। ये उपदेश विभिन्न कथाओं में उसी प्रकार गुंथे रहते हैं जैसे सूत्र (धागे) में मणियाँ, इसीलिए इन्हें सुत्त (सूत्र) कहा जाता है।

(२) गेय्य : मज्झिमनिकाय के अलगद्दूपम सुत्त की अट्ठकथा में लिखा है कि सुत्तों में जो गाथाओं का अंश है वह गेय्य है, उदाहरणार्थ संयुत्तनिकाय का प्रारम्भिक भाग। लगता है कुछ विशेष गाथाओं को ही गेय्य माना गया होगा।

(३) वैय्याकरण : वैय्याकरण का अर्थ है व्याख्या। किसी सूत्र का विस्तारपूर्वक अर्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करने को वैय्याकरण कहा जाता है। अभिधम्म का व्याख्यापरक साहित्य भी वैय्याकरण कहलाता है।

(४) गाथा : केवल पद्य में रचित साहित्य गाथा कहलाता है। आचार्य बुद्धघोष ने धम्मपद, थेरगाथा और थेरीगाथा की गिनती गाथा के अन्तर्गत की है। थेरगाथा में अशोक के भाई वीतसोक की गाथाएँ संगृहीत होन से स्पष्टतः ही ये परवर्ती रचनाएँ भी सिद्ध हो जाती हैं।

(५) उदान : उदान का अर्थ है भावपूर्ण प्रीतिमय उद्गार। इसमें समाधिस्थ अवस्था में बुद्ध के मुख से निस्सृत ज्ञानपूर्ण वाक्य संगृहीत हैं।

(६) इतिवुत्तक : 'ऐसा कहा गया है' या 'तथागत ने ऐसा कहा है' से प्रारम्भ होने वाले उपदेश इतिवुत्तक कहलाते हैं। ये गद्य और पद्य दोनों में हैं और प्रायः नैतिक विषयों पर ही है।

(७) जातक : बुद्धदेव के पूर्वजन्मों की कथाएँ जातक कहलाती हैं। इन कथाओं से सम्बद्ध अनेक दृश्य साँची, भरहूत आदि के स्तूपों की वेष्ठनी पर अंकित हैं जो ई० पू० १५० के आसपास के हैं।

(८) अब्भुतधम्मः अद्भुत वस्तुओं का वर्णन करने वाले सुत्त अब्भुतधम्म कहलाते हैं। संभव है बुद्ध और उनके शिष्यों में असाधारण बातों का वर्णन करने वाला कोई ग्रंथ रहा हो, लेकिन आचार्य बुद्धघोष के समय (पाँचवी शताब्दी) से पूर्व ही वह विलुप्त हो गया होगा।

(९) वेदल्ल : प्रश्नोत्तर के रूप में लिखे गये उपदेश वेदल्ल कहे जाते हैं। मज्झिमनिकाय में महावेदल्ल और चुल्लवेदल्ल दो सुत्त हैं। इनमें क्रमशः म्हाकोट्ठित तथा सारिपुत्र एवं भिक्षुणी धर्मदिन्ना तथा उसके पूर्व आश्रम के पति के प्रश्नोत्तर हैं। इनसे वेदल्ल संग्रह के स्वरूप का कुछ आभास मिल सकता है।

बुद्धवचनों का एक अन्य वर्गीकरण संख्यात्मक रूप में भी मिलता है। कुल बुद्धवचन चौरासी हजार हैं। थेरगाथा में आनन्द कहते हैं कि उन्हें चौरासी हजार बुद्धवचनों का ज्ञान है जिनमें बयासी हजार बुद्धदेव से तथा दो हजार संघ से ग्रहण किये हैं। 'महावंश' के अनुसार अशोक द्वारा पूछे जाने पर महास्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स ने धर्म के चौरासी हजार स्कन्ध बताये थे। यह वर्गीकरण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि यह न धर्म के समझने में सहायक है और न उपदेशों के स्वरूप को जानने में। इससे केवल उपदेशों की संख्या का ज्ञान हो जाता है।

स्पष्ट है कि बुद्धवचनों के उक्त तीन वर्गीकरणों में प्रथम ही सर्वाधिक उपादेय है और सर्वाधिक प्रचलित भी। इससे न केवल विषय, बल्कि शैली का भी आभास मिल जाता है।

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय अष्टम

त्रिपिटक

वेदों के समान पालि त्रिपिटक भी, भारतवर्ष की विश्व साहित्य को अमूल्य देन है। पहले पिटक के रूप में सुत्त और विनय की ही गणना की जाती थी। अभिधम्म परवर्ती सृष्टि है किन्तु उसका अस्तित्व अशोक के समय तक अवश्य स्थिर हो गया था। इन तीनों ही पिटकों में समय-समय पर परिवर्तन-परिवर्द्धन अवश्य होता रहा है। डा० श्रीमती रीज डेविड्स का यह कथन असत्य नहीं है : "ज्यों-ज्यों शताब्दियाँ गुजरती गयीं, बौद्धधर्म की प्रायः प्रत्येक पुस्तक में स्वल्प मात्रा में परिवर्तन होता चला गया।" तथापि न केवल साहित्यिक, बल्कि धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह ग्रंथसमूह नितान्त महत्त्वपूर्ण है।

सुत्तपिटक (सूत्रपिटक)

सुत्तपिटक को धम्मपिटक भी कहा जाता है। यह निकायों या आगमों में विभक्त है। सर्वास्तिवादी इन्हें आगम ही कहते हैं जबकि थेरवादी (स्थविरवादी) परम्परा इन्हें उक्त दोंनों ही शब्दों से अभिहित करती है, तथापि निकाय शब्द अधिक प्रचलित है। ये निकाय हैं : दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय और खुद्दकनिकाय। यहां इन पर संक्षिप्त प्रकाश डालना ही युक्ति संगत होगा।

१. दीघनिकाय (दीर्घनिकाय)

दीघनिकाय बड़े सुत्तों का संग्रह है। आकार में बड़े सुत्त ही इसमें संगृहीत किए गये हैं। इस निकाय में कुल चौंतीस सुत्त हैं जो तीन वर्गों में विभक्त हैं : सीलक्खन्धवग्ग, महावग्ग और पाथिकवग्ग। इस निकाय में संगृहीत सुत्त इस प्रकार हैं :

(क) सीलक्खन्धवग्ग

१. ब्रह्मजालसुत्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. सामञ्ञफल सुत्त
३. अम्बट्ठसुत्त
४. सोणदण्ड सुत्त
५. कूटदन्त सुत्त
६. महालि सुत्त
७. जालिय सुत्त
८. कस्सपसीहनाद सुत्त
९. पोट्ठपाद सुत्त
१०. सुभसुत्त
११. केवट सुत्त
१२. लोहिच्च सुत्त
१३. तेविज्जसुत्त

(ख) महावग्ग

१४. महापदान सुत्त
१५. महानिदान सुत्त
१६. महापरिनिब्बान सुत्त
१७. महासुदस्सन सुत्त
१८. जनवसभ सुत्त
१९. महागोविन्द सुत्त
२०. महासमय सुत्त
२१. सक्कपञ्ह सुत्त
२२. महासतिपट्ठान सुत्त
२३. पायासि सुत्त

(ग) पाथिकवग्ग

२४. पाथिकसुत्त
२५. उदुम्बरिकसीहनाद सुत्त
२६. चक्कवत्तिसीहनाद सुत्त
२७. अग्गञ्ञसुत्त
२८. सम्पदासादनीय सुत्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२९. सापादिक सुत्त

३०. लक्खणसुत्त

३१. सिगालोवाद सुत्त

३२. आटानाटिय सुत्त

३३. संगीतिपरियाय सुत्त

३४. दसुत्तर सुत्त

यहां सुत्तों को कालक्रम से नहीं रखा गया है। कुछ सुत्त जो काफी बाद के हैं, पहले स्थान पा गये हैं और पहले सुत्त बाद में पड़ गये हैं। प्रथम वर्ग सीलक्खन्धवग्ग (शीलस्कन्धवर्ग) के अन्तर्गत उन सुत्तों को रखा गया है जो महात्मा बुद्ध के शील, समाधि और प्रज्ञाविषयक उपदेशों का विवरण प्रस्तुत करते हैं। इन सुतों में भारत के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन के चित्र स्थल-स्थल पर मिलते हैं। महावग्ग (महावर्ग) के अन्तर्गत आने वाले सुत्तों का नाम 'महा' शब्द से प्रारम्भ होता है। पाश्चात्य विचारक विण्डरनित्ज का मत है कि, इस वर्ग के उपदेश प्रारम्भ में लघुकाय रहे होंगे और बाद में परिवर्तित-परिवर्द्धित कर महा कर दिया गया होगा। यह धारणा ठीक नहीं है, क्योंकि महात्मा बुद्ध समय और परिस्थिति के अनुसार अपने सत्य को कभी संक्षिप्त और कभी विस्तृत स्वरूप देते रहते थे। अतः उन्हें बाद में परिवर्द्धित मानना युक्तिसंगत नहीं है। तीसरे वर्ग का प्रथम सुत्त पथिक सुत्त है, इसलिए इस वर्ग को पथिकवग्ग नाम दे दिया गया है।

वर्ण्य की दृष्टि से दीघनिकाय बहुत सम्पन्न है। इसके अनेक सुत्तों में भगवान् बुद्ध की अमूल्य ऐहिक शिक्षा सन्निहित है। ब्रह्मजाल सुत्त में ६२ मिथ्यादृष्टियों का विवरण दिया है जिससे भिक्षु इनसे बच सकें। इनमें अठारह धारणाएँ जीवन एवं जगत् के आदिसम्बन्धी हैं और चवालीस अन्त सम्बन्धी। अम्बट्ठसुत्त में जातिवाद एवं गोत्रवाद का प्रबल खण्डन किया गया है। गौतम बुद्ध का कहना है कि जो मानव जातिवाद, गोत्रवाद एवं अभिमानवाद में फंसे हैं, वे विद्या एवं आचरण की सम्पत्ति से बहुत दूर हैं। इनका परित्याग करके ही मानव अनुपम विद्या एवं आचरण की सम्पदा का साक्षात्कार कर सकता है। कूटदन्तसुत्त में बड़ी सामग्री वाले एवं हिंसायुक्त यज्ञ का खण्डन कर ज्ञानयज्ञ का आदर्श रखा गया है। पोट्ठपादसुत्त में पोट्ठपाद को शील, समाधि और प्रज्ञा का उपदेश दिया गया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। पोट्ठपाद के आत्मा-परमात्माविषयक प्रश्न पूछने पर वे उन्हें अव्याकृत (अनिर्वचनीय) कहकर छोड़ देते हैं तथा कारण समझाते हुए कहते हैं : "हे पोट्ठपाद ! ये प्रश्न न अर्थयुक्त हैं और न धर्मयुक्त, न ब्रह्मचर्य के लिए उपयुक्त हैं, न निर्वेद के लिए, न विराग के लिए, न निरोध के लिए, न शान्ति के लिए, न ज्ञान के लिए, न सम्बोधि के लिए और न निर्वाण के लिए ही, इसलिए मैंने इन्हें अव्याकृत कहा है।" इस सुत्त में आर्यसत्यों का विस्तृत वर्णन है। सुभसुत्त में शील, समाधि और प्रज्ञा, महानिदान सुत्त में प्रतीत्यसमुत्पाद, महासतिपट्ठान तथा चक्कवत्तिसीहनाद सुत्त में चार स्मृति-उपस्थानों का विस्तृत वर्णन है। महासुदस्सनसुत्त में बुद्ध के पूर्वजन्म तथा महापदान सुत्त में पूर्ववर्ती बुद्धों की जीवनियाँ दी गई हैं। महापरिनिब्बाण सुत्त बुद्धदेव के अन्तिम दिनों की जीवनी प्रस्तुत करता है। अजातशत्रु का अभियान, बुद्ध की अन्तिम यात्रा, अम्बपाली प्रसंग, बुद्धदेव की रुग्णता, चुन्द लुहार का भोजन-ग्रहण, अन्तिम समय, अन्तिम उपदेश, परिनिर्वाण, दाहक्रिया आदि अनेक घटनाओं की सूचना इस सुत्त से मिलती है। साथ ही बज्जियों के माध्यम से सात परिहानीय धर्मों का विस्तृत उपदेश हुआ है जिनसे कोई भी राष्ट्र उन्नति के शिखर का स्पर्श कर सकता है। ऐहिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है सिगोलवाद सुत्त जिसमें सम्पूर्ण गृहस्थधर्म का उपदेश दिया गया है। आचार्य बुद्धघोष का मत है कि गृहस्थसंबंधी कर्तव्यों में यहां किसी को भी नहीं छोड़ा गया है। बौद्धधर्म में गृहस्थ के स्वरूप और महत्त्व को समझाने के लिए इस सुत्त की उपादेयता अनुपम है। इसमें पाप के चार स्थान, सम्पदा नाश के छः कारण, मित्र और शत्रु की पहचान, छः दिशाओं की पूजा का बौद्ध विधान आदि का विस्तृत विवरण दिया गया है।

इस निकाय के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति बहुत दृष्टिगत होती है। उदाहरणार्थ शील, समाधि और प्रज्ञा, आर्यसत्य, स्मृति-उपस्थान, जाति एवं वर्णवाद का खण्डन आदि का कई-कई स्थानों पर वर्णन आया है। सोणदण्ड सुत्त का अन्तिम भाग यथावत् कूटदत्त सुत्त में रखा गया है। पूरे के पूरे वाक्यों की पुरावृत्ति तो अनेक सुत्तों में पायी जाती है। इसमें किसी प्रकार की सैद्धान्तिक असंगति नहीं है, क्योंकि भगवान् बुद्ध ने एक ही सिद्धान्त की अनेक स्थानों पर कहीं संक्षेप में ओर कहीं विस्तारपूर्वक व्याख्या की है, किन्तु इससे भिक्षुओं की संकलनविषयक न्यूनता अवश्य सामने आती है। कहीं-कहीं ऐसी सामग्री भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मिलती है जो बुद्ध जी की विचारधारा से मेल नहीं खाती, जैसे आटानाटिय सुत्त में भूत-प्रेतों को सन्तुष्ट करने के उपायों की विवेचना की गयी है, जबकि बुद्ध जी इस प्रकार के जीवों में आस्था ही नहीं रखते थे। अतः इस प्रकार के सुत्तों को परवर्ती परिवर्द्धन ही कहा जा सकता है।

दीर्घानकाय के उक्त विवेचन के उपरान्त उसमें सन्निहित उपदेशों के स्वरूप का दिग्दर्शन कराना भी आवश्यक है। एक सम्पूर्ण सुत्त को उद्धृत करना उपयुक्त न होगा। अतः सिगालोवाद सुत्त में सिगालपुत्त (गृहपतिपुत्त) को दिया गया सन्मित्त लक्षण सम्बन्धी उपदेश उद्धृत हैं--

"चत्तारोमे गहपतिपुत्त मित्ता सुहदा वेदितब्बाखउपकारको मित्तो सुहदो वेदितब्बो, समान सुक्खदक्खो मित्तो सुहदो वेदितब्बो, अथ्थक्खार्या मित्तो सुहदो वेदितब्बो, अनुकम्पको मित्तो सुहदो वेदितब्बो।

चतूहि खो, गहपतिपुत्त ठानेहि उपकारको मित्तो सुहदो वेदितब्बो। पमत्तं रक्खति, पमत्तस्स सापतेय्यं रक्खति, भीतस्स सरणं होति, उपन्नेसु किच्चकरणीयेसु तद्दिगुणं भोगं अनुप्पदेतिखइमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूँहि ठानेहि उपकारको मित्तो सुहदो वेदितब्बो।

चतूहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि समानसुक्खदुक्खो मित्तो सुहदो वेदितब्बो। गुय्हमक किंस्स आचिक्खाति, गुय्हमस्स परिगुहति, आपदासु न विजहति, जीवितं पिस्स अत्थाय परिच्चतं होतिखाइमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि मानसुक्खदुकखो मित्तो सुहदो वेदितब्बो।

चतूहि खो गहपतिपुत्त, ठानेहि अत्थक्खायी मित्तो सुहदो वेदितब्बो। पापा निवारेति, कल्याणे निवेसेति, अस्सतुं सावेति, सग्गस्स मग्गं आचिक्खतिखाइमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि अनुकम्पको मित्तो सुहदो वेदितब्बो।

चतुहि खो, गहपतिपुत्त ठानेहि अनुकम्पको मित्तो सुहदो वेदितब्बो। अभवेनस्स न नन्दति, भवेनस्स नन्दति, अवण्णं भणमानं निवारेति, वण्णं भणमानं पसंसति-"इमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि अनुकम्पको मित्तो सुहदो वेदितब्बो।

अर्थात्, हे गृहपतिपुत्र ! इन चार मित्रों को सन्मित्र जानना चाहिए-उपकारक मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए, सुख-दुःख में समान रहने वाले मित्र को सन्मित्र

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जानना चाहिए, हित की बात कहने वाले मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए तथा अनुकम्पा करने वाले मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए।

हे गृहपतिपुत्र ! चार कारणों से उपकारक मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए। प्रमत्त की रक्षा करता है, प्रमत्त की सम्पत्ति की रक्षा करता है, भयभीत को शरण देता है और काम पड़ने पर दूना फल उत्पन्न करता है। हे गृहपतिपुत्र ! इन चार कारणों से उपकारक मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए।

हे गृहपतिपुत्र ! चार कारणों से सुख-दुःख में समान रहने वाले मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए। उसे रहस्य बताता है, उसके रहस्यों को गुप्त रखता है, आपदा में साथ नहीं छोड़ता तथा उसके लिए प्राण देने को भी तैयार रहता है। हे गृहपतिपुत्र ! इन चार कारणों से सुख-दुःख में समान रहने वाले मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए।

हे गृहपतिपुत्र ! चार कारणों से हित की बात कहने वाले मित्र को सन्मित्र जानना चहिए। पापों से हटाता है, हितकर्म में लगाता है अश्रुत को सुनाता है तथा स्वर्ग का मार्ग बताता है। हे गृहपतिपुत्र ! इन चार कारणों से हित की बात कहने वाले मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए।

हे गृहपतिपुत्र ! चार कारणों से अनुकम्पा करने वाले मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए। धनाभाव होने पर प्रसन्न नहीं होता, धनसम्पदा होने पर प्रसन्न होता है, बुराई कहने वाले को रोकता है तथा अच्छाई कहने वाले की प्रशंसा करता है। हे गृहपतिपुत्र ! इन चार कारणों से अनुकम्पा करने वाले मित्र को सन्मित्र जानना चाहिए।

२. मज्झिमनिकाय (मध्यमनिकाय)

मज्झिमनिकाय सुत्तपिटक का दूसरा निकाय है। इसमें मध्यम आकार वाले सुत्तों का संकलन किया गया है इसीलिए इसे मज्झिमनिकाय कहा जाता है। इस निकाय में १५२ सुत्त हैं जो पहले तीन पण्णासकों में विभक्त किये गये हैं : (क) मूल पण्णासक, (ख) मज्झिम पण्णासक, तथा (ग) उपरिपण्णासक। इन पण्णासकों में क्रमशः ५०, ५० और ५२ सुत्त हैं। मूल पण्णासक को पांच वर्गों में विभाजित किया गया है : मूल परिचाय वग्ग, सीहनाद वग्ग, ओपम्म वग्ग, महायमक वग्ग और चुलयमक वग्ग। इसमें प्रत्येक वर्ग में दस-दस सुत्त हैं। मज्झिम पण्णासक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

को सामाजिक अवस्था के अनुसार पांच वर्गों में विभाजित किया गया है : गहपति वग्ग, भिक्खु वग्ग, परिब्बाजक वग्ग, राज वग्ग और ब्राह्मण वग्ग। इनमें प्रत्येक वर्ग में दस-दस सुत्त हैं। उपरि पण्णासक को भी पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है : देवदह वग्ग, अनुपद वग्ग, सुञ्ञता वग्ग, विभंग वग्ग तथा सळायतन वग्ग। इन वर्गों में विभंग वग्ग में बारह तथा शेष में दस-दस सुत्त हैं। इस प्रकार पण्णासक में ५२ सुत्त हैं जबकि पहले दोनों में ५०-५०। ऊपरी दृष्टि से इस प्रकार पण्णासकों तथा वर्गों का यह विभाजन बहुत वैज्ञानिक प्रतीत होता है--प्रत्येक पण्णासक को पांच-पांच वर्गों में विभक्त करना तथा प्रत्येक वर्ग में दस-दस सुत्तों का संकलन। लेकिन वर्ण्य की दृष्टि से यह विभाग बहुत उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्त प्रायः प्रत्येक पण्णासक में ही नहीं, प्रत्येक वर्ग में भी दृष्टिगत होते हैं।

सुत्तपिटक में मज्झिमनिकाय का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस निकाय में स्थविरवाद के सभी आधारभूत दार्शनिक सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या मिल जाती है इसीलिए महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इसे 'बुद्धवचनामृत' की संज्ञा से विभूषित किया है। वस्तुतः इस निकाय में संकलित सुत्तों की बहुविध महत्ता की दृष्टि से यह अभिधान उपयुक्त ही है। जो पाश्चात्य विचारक बुद्ध में मौलिकता की कमी देखते हैं उन्हें भी इस निकाय में मौलिक गन्ध प्रतीत होती है जो इसकी महत्ता का ही परिचायक है।

इस निकाय के अधिकांश सुत्त स्वयं गौतम बुद्ध द्वारा ही उपदिष्ट हैं, किन्तु कुछ सुत्त उनके प्रमुख शिष्यों--राष्ट्रपाल, सारिपुत्र, कच्चायन, आनन्द आदि--द्वारा भी कहे गए हैं। कुछ ऐसे सुत्तों का भी संकलन इस निकाय में किया गया है जिनके उपदेष्टा न बुद्ध हैं और न उनके प्रमुख शिष्य, जैसे घोटकमुख सुत्त में राजा उदयन का घोटकमुख को दिया गया उपदेश वर्णित है।

वर्ण्य की दृष्टि से स्थविरवाद के प्रायः सभी दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्त इस निकाय में आ गये हैं। चार आर्यसत्य, आर्य अष्टांगिक मार्ग, मध्यमा प्रतिपदा, षडायतन, पञ्चस्कन्ध, स्मृति-उपस्थान, आत्मवाद का खण्डन, अनात्मवाद का मण्डन, प्रतीत्यसमुत्पाद, ब्रह्मविहार, तृष्णाक्षय के उपाय, बोधिप्राप्ति के उपाय, निर्वाणप्राप्ति की बाधाएँ, गृहस्थ, भिक्षु एवं परिव्राजक के कर्तव्य, मन की प्रमुखता आदि का अनेक स्थलों पर विवेचन हुआ है। धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों पर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकाश डालना यहां अप्रासंगिक होगा, क्योंकि इनकी पृथक् विवेचना की गयी है। यहां लोक के उन्नयन में सहायक उपदेशों के कुछ अंश उद्धृत किये जाते हैं। एक सुत्त में शिक्षा दी गयी है कि मानव को भूत ओर भविष्य की चिन्ता छोड़कर वर्तमान पर ही ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए। भगवान् बुद्ध कहते हैं-''अतीत का अनुगमन न करे और न भविष्य की चिन्ता में पड़े। जो अतीत है, वह नष्ट हो गया और भविष्य तो अभी आया ही नहीं है। दिन-रात-निरालस्य और उद्योगी होकर विहरने वाले को ही 'भद्देकरन्त' (श्रेष्ठ कार्य करने वाला) कहते हैं।'' जातिवाद एवं वर्णव्यवस्था का खण्डन करते हुए भगवान् बुद्ध कहते हैं, ''कर्म के अनुसार जो पशुपालन से जीविका चलाता है, वह कृषक है, जो शिल्प से जीविका चलाता है, वह शिल्पी है, जो व्यापार से जीविका अर्जित करता है, वह वैश्य है। माता-पिता से उत्पन्न होने के कारण कोई ब्राह्मण नहीं होता, प्रत्युत ब्राह्मण वह है जो अपरिग्रही है। कमल के पत्ते पर जल और आरे की नोक पर स्थित सरसों को भाँति, जो भोगों में लिप्त नहीं है वही मेरे अनुसार ब्राह्मण है।'' महात्मा बुद्ध ने 'अलगद्दूपम सुत्त' में ऐसे व्यक्तियों का खण्डन किया है जो गाथा, उदान, जातक आदि धर्मग्रंथों को धारण तो करते हैं, लेकिन उनका आशय नहीं समझते, उनके अर्थ को प्रज्ञा से नहीं पकड़ते। इस प्रकार अज्ञानयुक्त होकर धर्म को धारण करना अजगर की पूँछ पकड़ने के समान अहितकर तथा दुःखद है। वे भिक्षुओं को समझाते हुए कहते हैं-''हे भिक्षुओं ! मैं बेड़े के समान निस्तारण के लिए तुम्हें धर्म का उपदेश देता हूं, पकड़ रखने के लिए नहीं। धर्म को बेड़े के समान उपदिष्ट जानकर तुम धर्म को भी छोड़ दो, अधर्म की तो बात ही क्या है।'' यों तो बुद्ध के अनेक उपदेश उद्धरणीय हैं, लेकिन स्थानाभाव से उन सभी का उल्लेख संभव नहीं है। केवल एक उपदेश उद्धृत कर प्रकरण समाप्त करना चाहूंगा। आयुष्मान् पूर्ण ने भगवान् बुद्ध से संक्षिप्त धर्मोपदेश की प्रार्थना की। भगवान् ने धर्मोपदेश के पश्चात् उसकी दृढ़ता की परीक्षा की भावना से उससे प्रश्न किया--

''पूर्ण ! इस संक्षिप्त धर्मोपदेश को ग्रहण कर तुम किस जनपद में विहार करोगे?''

''भन्ते ! सूनापरान्त नामक जनपद में।''

''पूर्ण ! सूनापरान्त जनपद के मनुष्य चण्ड और कठोर हैं। यदि वे तुम्हें

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुवाक्य कहें तो कैसा लगेगा?"

"भन्ते ! यदि ऐसा होगा तो मुझे यही अनुभूति होगी कि वे मनुष्य भद्र हैं जो मुझ पर हाथ से प्रहार नहीं करते।"

"पूर्ण ! यदि वे हाथ से प्रहार करें तो तुम्हें कैसा लगेगा?"

"भन्ते ! यदि ऐसा होगा तो मुझे लगेगा कि वे मनुष्य भद्र हैं जो मुझे डण्डे से नहीं मारते।"

"पूर्ण ! यदि सूनापरान्त के मनुष्य तुम्हें तीक्ष्ण शस्त्र से मार डालें, तब तुम्हें क्या होगा?"

"भन्ते ! मुझे लगेगा कि कुछ लोग जीवन से तंग आकर आत्महत्या के लिए शस्त्रहारक खोजते हैं, सो मुझे यह शस्त्रहारक बिना खोजे ही मिल गया।"

"साधु, साधु पूर्ण ! साधु पूर्ण !! तुम शमदम से युक्त होकर इस जनपद में विहार कर सकते हो।"

मज्झिमनिकाय केवल स्थविरवाद के धार्मिक प्रवचनों एवं सिद्धान्तों की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि कुछ अन्य दृष्टियों से भी सम्पन्न है। इस निकाय के तीन सुत्तों में महावीर स्वामी तथा उनके सिद्धान्तों के विषय में सूचनाएँ मिलती हैं। उस समय जैनसाधक घोर पीड़ोत्पादक तपश्चर्या करते थे। तीन सुत्तों में भगवान् बुद्ध की आत्मकथा उपलब्ध होती है जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। डाकू अंगुलिमाल तथा भिक्षु राष्ट्रपाल की कथा पर बौद्ध कवि अश्वघोष ने संस्कृत में 'राष्ट्रपाल' नाटक की रचना की थी जो आज अनुपलब्ध है। धर्मकीर्ति के वाद न्याय में इसका उल्लेख मात्र मिलता है। ब्राह्मण वग्ग में ब्राह्मणों के जीवन, सिद्धान्त, कर्म-काण्ड, पौरोहित्य, रूढ़िग्रस्तता आदि के सजीव चित्र मिलते हैं। कई सुत्तों में तत्कालीन राजाओं का विवरण आया है जो इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक सुत्त से आयुर्वेद की तत्कालीन अवस्था का पता चलता है। बाहित देश में महीन कपड़े बनने तथा रंगने का भी उल्लेख हुआ है। भौगोलिक जानकारी की दृष्टि से यह निकाय बहुत सम्पन्न है।

३. संयुत्तनिकाय (संयुक्त निकाय)

इस निकाय में छोटे-बड़े सभी आकार वाले सुत्त संगृहीत हैं, इसलिए इसे संयुत्तनिकाय कहा जाता है। यह निकाय पांच वर्गों में विभक्त है : सगाथ वग्ग,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निदान वग्ग, खन्ध वग्ग, सळयतन वग्ग और महावग्ग। वर्गों के नाम से उनकी विषयवस्तु का किञ्चित् आभास हो जाता है। सगाथ वग्ग में वे सुत्त संगृहीत हैं जो गाथाओं से परिपूर्ण हैं। निदान वग्ग में प्रतीत्यसमुत्पाद के रूप में भवचक्र की व्याख्या की गई है। खन्ध वग्ग में पञ्चस्कन्धों का विवेचन है, लेकिन यह विवेचन न गहन है और न दार्शनिक। बार-बार यही कहा गया है कि रूप अनित्य है, दुःखमय है आदि। सळायतनवग्ग में छः आयतनों की चर्चा है, साथ ही स्कन्धों की भी व्याख्या है। महावग्ग में बौद्धधर्म, दर्शन तथा साधनापद्धति की व्याख्या मिलती है। यह इन वर्गों के प्रमुख विषय रहे हैं लेकिन वर्ग-विशेष की विषयवस्तु इन्हीं तक सीमित नहीं रही है। उक्त पांचों वर्गों को पुनः संयुत्तों में विभाजित किया गया है। सगाथ वग्ग, निदान वग्ग, खन्ध वग्ग, सळायतन वग्ग तथा महावग्ग में क्रमशः ११, १०, १३, १० और १२ संयुत्त हैं। इस प्रकार इस निकाय में कुल मिलाकर ५६ संयुत्त हैं। संयुत्तों में कहीं तो एक विषय से सम्बद्ध मुख्य उपदेश एकत्र कर दिये गये हैं जैसे बोज्झंग संयुत्त, मग्गसंयुत्त, लाभसक्कार संयुत्त आदि और कहीं देवता या यक्षादि के निर्देश के आधार पर उनका विभाजन कर दिया गया है यथा देवता संयुत्त, यक्ख संयुत्त। कहीं-कहीं उपदेष्टा को ही आधार बना लिया है। जैसे मोग्गल्लानसंयुत्त, सारिपुत्तसंयुत्त आदि। पर ये आधार अंशतः ही सत्य सिद्ध होते हैं।

संयुत्तों को पुनः सुत्तों में विभाजित किया गया है। सुत्तों की संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। संयुत्तनिकाय के सुत्तों की परम्परागत संख्याविषयक मान्यता ७७६२ है, लेकिन भिक्षु जगदीश काश्यप ने अपने संस्करण में यह संख्या २९४१ मानी है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इसे ही मान्यता प्रदान की है। इनके अनुसार विभिन्न वर्गों में सुत्तों की संख्या क्रमशः २७१, २९६, ७१६, ४३४ तथा १२२४ है।

वर्ण्य की दृष्टि से यह निकाय पूर्ववर्ती निकायों से साम्य रखने पर भी कुछ भिन्न है। ग्रामीण जीवन का दिग्दर्शन, काव्यात्मकता एवं लोकतत्त्व इस निकाय की प्रमुख विशेषताएँ हैं। बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों-आर्यसत्य, आर्य अष्टांगिक मार्ग, मध्यमा प्रतिपदा का वर्णन प्रायः प्रत्येक निकायों में मिलता है, लेकिन इस निकाय के 'धम्मचक्कपवत्तन सुत्त' में गौतम बुद्ध ऋषिपत्तन (सारनाथ) में पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को चार आर्य सत्यों का स्पष्टतः उपदेश देते हैं। यहीं वे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भोग-विलासों में लिप्त रहना और कायक्लेशपूर्वक तपश्चर्या करना-इन दो अतियों के त्याग तथा अष्टांगिक मार्ग का उपदेश भी देते हैं। उक्त तीनों सिद्धान्तों का प्रथमतः उपदेश यहीं दिया गया है। इसी निकाय के सळायतनवग्ग में शाक्य मुनि भिक्षुओं को धर्मप्रचार के निमित्त भेजते हुए कहते हैं-''भिक्षुओं ! बहुत जनों के हित के लिए, देवताओं और मनुष्य के प्रयोजन के लिए, हित के लिए, सुख के लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। भिक्षुओं ! आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी और अन्त में कल्याणकारी धर्म का उसके पूरे शब्दों और अर्थों के साथ उपदेश करते हुए सम्पूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'' इस निकाय के थपति सुत्त से स्पष्ट होता है कि बुद्ध सभी प्राणियों को प्रव्रज्या का उपदेश नहीं देते थे। वे गृहस्थाश्रम में रहकर संयम एवं प्रमादशून्य जीवन को भी बुरा नहीं समझते थे। स्थपतियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं-''हे स्थपतियों ! गृहवास बाधाओं से परिपूर्ण है, मलयुक्त मार्ग है जबकि संन्यास खुला स्थान है। वहाँ विकारों के लिए कोई स्थान नहीं है, किन्तु तुम्हारे लिए प्रमादशून्य होकर गृहस्थ में रहना ही उपयुक्त है।'' स्त्रियों के विषय में वे स्पष्ट कहते हैं कि यदि स्त्री पतिव्रता, सलज्ज, विनीत तथा ज्ञानसम्पन्न है तो वह मृत्यु के उपरान्त सद्गति प्राप्त करती है। यदि वह दुराचारिणी, निर्लज्ज एवं ज्ञानशून्य है तो मरणोपरान्त दुर्गति में पड़ती है। वे यह भी स्वीकारते हैं कि स्त्रियों को पाँच विशेष कष्ट उठाने पड़ते हैं- अपने घर का त्याग, पतिगृहगमन, गर्भधारण, प्रसव और पतिसेवा। भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहते हैं-''भिक्षुओं ! आँखें तुम्हारी नहीं हैं, रूप तुम्हारा नहीं है, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया, मन तुम्हारे नहीं हैं। इन्हें छोड़ो, इन्हें छोड़ने में ही तुम्हारा हित होगा।'' एक स्थान पर स्पष्ट कहते हैं कि लाभ और सत्कार चाहने वाले भिक्षु का पतन हो जाता है और उसकी वही गति होती है जो अंकुश को निगलने वाली मछली की होती है, इसलिए लाभ और सत्कार की इच्छा कभी भी मत करो।

इस निकाय का सगाथवग्ग अन्य वर्गों की अपेक्षा कुछ विशिष्ट है। इसकी गाथाएँ अत्यन्त मार्मिक हैं। यहां धर्मोपदेश तथा काव्यात्मकता का मणिकाञ्चन योग हुआ है। मार सयुत्त और भिक्खुनी संयुत्त के आख्यान काव्य का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। सगाथवग्ग में प्रश्नोत्तर की रीति पर सुंदर रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। यहां एक-दो उदाहरण प्रस्तुत करना न्यायसंगत ही होगा--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जागर सुत्त-

जागे हुओं में कितने सोये हैं,
सोये हुओं में कितने जागे हैं?

कितने से मैल लग जाता है,
कितने से परिशुद्ध हो जाता है?

जागे हुओं में पांच सोये हैं,
सोये हुओं में पांच जागे हैं।
पांच से मैल लग जाता है,
पांच से परिशुद्ध हो जाता है।

इसी प्रकार--

पाथेय्य सुत्त--

क्या राहखर्च बांधता है,
भोगों का वास किसमें है?
मनुष्यों को क्या घसीट ले जाता है
संसार में क्या छोड़ना बड़ा कठिन है?
इतने जीव किसमें बंधे हैं-
जैसे जाल में कोई पक्षी?

श्रद्धा राहखर्च बांधती है,
ऐश्वर्य में सभी भोग बसते हैं।
इच्छा मनुष्य को घसीट ले जाती है,
इच्छा को छोड़ना बड़ा कठिन है।
इतने जीव इच्छा में बंधे हैं-
जैसे जाल में कोई पक्षी।

इस प्रकार की प्रश्नोत्तर शैली मेरठ जनपद में आज भी प्रचलित है। इसे वहां 'बात' (वार्ता) कहा जाता है। मेरठ का एक लोकछन्द देना भी उपयुक्त होगा--

कहीं पर आग कहीं पर धुंआ।
कहीं पर बांस गढ़े कहीं पर कुंआ।। (हुक्का)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सैद्धान्तिक चर्चा एवं उपदेशों के अतिरिक्त इस निकाय में कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्री भी उपलब्ध होती है। बुद्ध तथा उनके शिष्यों के संकटग्रस्त क्षण भी अभिव्यक्त हुए हैं। एक स्थल पर वर्णित है कि गौतम बुद्ध का पैर पाषाणखण्ड से विक्षत हो गया है और वे अत्यन्त कष्ट सहन कर रहे हैं। भिक्खुसंयुत्त में कौशाम्बी के भिक्षुओं के दुर्व्यवहार से खिन्न बुद्ध का बिना बताये पात्र-चीवर लेकर एकान्तवास के लिए चले जाना वर्णित है। सारिपुत्र और मोग्गल्लान के परिनिर्वाण की सूचना भी इसी निकाय में मिलती है। सारिपुत्र के परिनिर्वाण की सूचना पाते ही आनन्द कह उठते हैं-"आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिवृत्त हो गये, यह सुनकर मेरा शरीर शिथिल हो गया है, मुझे दिशाएँ नहीं सूझ रही हैं।" कोसलराज प्रसेनजित और मगधराज अजातशत्रु की कथा भी इसी निकाय में आयी है। काशी प्रदेश पर दोनों का युद्ध हुआ। प्रारम्भिक विजय के पश्चात् अजातशत्रु पराजित हो गया और प्रसेनजित् उसे बंदी बनाकर कोसल ले गया। वहां उसने अपनी पुत्री वजिरा का उसके साथ विवाह कर काशी प्रदेश भेंटस्वरूप प्रदान किया। कौशाम्बी नरेश उदयन का भी संक्षिप्त वृत्त आया है। सम्पूर्ण सामग्री बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इस निकाय के उपदेशों के स्वरूप को समझने के लिए 'कसिभारद्वाज सुत्त' का कुछ अंश उद्धृत है।

तेन खो पन समयेन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स परिवेसना वत्तति। अथ खो भगवा येन परिवेसना तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। अद्दसा खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय ठितं। दिस्वा भगवन्तं एतदवोच-"अहं खो, समण, कसामि च वपाभि च कसित्वा च वपित्वा च भञ्जामि ! त्वं पि, समण, कस्ससु च वपस्सु च कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जस्सू" ति।

"अहं पि खो, ब्राह्मण, कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामि" ति।

"न खो मयं पस्साम भोतो गोतमस्स युगं वा नङ्गलं वा फालं वा पाचनं वा बलीवद्दे वा, अथ च पन भवं गोतमो एवमाह-'अहं पि खो, ब्राह्मण, कसामि च वपामि च, कसित्वा च, वपित्वा च भुञ्जामि" ति।

अथ खो किसिभरद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'कस्सको पटिजानासि, न च पस्सामि ते कसिं।
कस्सको पुच्छितो ब्रूहि, कथं जानेमु तं कसिं'' ति।।

''सद्धा बीजं तपो वुट्ठि, पञ्ञ मे युगनङ्गलं।
हिरी ईसा मनो योत्तं, सति मे फालपाचनं।।

कायगुत्तो वचीगुत्तो, अहारे उदरे यतो।
सच्चं करोमि निद्दानं, सोरच्चं मे पमोचनं।।

विरियं मे धुरधोरय्हं, योगक्खेमाधिवाहनं।
गच्छति अनिवत्तन्तं, यत्थं गन्त्वा न सोचति।।

एवमेसा कसी कट्ठा, सा होति अमतप्फला।
एतं कसिं कसित्वान, सब्बदुक्खा पमुच्चती'' ति।।

''भुञ्जतु भवं गोतमो ! कस्सको भवं। यं हि भवं गोतमो अमतप्फलं पि कसिं कसती'' ति।

अर्थात्, उस समय कृषि भारद्वाज की परिवेषणा हो रही थी। तब भगवान परिवेषण के पास गये और जाकर खड़े हो गये। कृषिभारद्वाज ब्राह्मण ने भिक्षा के लिए खड़े भगवान् को देखकर कहा-''हे श्रमण ! मैं जोतता-बोता हूं, जोत-बोकर खाता हूं। श्रमण ! तम भी जोता-बोओ और जोत-बोकर खाओ।''

''हे ब्राह्मण, मैं भी जोतता-बोता हूं, जोत-बोकर खाता हूं।''

''हम तुम्हारे हल, फाल, जुआ, बैल या बोना नहीं देख रहे हैं तथापि आप गौतम कह रहे हैं कि मैं भी ब्राह्मण ! जोतता-बोता हूं, जोत-बोकर खाता हूं।''

तब कृषि भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान से गाथा में कहा-''आप कृषक बताते हैं, लेकिन मैं आपकी कृषि को नहीं देखता। मैं कृषक पूछता हूं कि कहो आपकी खेती को कैसे जानें।''

''श्रद्धा मेरा बीज है, तप वृष्टि है। प्रज्ञा मेरा जुआ और हल है, लज्जा हलस (हल की लकड़ी) है, मन जोत है, स्मृति फाल और छगुनी है। काम से संयत, बचन से संयत, उदरस्थ आहार से संयत मैं सत्य की निराई करता हूं तथा रतिभाव मेरा प्रमोचन है। वीर्य मेरा बैल है जो निर्वाण की ओर ले जाने वाला है। वह बिना लौटे वहाँ जा रहा है जहां जाकर दुःख नहीं होता। इस प्रकार की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गयी यह मेरी कृषि अमृतफल देने वाली है। इस कृषि को करके समस्त दुःखों से छुटकारा हो जाता है।"

"आप गौतम खाएं। आप कृषक हैं, अमृतफल देने वाली कृषि को भी करते हैं।"

४. अंगुतरनिकाय (अंकोत्तरनिकाय)

सुत्तपिटक का चतुर्थ निकाय अंगुत्तर निकाय है। यह वर्ण्य की दृष्टि से पूर्ववर्ती निकायों के समान होने पर भी शैली की दृष्टि से भिन्न है। यह ग्यारह निपातों में विभक्त है जो इस प्रकार है : एकक निपात, दुकनिपात, तिकनिपात, चतुक्कनिपात, पञ्चक निपात, छक्क निपात, सत्तक निपात, अट्ठक निपात, नवक निपात, दसक निपात और एकादशक निपात। इन निपातों के अन्तर्गत उन-उन ही वर्ण्यों को लिया गया है जिनकी संख्या निपातसंख्या के अनुरूप है; जैसे आर्यसत्य चार हैं तो उनका वर्णन चतुक्क निपात के अन्तर्गत रखा गया है और अष्टांगिक मार्ग के आठ अंग हैं तो उसे अट्ठकनिपात के अन्तर्गत। यह शैली अंगुत्तर (अंकोत्तर) कहलाती है इसीलिए इस निकाय का नामकरण अंगुत्तर निकाय किया गया है। इस निकाय के उक्त निपातों को वर्गों में विभाजित किया गया है और वर्गों को सुत्तों में। इन निपातों में कुल मिलाकर १७२ वर्ग हैं। डा० भरतसिंह उपाध्याय ने १६९ वर्ग ही माने हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन १७२ वर्ग मानते हैं। इनके अनुसार वर्गों की संख्या निपातक्रम से इस प्रकार हैं-२०, १७, १६, २७, २६, १२, १०, १०, ६, २२ तथा ३१। वर्गों में सुत्तों की संख्या भी अत्यन्त विषम है, यह न्यूनतम ७ और अधिकतम २६२ है। सम्पूर्ण निकाय में २३०८ सुत्त हैं, लेकिन इनकी संख्या परम्परागत रूप से ६५५७ मानी जाती हैं। कुछ प्राचीन ग्रंथों में इस निकाय को अंगुत्तर (अंकोत्तर) के स्थान पर एकुत्तर (एकोत्तर) निकाय नाम भी दिया गया है। अर्थ की दृष्टि से दोनों शब्दों में कोई अन्तर नहीं है तथापि पालि साहित्य में इसे अंगुत्तर नाम से ही अभिहित किया गया है।

पुनरुक्ति की दृष्टि से अंगुत्तर निकाय की स्थिति भी पूर्ववर्ती निकायों जैसी है। दीघ और मज्झिम निकायों के अनेक विषय संख्यात्मकता के आधार पर इस निकाय में संकलित कर लिये गये हैं यथा चार आर्यसत्य और अष्टांगिक मार्ग

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का उपदेश मूलतः संयुत्त निकाय के 'धम्मचक्कपवत्तन सुत्त' में आता है और लगभग उन्हीं शब्दों में विनयपिटक के महावग्ग में भी। अंगुत्तर निकाय में उक्त दोनों दी विषयों का क्रमशः चतुक्क और अट्ठक निपात में संकलन किया गया है। प्रमुख सिद्धान्तों एवं उपदेशों की पुनरावृत्ति के पश्चात् भी इस निकाय में मौलिकता का अभाव नहीं कहा जा सकता। इसके अनेक लघुकाय उपदेश जनसाधारण के लिए अत्यन्त उपादेय हैं। संख्यात्मकता से न गम्भीरता आहत हुई है और न लौकिक उपादेयता ही।

अंगुत्तरनिकाय के विभिन्न निपातों में प्रतिपादित विषयवस्तु का संबंध कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में निपात-संख्या से ही है। इस संबंध को स्पष्ट करने के लिए इन निपातों की विषयवस्तु का संक्षिप्त दिग्दर्शन युक्तिसंगत होगा--

१. एकक निपात-धर्म क्या है? स्त्रीशब्द, स्त्रीरूप, स्त्रीस्पर्श, स्त्रीगन्ध आदि प्रश्नोत्तर।

२. दुक निपात-दो प्रकार की त्याज्य वस्तुएँ, दो प्रकार के ज्ञान पुरुष, दो प्रकार के बल, दो प्रकार की इच्छाएँ, दो प्रकार की परिषदें आदि।

३. तिक निपात-तीन प्रकार के दुष्कृत्य (कायिक, वाचिक और मानसिक) तीन प्रकार की वेदनाएं (सुख, दुःख और सुखदःखरहिता) आदि।

४. चतक्क निपात-चार प्रकार के ज्ञान, चार आर्यसत्य, चार समाधि, चार योग, चार आहार, चार श्रामण्यफल आदि।

५. पञ्चक निपात-पाँच इन्द्रियां, पञ्चस्कन्ध, पाँच विभुक्तियाँ, पाँच निस्सरणीय धातुएँ, पाँच अंगों वाली समाधि आदि।

६. छक्क निपात-छः अनुस्मृतियाँ, छः आध्यात्यिक आयतन, छः अभिज्ञेय आदि।

७. सत्तक निपात-सात बल, सात सम्बोध्यंग, सात अनुशय, सात सद्धर्म, सात संज्ञाएँ, सात सत्पुरुषधर्म आदि।

८. अट्ठक निपात-आठ अष्टांगिक मार्ग, आठ आरब्ध वस्तुएँ, आठ अभिभू आयतन, आठ विमोक्ष आदि।

९. नवक निपात-नव संज्ञाएँ, नव तृष्णमूलक, नव सत्वावास, नौ प्रकार के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यक्ति आदि।

१०. दसक निपात-दसतथागत बल, दस आर्यवास, दस संयोजन, दस संज्ञाएँ, दस परिशुद्धियाँ आदि।

११. एकादशक निपात-निर्वाण के ग्यारह उपाय आदि।

सभी निपातों के प्रमुख सिद्धान्तों एवं उपदशों का दिग्दर्शनमात्र कराने से इस निकाय का वास्तविक स्वरूप उभरकर सामने नहीं आता, प्रत्युत् पाठक को यही लगता है कि इसमें पूर्ववर्ती निकायों के प्रमुख सिद्धान्तों का ही पिष्टपेषण किया गया है। इस भ्रान्ति से बचने के लिए इस निकाय के कुछ सिद्धान्तों की पृथक् से विवेचना ही युक्तिसंगत है। यहां इस निकाय के ऐसे उपदेशों का सार दिया जा रहा है जो जनसाधारण के लिए उपादेय हैं तथा अगूढ़ एवं मौलिक भी। एकक निपात में गौतम बुद्ध भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहते हैं-"भिक्षुओं ! मुझे कोई भी अन्य वस्तु इतनी अनर्थकारी नहीं दिखती जितनी पापमित्रता। पापमित्रता बहुत अनर्थकारी है।" यहां पापमित्रता के एकाकी होने के कारण उसे एकक निपात में रखा गया है। दुकनिपाद में एक अत्यन्त मौलिक एवं मार्मिक बुद्धवचन है-"भिक्षुओं ! बिजली कड़कने पर दो प्राणी नहीं चौंकते। कौन से दो? क्षीणास्रव भिक्षु और मृगराज सिंह। भिक्षुओं ! ये दो बिजली कड़कने पर नहीं चौंक पड़ते।" चतुक्क निपात के पठमसंवाससुत्त में बुद्धदेव उपस्थित गृहपतियों को संबोधित करते हुए कहते हैं-"गृहपतियों ! संवास चार प्रकार के होते हैं। कौन से चार? (१) शव शव के साथ संवास करता है, (२) शव देवी के साथ संवास करता है, (३) देव शव के साथ संवास करता है और (४) देव देवी के साथ संवास करता है।" इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि हिंसक, चोर, जुआरी, पापकर्मरत, कृपण, ब्राह्मणश्रमणों का अपमान करने वाला पति हो तथा भार्या, इन्हीं दुर्गुणों से सम्पन्न हो, वहाँ शव शव के साथ संवास करता है। जहाँ पति हिंसक, चोर, जुआरी, पापकर्मरत, कृपण, ब्राह्मणश्रमणों का अपमान करने वाला हो, लेकिन उसकी भार्या अहिंसक, चोरीरहित, सदाचारिणी, ईर्ष्याद्वेषरहित, उदार तथा ब्राह्मणश्रमणों का सम्मान करने वाली हो, वहां शव देवी के साथ संवास करता है। जहाँ पति अहिंसक, चोरीरहित, सदाचारी, ईर्ष्या-द्वेष रहित, उदार तथा ब्राह्मण-कर्मरत, ईर्ष्या-द्वेष से युक्त, दुराचारिणी तथा ब्राह्मण श्रमणों का अपमान

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा पत्नी करने वाली हो, वहाँ देव शव के साथ संवास करता है। जहाँ पति अहिंसक चोरीरहित, सदाचारी, ईर्ष्या-द्वेष से रहित, उदार तथा ब्राह्मणश्रमणों का सम्मान करने वाला हो तथा उसकी भार्या भी इन सद्गुणों से सम्पन्न हो, वहाँ देव देवी के साथ संवास करता है। तात्पर्य यह है कि अहिंसा, सदाचार, ईष्या-द्वेषशून्यता, उदारता, ब्राह्मण श्रमणों का सम्मान आदि गुणों से सम्पन्न होने पर पति देव है और पत्नी देवी, लेकिन इनसे विरहित होने पर पति-पत्नी दोनों शव के समान आकर्षणशून्य हो जाते हैं। यह उपदेश नितान्त मौलिक एवं उपादेय है। अट्ठक निपात में धर्म का संक्षिप्ततम शब्दों में स्वरूप जानने की इच्छुक गौतमी को बुद्ध अत्यन्त सारपूर्ण एवं संक्षिप्त उपदेश देते हैं-"गौतमी ! जिन बातों को तुम जानो कि ये बातें सराग के लिए हैं, विराग के लिए नहीं; संयोग के लिए हैं, वियोग के लिए नहीं; संग्रह के लिए हैं, असंग्रह के लिए नहीं; इच्छाओं को बढ़ाने के लिए हैं, घटाने के लिए नहीं; असंतोष के लिए हैं संतोष के लिए नहीं; भीड़ के लिए हैं, एकांत के लिए नहीं, अनुद्योगिता के लिए हैं, उद्योगिता के लिए नहीं, कठिनता के लिए हैं, सुगमता के लिए नहीं; तो तुम गौतमी सोलहों आना समझना कि वह न धर्म है, न विनय है और न शास्ता का शासन है। किन्तु गौतमी ! जिन बातों को तुम जानो कि ये विराग के लिए हैं, सराग के लिए नहीं, वियोग के लिए हैं, संयोग के लिए नहीं; असंग्रह के लिए हैं, संग्रह के लिए नहीं; इच्छाओं को घटाने के लिए हैं, बढ़ाने के लिए नहीं; उद्योगिता के लिए हैं, अनुद्योगिता के लिए नहीं; सुगमता के लिए हैं, कठिनता के लिए नहीं, तो गौतमी ! तुम सोलहों आना समझाना कि वही धर्म है, वही विनय है, वही शास्ता का शासन है।" यहां बुद्धदेव ने अपने धर्म एवं सिद्धान्तों का पूर्ण सार नितान्त सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया है।

इस सुत्त के उपदेशों के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए 'भरियासुत्त' का कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है-

एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच-"किं नु ते, गहपति, निवेसने, मनुस्सा अच्चसद्दा महासद्दा केवट्टा मञ्ञे मच्छविलोपे" ति। "अयं, भन्ते, सुजाता घरसुण्हा अड्ढकुला आनीता। सा नेव सुस्सुं आदियति, न ससुरं आदियति, न सामिकं आदियति, भगवन्तं पि न सक्करोति, न गुरुं करोति न मानति न पूजेती" ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ खो भगवा सुजातं घरसुण्हं आमन्तेसि-"एहि, सुजाते" ति। "एवं भन्ते" ति खो सुजाता घरसुण्हा भगवतो पटिस्सुत्वा येन, भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो सुजातं घरसुण्हं भगवा एतदवोच-"सत्त खो इमा, सुजाते, पुरिस्स भरियायो। कतमा सन्त? वधकसमा, चोरीसमा, अय्यसमा, मातास्मा, भगिनीसमा, सखीसमा, दासीसमा।

'या चीध भरिया वधका' ति वुच्चति,
'चोरी च अय्या' ति च या पवुच्चति।

दुस्सीलरूपा फरुसा अनादरा,
कायस्स भेदा निरयं वजन्ति ता॥

'या चीध माता भगिनी सखी' ति च,
'दासी च भरिया' ति च सा पवुच्चति।

सीले ठितत्ता चिरस्तसंवुता,
कायस्स भेदा सुगतिं वजन्ति ता ति॥

इमा खो, सुजाते, सुत्त पुरिसस्स भरियायो। तासं त्वं कतमा" ति?

"अज्जतग्गे मं, भन्ते, भगवा दासीसमं सामिकस्स भरियं धारेतू" ति।

अर्थात् एक ओर बैठे हुए गृहपति अनाथपिण्डिक से भगवान् ने कहा-"गृहपति! तुम्हारे निवास में, मछली मारते समय केवटों के समान, यह मनुष्यों का अत्युच्च महाशब्द क्यों हो रहा है?" "भन्ते ! यह गृहवधु सुजाता धनी कुल से लायी गयी है। वह न सास का आदर करती है, न ससुर का, न पति का, न भगवान् का ही सत्कार करती है, न गुरु मानती है, न आदर करती है, न पूजती है।"

तब भगवान् ने गृहवधु सुजाता को बुलाया-"हे सुजाते ! आओ।" "अच्छा भन्ते !" इस प्रकार गृहवधु सुजाता भगवान् को सुनाकर, जहां भगवान् बैठे थे वहां गयी, भगवान् को नमस्कार करके एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी गृहवधु सुजाता से भगवान् ने यह कहा-"हे सुजाते ! पुरुष की सात प्रकार की पत्नियाँ होती हैं। कौन सी सात? वधकसम, चोरीसम, आर्यासम, भगिनीसम, सखीसम तथा दासीसम।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहां जो पत्नी वधकसम कही गयी है, जो चोरीसम तथा आर्यासम कही गयी हैं वे तीनों प्रकार की पत्नियां दुःशीलता, कठोरता तथा पति के प्रति असम्मान के कारण मरणोपरान्त नरक में जाती हैं और यहां जो मातासम, भगिनीसम, सखीसम तथा दासीसम पत्नियां कही गयी हैं वे शील में स्थित तथा दीर्घकाल दोषरहित रहने के कारण मरणोपरान्त स्वर्ग में जाती हैं। सुजाते ! पुरुष की सात प्रकार की पत्नियाँ होती हैं। इनमें से तुम कौन सी हो?" "भन्ते ! आज से लेकर भगवान् मुझे पति की दासीसम पत्नी समझें।"

५. खुद्दक निकाय (क्षुद्रकनिकाय)

सुत्तपिटक का पञ्चम निकाय खुद्दकनिकाय कहलाता है। यह विषय एवं शैली दोनों ही दृष्टि से पूर्ववर्ती निकायों से भिन्न है। इसमें पूर्व निकायों जैसी एकरूपता भी नहीं मिलती। वस्तुतः यह एक ग्रंथ न होकर छोटे-छोटे (क्षुद्रक) अनके ग्रंथों का समूह है। इसी से खुद्दक निकाय कहलाता है। इसके सभी ग्रंथ आकार की दृष्टि से लघुकाय हों-ऐसा भी नहीं है। खुद्दकनिकाय पूर्ववर्ती निकायों से इस बात में भी भिन्न हैं कि इसमें पूर्ववर्ती निकायों जैसा बुद्धिवाद नहीं मिलता, बल्कि काव्योचित भावनाओं एवं कल्पनाओं की प्रचुरता मिलती है। अतः इसका साहित्यिक महत्त्व बहुत अधिक है। स्थविरवादी परम्परा इसे धर्म एवं संघ की दृष्टि से घातक मानती है।

सुत्तपिटक का अंग होने पर भी यह निकाय परवर्ती सृष्टि माना जाता है। प्रथम एवं द्वितीय संगीति में इस निकाय के कई ग्रंथों पर मतभेद था और भिक्षुगण इन्हें प्रामाणिक नहीं मानते थे। डा० भरतसिंह उपाध्याय ने इस निकाय के परवर्ती होने के कारणों की विवेचना करते हुए कहा है-"स्थविरवादी एवं सर्वास्तिवादी दोनों ही परम्पराओं में प्रथम चार निकायों की प्रधानता, पालि त्रिपिटक में उसके स्वरूप की अप्राप्ति अथवा आंशिक प्राप्ति एवं सबसे बढ़कर स्थविरवादी परम्परा में भी उसके कुछ ग्रंथों को बुद्धवचन के रूप में प्रामाणिक न माने की प्रवृत्ति-ये सब तथ्य इसी बात के सूचक हैं कि खुद्दकनिकाय प्रथम चार निकायों के बाद का संकलन है।"[1] सारतः यह कहा जा सकता है। कि यह निकाय अप्रामाणिक भले ही न हो, परवर्ती अवश्य है।

खुद्दकनिकाय की प्रामाणिकता ही नहीं, विषयवस्तु भी विवादास्पद है। आचार्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. डा० भरतसिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २५३

बुद्धघोष इस निकाय में पन्द्रह ग्रंथों को मान्यता देते हैं। जो इस प्रकार हैं--

१. खुद्दकपाठ	२. धम्मपद
३. उदान	४. इतिवुत्तक
५. सुत्तनिपात	६. विमानवत्थु
७. पेतवत्थु	८. थेरगाथा
९. थेरीगाथा	१०. जातक
११. निद्देस	१२. पटिसम्भिदामग्ग
१३. अपदान	१४. बुद्धवंस
१५. चरियापिटक	

लंका की बौद्ध परम्परा इन्हीं पन्द्रह ग्रंथों को खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत मानती है। बर्मा में उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त चार अन्य ग्रंथ भी इस निकाय के अन्तर्गत माने जाते हैं- मिलिन्दपञ्ह, सुत्तसङ्गह, पेटकोपदेस तथा नेत्तिप्पकरण। थाईलैण्ड की बौद्ध परम्परा उक्त पन्द्रह ग्रंथों में से आठ को खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत मान्यता नहीं देती। ये हैं--विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरीगाथा, जातक, अपदान, बुद्धवंस और चरियापिटक। वस्तुतः इस निकाय के ग्रंथों में धम्मपद, सुत्तनिपात, उदान और इतिवुत्तक ही प्राचीन जान पड़ते हैं।

बौद्धधर्म की दृष्टि से कुछ ग्रंथ अप्रामाणिक हैं अथवा अर्वाचीन, किन्तु पालि-साहित्य एवं संस्कृति की दृष्टि से सभी महत्त्वपूर्ण हैं और साहित्यिक दृष्टि से तो खुद्दकनिकाय अन्य सभी निकायों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। जो सरसता, भावुकता, भावनात्मकता तथा कल्पनाविधान इस निकाय में उपलब्ध होता है, वह पूर्ववर्ती निकायों में नहीं मिलता। अतः साहित्यिक दृष्टि से यह निकाय विशेष महत्त्वपूर्ण है।

१. खुद्दकपाठ

यह लघुकाय पुस्तक बौद्धभिक्षुओं का प्रारम्भिक ज्ञान या बौद्धगृहस्थों (उपासकों) के दैनिक पाठ के लिए तैयार की गयी है। इसमें नौ पाठ संकलित हैं : त्रिशरण, दस शिक्षापद, बत्तीस अंग, कुमारप्रश्न, मंगलसूत्र, रत्नसूत्र, तिराकुड्ड सूत्र, निधिकण्ड सूत्र तथा मैत्रीसूत्र। ये सभी पाठ सुत्तपिटक तथा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विनयपिटक से संकलित किये गये हैं। त्रिशरण में बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण में जाने का निवेदन है। दस शिक्षापद में सदाचारविषयक नियम दिये गये हैं-- (१) हिंसा, (२) स्तेय, (३) व्यभिचार, (४) असत्यभाषण, (५) मद्यपान, (६) असमयभोजन, (७) नृत्यगीत, (८) मालागन्धविलेपन, (९) सुखद एवं विलासी शय्या तथा (१०) स्वर्णादि का ग्रहण-इन दस बातों से विरत रहने का संकल्प भिक्षु को लेना होता है। बत्तीस अंग में शरीर के बत्तीस अंगों का विवेचन किया गया है। कुमारप्रश्न में बालभिक्षुओं के लिए सरल शिक्षाएं हैं जैसे दो क्या हैं? नाम और रूप। तीन क्या हैं? वेदनाएं। चार क्या हैं? आर्यसत्य। पांच क्या हैं? पञ्चस्कन्ध आदि। मंगलसूत्र में नानाविध मंगल कार्यों में सर्वोत्तम मंगल को स्पष्ट किया गया है। रत्नसूत्र में सत्रह गाथाओं में बुद्ध, धर्म और संघ इन तीन रत्नों की महिमा का गान किया गया है। अन्त में कहा गया है कि इस सत्य से लोक का कल्याण हो। तिराकुडु सूत्र में भूत-प्रेतों को संतुष्ट करते के उपाय बताये गये हैं। निधिकण्ड सूत्र में सर्वोत्तम निधि की विवेचना की गयी है। दान, शील, संयम, इन्द्रियविजय तथा पुण्यार्जन--ये ही सर्वोत्तम निधि हैं। अन्य निधियाँ विनाशशील हैं लेकिन शुभकर्म जन्मान्तर में भी साथ देता है। मैत्रीसूत्र में सभी से मित्रता रखने का उपदेश दिया गया है।

स्वरूप स्पष्ट करने के लिए 'मंगलसुत्त' की कुछ गाथाएं उद्धृत की जाती हैं--

मातापितुउपट्ठानं पुत्तदारस संगहो।।
अनाकुला च कम्मन्ता एतं मंगलमुत्तमं।।

दानं च धम्मचरिया च ञजकानं च संगहो।।
अनवज्जानि कम्मानि एतं मंगलमुत्तमं।।

आरती विरती पापा मज्जपाना च संयमो।।
अप्पमादो च धम्मेसु एतं मंगलमुत्तमं।।

गोरवो च निवातो च सन्तुट्ठि च कतञ्जुता।।
कालेन धम्मस्सवनं एतं मंगलमुत्तमं।।

तपो च ब्रह्मचरियं च एतं मंगलमुत्तमं।।
निब्बानसच्छिकिरिया च एतं मंगलमुत्तमं।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थात्, माता-पिता की सेवा, पुत्र-पत्नी का संरक्षण तथा कर्म में अनुद्वेग-यह उत्तम मंगल है। दान, धर्माचरण, संबंधियों का संरक्षण तथा निर्दोष कार्य-यह उत्तम मंगल है। पाप-विरति, उदासीनता, मद्यपान से विरति, धर्म में सावधानता-यह उत्तम मंगल है। गौरव, नम्रता, सन्तुष्टि, कृतज्ञता तथा समय पर धर्मश्रवण-यह उत्तम मंगल है। तप, ब्रह्मचर्य, आर्यसत्यों का दर्शन तथा निर्वाण का साक्षात्कार-यह उत्तम मंगल है।

२. धम्मपद

धम्मपद बौद्धधर्म के नैतिक विचारों को व्यक्त करने वाली अमर कृति है। बौद्धों में इसे वही सम्मान प्राप्त है जो हिन्दुओं में श्रीमद्भगवद् गीता को। दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि जहाँ गीता में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का संदेश है तथा उसका दर्शन अत्यन्त गम्भीर एवं प्रौढ़ है, वहाँ धम्मपद में अत्यन्त सरल भाषा में नैतिक विचारों का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः गीता उपनिषदों का सार लेकर सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक चिन्तन को समाहित करती हुई प्रबुद्ध मानव को ज्ञान के उच्चतम शिखर का स्पर्श कराती है जबकि धम्मपद नैतिकता का उपदेश देने वाली साधारण सी पुस्तक है। धम्मपद की महत्ता एवं बौद्धों में उसके सम्मान को इसी से समझा जा सकता है कि लंका में धम्मपद का सम्यक् पारायण किये बिना किसी भी भिक्षु की उपसम्पदा नहीं होती। बर्मा, थाईलैण्ड तथा कम्बोडिया में भी प्रत्येक भिक्षु से यह अपेक्षा की जाती है कि उसे धम्मपद कण्ठस्थ हो।

धम्मपद में कुल चार सौ तेईस गाथाएं हैं जो विषयानुसार छब्बीस वर्गों में विभक्त की गयी हैं। वर्गों के नाम से विषय का पता लग जाता है। कुछ गाथाएँ ऐसी भी हैं जो धम्मपद में ही दो बार दो विभिन्न वर्गों में स्थान पा गयी हैं यथा पण्डितवग्ग की पांचवीं गाथा ही दण्डवग्ग के सत्रहवें स्थान पर दे दी गयी है केवल एक शब्द परिवर्तित है।

पालि के अतिरिक्त अन्य कई भाषाओं में भी यह कृति उपलब्ध होती है। इसकी एक प्रति प्राकृत में उपलब्ध हुई है जो खण्डितावस्था में उपलब्ध होती है। इसमें केवल बारह वर्ग मिलते हैं। धम्मपद का चीनी भाषान्तर भी मिलता है। विद्वानों का मत है कि यह प्राकृत रूप का ही अनुवाद है। इसमें ३९ अध्याय तथा ७५२ गाथाएं हैं। धम्मपद के संस्कृत संस्करण में ३६ अध्याय हैं। विद्वानों का विचार है कि तिब्बती संस्करण इसी का रूपान्तर है। कहना न होगा कि उक्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सभी संस्करणों का मूल पालि संस्करण ही है। ज्यों-ज्यों यह अन्य भाषाओं में अनूदित होता गया त्यों-त्यों इसकी गाथाओं की संख्या एवं स्वरूप में भी अन्तर आता गया। ध्यान रखना चाहिए कि धम्मपद कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, बल्कि सुत्तपिटक की चुनी हुई गाथाओं का संग्रह मात्र है और सभी सम्प्रदायों के त्रिपिटक एकमात्र पालि में न होकर विभिन्न भाषाओं में थे। अतः उनके धम्मपद में भी अन्तर आना स्वाभाविक है।

३. उदान

उदान का अर्थ है प्रीतिमय वाक्य। गौतम बुद्ध ने विभिन्न अवसरों पर भावातिरेक से जो प्रीतिवाक्य कहे, वे ही उदान कहे जाते हैं। ये अत्यन्त गम्भीर तथा समाधिस्थता के सूचक शब्द हैं। ये उदान गाथा के रूप में हैं। इनके साथ जो कथा आती है वह गद्य में है। वस्तुतः गाथा भाग ही प्रमुख है, कथा केवल सहायक है। ये गाथाएँ गौतम बुद्ध के मुखारविन्द से निस्सृत हैं, लेकिन गद्य भाग संगीतिकारों की सृष्टि है जिसे भिक्षुओं ने बुद्ध से उनके जीवन काल में ग्रहण किया। यहां यह प्रश्न उभरना स्वाभाविक है कि क्या गौतम बुद्ध के उपदेश पद्यबद्ध हुआ करते थे? वस्तुतः बुद्धदेव के उपदेश तो गद्य में ही होते थे, किन्तु भिक्षु लोग उन्हें रटने की सुविधा के लिए पद्यबद्ध कर लिया करते थे। अतः प्रारम्भ में ये उदान गद्य में ही रहे होंगे, लेकिन परवर्ती भिक्षुओं ने इन गम्भीर एवं ज्ञानसम्पन्न वाक्यों को पद्यबद्ध कर दिया होगा। कथाभाग बाद की ही सृष्टि है जो गाथा के समझने का साधन है।

उदान ८० सुत्तों की एक लघुकाय रचना है जो आठ वर्गों में विभक्त है। प्रत्येक वर्ग में दस-दस उदान हैं। इन वर्गों के नाम इस प्रकार हैं--बोधिवग्ग, मुचलिन्द वग्ग, नन्दवग्ग, मेघियवग्ग, सौणत्थेरस्स वग्ग, जच्चन्ध वग्ग, चूलवग्ग, और पाटलिगामियवग्ग। प्रत्येक उदान में एक गाथा आती है। यह गाथाबद्ध भाग महत्त्वपूर्ण है क्योंकि बुद्धवचन यही है। भाषा सरल है तथा शैली समान है।

वर्ण्य की दृष्टि से इन उदानों में विविधता के दर्शन होते हैं। कहीं कांक्षारेवत को उपदेश देते हैं-''लोक या परलोक में, अपनी या पराई, जितनी भी सांसारिक आंकांक्षाएँ हैं ध्यानी उन सभी को छोड़ देते हैं। तपस्वी ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हैं।'' तो कहीं स्नानार्थी ब्राह्मणों को समझाते हैं-''स्नान तो सभी लोग करते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हैं लेकिन जल से कोई शुद्ध नहीं होता। जिसमें सत्य है, धर्म है, वही ब्राह्मण है।" कहीं वे सात पुत्र चाहने वाली सुप्रवासा से कहते हैं--"प्रमादी लोग बुरे को अच्छा, दुःख को सुख और अप्रिय को प्रिय समझा करते हैं।" तो कहीं परस्पर झगड़ते हुए भिक्षुओं को समझाते हैं--"भिक्षुओं ! तुम श्रद्धापूर्वक घर से प्रव्रजित हुए हो। एकत्रित होकर तुम्हें दो ही काम करने चाहिए या तो धार्मिक कथा या उत्तम मौनभाव।" मुचलिन्दवग्ग के राजसुत्त का यह उदान बहुत ही भावपूर्ण एवं मार्मिक है--

यं च कामसुखं लोके यं चिदं दिवियं सुखं।
तण्हक्खमसुखस्स ते कलं नग्घन्ति सोलसिं।।

अर्थात्, इस लोक में जो कामसुख है और परलोक में जो दिव्यसुख हैं, वे दोनों ही सुख तृष्णाक्षयरूपी सुख के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।

उदान के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए यहां बोधिवग्ग के प्रथम सुत्त को उद्धृत कर रहे हैं--

एवं मे सुतं-एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नरेञ्जराय तीरे बोधिरुक्खमूले पठमाभिसम्बुद्धो। तेन खो पन समयेन भगवा सत्ताहं एकपल्लकेन निसिन्नो होति विमुत्तिसुखं पटिसंवेदी। अथ खो भगवा तस्स सत्ताहस्स अच्चयेन तम्हा समाधिम्हा वुट्ठहित्वा रत्तिया पठमं यामं पटिच्चसमुप्पदं अनुलोमं साधुकं मनसाकासि इति-इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति, यदिदं अविज्जापच्चया सङ्खारा, सङ्खारपच्चया विञ्ञाणपच्चाया नामरूपं, नामरूपच्चया सळायतनं, सळायतन पच्चया फस्सो, फस्स पच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हा-पच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणसोकपरिदेवदुक्ख-दोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवं एतस्स दुक्खाक्खन्धस्स समुदयो होतीति। अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेति--

यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा,
आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा,
यतो पजानाति सहेतु धममत्ति।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थात्, ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् उरुवेला में निरंजरा के तट पर, बोधिवृक्ष से प्रथम अभिसम्बुद्ध होकर विहर रहे थे। उस समय भगवान् एक सप्ताह तक पर्यंक पर पड़े रहे और विमुक्ति सुख प्राप्त किया। एक सप्ताह व्यतीत होने पर समाधि से उठकर रात्रि के प्रथम याम में प्रतीत्यसमुत्पाद अनुलोम का मनन किया-इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है, जो यह-अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, संस्कार प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञानप्रत्यय से नामरूप, नामरूपप्रत्यय से षडायतन, षडायतन प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्शप्रत्यय से वेदना, वेदना प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णाप्रत्यय से उपादान, उपादान प्रत्यय से भव, भवप्रत्यय से जाति (जन्म), जातिप्रत्यय से जरा, मरण, शोक, परिदेवना, दुःख, दौर्मनस्य और अशांति उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार दुःखस्कन्ध का उदय होता है। तदनन्तर भगवान् ने इस अर्थ को जानकर यह उदान कहा--

"जब ध्यानमग्न तपस्वी ब्राह्मण के धर्म उत्पन्न होते हैं तो उसकी संपूर्ण इच्छाएँ मिट जाती हैं क्योंकि वह सहेतु धर्म को जान लेता है।"

४. इतिवुत्तक

खुद्दक निकाय में इतिवुत्तक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह ग्रंथ गद्य और पद्य दोनों में लिखा गया है। इसके प्रारम्भ में प्रायः 'ऐसा भगवान् ने कहा है, अर्हत् ने यह कहा है, ऐसा मैंने सुना है।' आता है, इसीलिए इसे इतिवुत्तक (ऐसा कहा है) कहा जाता है। यह ग्रंथ चार निकायों में विभक्त है : एकक निपात, दुक निपाद, तिक निपात और चतुक्क निपात। इनमें क्रमशः २७, २२, ५०, और १३ सुत्त हैं। इस प्रकार चारों निकायों में कुल ११२ सुत्त हैं। एकक निपात में भगवान् के उन उपदेशों का संकलन है जिनका सम्बन्ध एक संख्या से है। दुक निपाद, तिक निपात और चतुक्क निपात में उन उपदेशों का संकलन है जिनका सम्बन्ध क्रमशः दो, तीन और चार संख्या से है। इस प्रकार, इस ग्रंथ में भी संख्यात्मक पद्धति अपनायी गयी है जो अंगुत्तरनिकाय में प्रयुक्त हुई है।

इतिवुत्तक के छोटे-छोटे सुत्तों का विषय नैतिक उपदेश ही है। एकक निपात में राग, द्वेष, लोभ, मोह, ईर्ष्या, क्रोध आदि को छोड़ने का ही उपदेश प्रमुख है। शेष निपातों में कहीं तीन प्रकार के पुत्र वर्णित हैं तो कहीं तीन प्रकार के दोष। तिक निपात के 'सुखपत्थना सुत्त' में प्रशंसा, भोग तथा मरणोपरान्त स्वर्ग प्राप्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हेतु शील की रक्षा का उपदेश दिया गया है--

सीलं रक्कखेय्य मेधावी पत्थमानो तयो सुखे।
पसंसं वित्तलाभं च पेच्च सग्गे पमोदनं।।

तात्पर्य यह है कि इस समस्त लघुकाय ग्रंथ में नैतिक दृष्टि ही प्रबल रही है।

इतिवुत्तक के प्रारम्भ में 'ऐसा भगवान ने कहा है, अर्हत् ने कहा है, ऐसा मैंने सुना है' आता है। इसके पश्चात् गद्य में बुद्धवचन आते हैं जिसमें वे लोभ, मोह, क्रोध, राग, द्वेष आदि को छोड़ने का उपदेश करते हैं। इसके अन्त में, 'भगवान् ने ऐसा कहा है, इसलिए ऐसा कहा जाता है' कहकर गाथा दी जाती है और गाथा के अन्त में 'इस अर्थ को भगवान् ने कहा है, ऐसा मैंने सुना है' कहकर गाथा का समर्थन किया जाता है। यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि गद्य खण्ड बुद्धवचन है या गाथाभाग? प्रायः दोनों का भाव एक ही होता है अथवा गाथा द्वारा गद्यखण्ड का समर्थन किया जाता है। विचारकों का मत है कि गद्यखण्ड ही बुद्धवचन हैं। गाथा में उसी को पद्यबद्ध कर दिया गया है। सम्भवतः स्मरण की सरलता के लिए। इसका प्रमाण यह है कि गाथा के प्रारम्भ में 'इसलिए कहा जाता है' आता है। अतः गद्यखण्ड ही प्रामाणिक वचन है और प्राचीनतम भी।

इतिवुत्तक के स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए एक लघुकाय सुत्त का अनुवाद उपयुक्त होगा। यहां एकक निपात के पहले सुत्त 'लोभ सुत्तं' का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत है--

"ऐसा भगवान् ने कहा है, अर्हत् ने यह कहा है, यह मैंने सुना है--"भिक्षुओं ! तुम एक बात को छोड़ दो और मैं तुम्हारे अनागामी होने का दायित्व लेता हूँ। कौन है यह बात? भिक्षुओं ! यह लोभ है।"

भगवान् ने यह कहा, इसीलिए यह कहा जाता है--

"जिस लोभ से ग्रस्त होकर प्राणी दुर्गति को प्राप्त करते हैं, उस लोभ को विपश्यना करने वाले सम्यक् रूप से जानकर छोड़ देते हैं और उसे छोड़कर इस लोक में कभी नहीं आते।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस अर्थ को भी "भगवान् ने कहा, ऐसा मैंने सुना है।"

५. सुत्तनिपात

सुत्तनिपात खुद्दकनिकाय का अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। प्राचीनता, प्रामाणिकता एवं महत्ता की दृष्टि से इसका स्थान धम्मपद के समान है लेकिन हिन्दी जगत् में यह ग्रंथ इतना लोकप्रिय नहीं हुआ है जितना धम्मपद। इसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता कई बातों से स्पष्ट है। उदान के प्रमाण पर कहा जा सकता है कि महाकात्यायन के शिष्य सोणकुटिकण्ण ने इसके अट्ठकवग्ग का बुद्धदेव के समक्ष सस्वर पाठ किया था। इससे स्पष्ट होता है कि यह ग्रंथ उनके जीवनकाल में ही प्रतिष्ठित हो गया था। भाब्रू शिलालेख में उल्लिखित जिन सात बुद्धोपदेशों को अशोक प्रत्येक भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका के लिए अनिवार्य मानता था उसके तीन उपदेश इसी ग्रंथ से हैं। बौद्धधर्मविद् श्री धर्मानन्द कोसाम्बी के अनुसार ये उपदेश हैं--(१) मुनिगाथा (मुनिसुत), (२) मनेयसुत्ते (नाळक सुत्त), और (३) उपतिसपसिने (सारिपुत्र सुत्त)। साथ ही इस ग्रंथ के अनेक सुत्त अन्य ग्रंथों में पाये जाते हैं जैसे संयुत्तनिकाय में पांच, खुद्दकपाठ में तीन तथा मज्झिमनिकाय में दो सुत्त इसी से लिये गए हैं जो इसके महत्त्व के परिचायक हैं। इसकी भाषा वैदिक भाषा के बहुत निकट है। ऋग्वेद में उपलब्ध रूपबाहुल्य यहां यथावत् रूप में मिलता है। छन्दों में न केवल वैदिक छन्दों-अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् की बहुलता है, बल्कि वैदिक छन्द-स्वातन्त्र्य भी मिलता है। इसके अतिरिक्त देवयजनवाद का पूरा चित्र भी मिल जाता है। इस प्रकार भाषा, शैली एवं विचार तीनों ही दृष्टि से सुतनिपात अत्यन्त प्राचीन एवं प्रामाणिक सिद्ध होता है।

सुत्तनिपात पांच वर्गों में विभक्त है-उरगवग्ग, चूलवग्ग, महावग्ग, अट्ठकवग्ग और परायण वग्ग। इनमें क्रमशः १२, १४, १२, १६ तथा १८ सुत्त हैं। इसप्रकार कुल ७२ सुत्त हैं। इसमें अनेक सुत्त काफी महत्त्वपूर्ण हैं। अन्तिम दो वग्ग दर्शन एवं काव्य का मणिकाञ्चन योग प्रस्तुत करते हैं। भिक्षु धर्मरक्षित के शब्दों में- "अट्ठकवग्ग और परायणवग्ग एक प्रकार से दार्शनिक काव्य-संग्रह हैं और विश्व साहित्य में बेजोड़ हैं।" परायणवग्ग के परायणसुत्त में गोदावरी तटवासी बावरि ब्राह्मण अपने सोलह शिष्यों सहित गौतम बुद्ध के पास जाता है और सभी शिष्य गौतम से प्रश्न करते हैं। यह प्रकरण अत्यन्त गम्भीर एवं दार्शनिक हैं। नाळक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सुत्त में नवजात गौतम के दर्शनार्थ असित ऋषि के आने तथा भविष्यवाणी करने का उल्लेख है। धनिय सुत्त में सांसारिक सुख तथा ध्यानसुख की परस्पर तुलना की गयी है। गृहस्थी कहता है कि विषयभोग ही आनन्द के कारण हैं, उनसे रहित व्यक्ति आनन्द से रहित है। इसके विपरीत परिव्राजक कहता है कि विषयभोग ही मनुष्य की चिन्ता के कारण हैं। जो उनसे दूर है वह निश्चिन्त है, आनन्दित है।

सुत्त निपात के गाम्भीर्य को स्पष्ट करने के लिए उसका एक सुत्त उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा। यहां चुल्लवग्ग के 'अट्ठान सुत्त' को दिया जा रहा है--

उट्ठहथ निसदिथ, को अत्थो सुपिनेन वो।
आतुरानं हि का निद्दा, सल्लाविद्धान रुप्पतं।।

उट्ठहथ निसदिथ, दळ्हं सिक्खथ सन्तिया।
मा को पमत्ते विञ्ञाय, अमोहयित्थ वसानुगे।।

याय देवा मनुस्सा च, सिता तिट्ठन्ति अत्थिका।
तरथेतं विसत्तिकं, खणो वे मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता।।

पमादो रजो पमादो, पमादनुपतितो रजो।
अप्पमादेन विज्जाय, अब्बहे सल्लमत्तनो ति।।

(उठो, बैठो, सोने से क्या लाभ? कण्टकबिद्ध रोगी को नींद कैसी? उठो, बैठो, दृढ़तापूर्वक शान्ति के लिए अभ्यास करो। कहीं तुम्हें प्रमत्त जानकर यमराज मोहित न कर ले। जिस तृष्णा में बंधकर देवता और मनुष्य सदा चक्कर लगाते हैं, उसे पार कर जाओ। तुम्हारा क्षण बीत न जाए। क्षण बीते हुए व्यक्ति नरक में पड़कर शोक करते हैं। प्रमाद के कारण ही रज उत्पन्न होता है। अप्रमाद और विद्या से अपने दुःखरूपी कण्टक को निकाल फेकें।)

६. विमानवत्थु (विमानवस्तु)

विमानवत्थु का अर्थ है देव-विमानों या देव-आवासों की कथाएँ। इस ग्रंथ में देवताओं के सुख एवं समृद्धि से परिपूर्ण आवासों का वर्णन किया गया है और उसके आधार पर पूर्वकृत पुण्यों का गुणगान किया गया है। इस प्रकार परोक्षतः कर्मफल के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर जनसाधारण को सुकर्म की ओर प्रेरित करना ही इस ग्रंथ का प्रयोजन है। ध्यान रखना चाहिए कि ये सुकर्म गृहस्थ के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिए ही बताये गये हैं, भिक्षु के लिए नहीं, क्योंकि वह स्वर्ग से ऊपर उठकर निर्वाण को लक्ष्य बनाता है।

विमानवत्थु में ८५ विमानों का वर्णन है जो सात वर्गों में विभक्त हैं-पीठवग्ग, चित्तलतावग्ग, परिच्छत्तक वग्ग, मञ्जेट्ठवग्ग, महारथवग्ग, पायासिवग्ग और सुनिक्खित वग्ग। इनमें क्रमशः १७, ११, १०, १२, १४, १० और ११ विमानों का वर्णन किया गया है। विमानवत्थु के दो विभाग हैं-इत्थिविमान और पुरिसविमान। इत्थिविमान में स्त्रियों तथा पुरिसविमान में पुरुषों के विमानों का वर्णन है। वर्णन शैली प्रायः एक सी है। कोई देव अपने विमान (आवास) में आमोद-प्रमोद के साथ दिखायी देता है। कोई भिक्षु उससे पूछता है कि आपका वर्ण बहुत सुंदर है, आपके पास सभी समृद्धियाँ हैं। आपने विगत में कौन-सा शुभकार्य किया है? देव उत्तर देता है कि भिक्षु ! मैं मानव-जन्म में प्राणि-हिंसा से विरत, सत्यभाषण से युक्त, शील एवं सदाचार से सम्पन्न होकर गौतम का उपासक था। प्रायः सभी की कथा की मूल भावना यही है, नामों तथा आमोद-प्रमोदों में विभिन्नता रहती है।

७. पेतवत्थु (प्रेतवस्तु)

पेतवत्थू का अर्थ है प्रेतों की कहानियाँ। ये प्रेत नानाविध दुःखों से परिपूर्ण हैं और नारकीय पीड़ा को सहन करते हैं। इसका कारण है पूर्वकृत दुष्कर्म। इस ग्रंथ में यह समझाने का प्रयास किया गया है कि जीव किन-किन कर्मों से परलोक में क्या-क्या कष्ट भोगता है। इस प्रकार इसका लक्ष्य भी विमानवत्थु के समान, कर्मफल का सिद्धान्त प्रतिपादित कर मानव को पापकर्म से हटाना ही है।

पेतवत्थु में ५१ प्रेत तथा प्रेतनियों की कहानियां हैं जो चार भागों में विभाजित हैं-(क) पेतवत्थु, (ख) उरग पेतवत्थु, (ग) उब्बरी पेतवत्थु, तथा (घ) धातुविवरण पेतवत्थु। शैली में एकरूपता है। कोई भिक्षु प्रेत या प्रेतनी से उसके द्वारा भोगे जाने वाले कष्टों का कारण पूछता है और वह उत्तरस्वरूप अपने पूर्वकृत पापों का वर्णन करती है। उदाहरणस्वरूप एक वत्थु का हिन्दी रूपान्तर दिया जा रहा है--

''नंगी दुर्वर्ण रूप की हो तथा अपवित्र गन्ध फैला रही हो। मक्खियां भिनभिना रहीं हैं। तुम कौन हो?''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"भदन्ते ! मैं यमलोक की दुर्गतिप्राप्त प्रेती हूं। पाप कर्म करके प्रेतलोक में आयी हूं। कालक्रम से पाँच पुत्रों को उत्पन्न करके मैंने उन्हें खाया है तो भी वे पर्याप्त नहीं हुए। मेरा हृदय क्षुधा से जलता रहता है। मुझे कहीं भी शान्ति नहीं मिलती।"

"काया, वाणी या मन से तुमने क्या दुष्कर्म किया है? किस कर्मविपाक के कारण तुम पुत्रमांस खाती हो?"

"मेरी सपत्नी गर्भिणी थी। मैंने दुष्ट मन से उसका दो-तीन साम का गर्भपात करा दिया। उससे रक्त प्रवाहित हुआ। उसकी मां ने कुपित होकर जाति वालों को बुलाया। मुझे शपथ देकर पूछा और मैं झूठ बोल गई। मैंने शपथ ले ली थी। अब पुत्रमाँस खाती हूँ। उस असत्यभाषण रूप कर्मविपाक का यह फल है कि पुत्रमाँस खाती हूं, पीठ से रक्त बह रहा है और मक्खियाँ भिनभिना रही हैं।"

समस्त पेतवत्थु में इसी प्रकार पापकर्मों के दुष्परिणाम को व्यक्त करने वाली कथाएँ संकलित हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इसे 'गरुड़पुराण का प्रारम्भिक संस्करण' कहना उचित समझा है।

८. थेरगाथा

थेरगाथा में बौद्धभिक्षुओं की गाथाएँ संकलित हैं। इनमें कुछ को छोड़कर प्रायः सभी स्थविर बुद्धकालीन रहे हैं। न केवल प्राचीनता एवं धार्मिकता, प्रत्युत साहित्यिकता की दृष्टि से भी यह ग्रंथ नितान्त महत्त्वपूर्ण है। इसके प्रकृति वर्णन अत्यन्त हृदयहारी हैं।

इस ग्रंथ में २५५ भिक्षुओं की गाथाएँ संगृहीत हैं अट्ठकथाओं में भिक्षुओं की संख्या २६४ मानी गई है। गाथाओं का संख्या के अनुसार यह ग्रंथ इक्कीस निपातों में विभक्त है-१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, २०, ३०, ४०, ५० और ६० के क्रम से। चार गाथाओं वाली रचनाएं चतुक्क निपात में संगृहीत हैं तो बीस गाथाओं वाली बीसतिक निपात में। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रंथ इक्कीस निपातों में विभाजित है।

इस ग्रंथ का मुख्य वर्ण्य है बौद्धभिक्षुओं की आन्तरिक अनुभूतियों का वर्णन। विभिन्न भिक्षु किस-किस प्रकार विरक्त हुए-यह यहां विस्तृत पटल पर अंकित

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हुआ है। विषयी नन्द की कथा उन्हीं के शब्दों में सुनिए--

अयोनिसो मनसीकारा मण्डनं अनुयुञ्जिसं,
उद्धतो चपलो चासिं कामरागेन अट्टितो।।

उपायकुशलेनाहं बुद्धेनादिच्चबन्धुना,
योनिसो पटिपज्जित्वा भवे चित्तं उदब्बहित्ति।।

(कुचिन्तनलीन मैं शरीर के शृंगारसाधन में लगा रहता था। मैं उद्धत, चंचल तथा कामवासना से ग्रस्त था। सौभाग्यवश भगवान् बुद्ध ने सुंदर उपदेशों से मुझे सन्मार्ग पर ला दिया। अब मेरा चित्त संसार से अनासक्त हो चुका है।)

स्थविर सारिपुत्र भिक्षुजीवन के महदादर्श को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं--

नाभिनन्दामि मरणं नाभिनन्दामि जीवितं।
कालञ्च पटिकंखामि सम्पजानो पटिस्सतो।।

नाभिनन्दामि मरणं नाभिनन्दामि जीवितं।
कालञ्च पटिकखामि निब्बिसं भतको यथा।।

(न मुझे मरने की अभिलाषा है और न जीने की इच्छा। ज्ञानपूर्वक सावधान होकर मैं अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूं। कार्यसम्पन्न होने पर मजदूरी के लिए प्रतीक्षारत दास के समान, मैं अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूं।)

स्थविर तालपुट की उक्ति दर्शनीय है--

रोपेत्वा रुक्खानि यथा फलेसी मूले तरुं द्देतु तमेव इच्छसि।
तथुपमं चित्त इदं करोसि यं मं अनिच्चम्हि चले नियुज्जसि।।

(हे चित्त ! इस नित्य संसार में मुझे लगाकर तुम ऐसा ही कार्य कर रहे हो जैसे कोई फलों की इच्छा से वृक्ष लगाकर उसकी जड़ को काटना चाहे।)

इसी प्रकार विभिन्न भिक्षुओं ने अपने जीवनानुभव को वाणी दी है। कहीं-कहीं नारी के कामिनी रूप के प्रति विरक्ति भाव भी अभिव्यक्त हुआ है।

थेरगाथा की सबसे बड़ी विशेषता प्रकृतिचित्रण की प्रचुरता है। वन्य एवं पार्वत्य जीवन के इतने सुंदर, सरल एवं संश्लिष्ट चित्र एकत्र दुर्लभ ही हैं।

नीला सुगीवा मोरा कारंविय अभिनदन्ति।
ते सीतवातकलिता सुत्तं धायं निब्रोधेन्ति।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(नीले रंग की सुन्दर ग्रीवा एवं शिखा वाले मोर कारवी वन में गाते हैं। शीतल वायु से प्रफुल्लित हुए मधुर गीत गाने वाले मोर भिक्षुओं को ध्यान के लिए जगाते हैं।)

भिक्षुओं ने वर्षा एवं शरद् के समय प्रतिपल परिवर्तित प्रकृति तथा जीव-जन्तुओं का सुंदर चित्रण किया है। "इस नदी के दोनों तटों पर दोनों ओर जामुन के रम्य वृक्ष हैं। यहां मेरा मन कैसे न रमेगा?" और आज पर्वत और नदी से पृथक् होने का समय नहीं है" आदि वाक्यों से उनकी प्रकृतिविषयक तन्मयता स्पष्ट हो जाती है। इन चित्रों को देखकर पाश्चात्य विचारक विण्टरनित्ज ने इन्हें 'भारतीय गीतिकाव्य के सच्चे रत्न' (The Real gems of Indian Lyric-Poetry) कहा है जो उचित ही है।

६. थेरीगाथा

जिस प्रकार बौद्धभिक्षुओं के हृदय के उद्गार थेरगाथा में संगृहीत हैं उसी प्रकार भिक्षुणियों की अन्तस्तल की पुकार थेरीगाथा में है। ये सभी भिक्षुणियां न केवल बुद्धकालीन थीं वरन् उनकी शिष्याएं भी थीं। नैतिक आदर्श, गहन भावात्मकता और वैयक्तिकता थेरीगाथाओं की मूलभूत विशेषताएँ हैं।

थेरीगाथा में ७३ भिक्षुणियों की ५२२ गाथाएं सन्निहित हैं। कुछ गाथाएँ सामूहिक रूप में भी रची गयी हैं। यदि इनकी प्रत्येक भिक्षणी की गणना की जाए तो इनकी संख्या लगभग एक सौ हो जाती है। ये गाथाएँ सोलह निपातों में विभक्त हैं। ये निपात थेरगाथाओं के समान ही संख्यात्मक आधार पर विभाजित किये गये हैं।

थेरीगाथा में भिक्षुणियों का समर्पणभाव संगीतात्मक शब्दों में व्यक्त हुआ है। यहां नारी जीवन के यथार्थ का सूक्ष्मपर्यवेक्षण अधिक हुआ है। फलतः जीवन का करुण पक्ष ही अधिक व्यक्त हुआ है तथापि उनमें निराशा की झलक नहीं मिलती। वे अपने क़ो बहुत सुखी और सन्तुष्ट घोषित करती हैं और जीवन की विषमताओं में विजय के गान गाती हैं। वे निर्वाणजन्य शान्ति का अपरिमित मात्रा में वर्णन करती हैं। वे बार-बार यही कहती हैं कि मैंने निर्वाण को प्राप्त कर लिया है, मैंने शान्ति को पा लिया है।

थेरीगाथा से पता चलता है कि इन भिक्षुणियों में सवर्ण से लेकर अवर्ण तक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सभी जातियों की नारियाँ विद्यमान थीं, गणिकाओं के लिए भी बौद्धधर्म के द्वार खुले हुए थे। इनके प्रव्रजित होने कारण भी विभिन्न थे। कोई पूर्णज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रव्रजित हुई है तो कोई प्रियजन के चिरविछोह से, कोई पति के दुर्व्यवहार से प्रव्रजित हुई है तो कोई गृहदोषों से। अपने रूप-सौन्दर्य से भिक्षु को पराजित न कर सकने वाली भिक्षुणियाँ भी उपलब्ध होती हैं तो भाई के साथ प्रव्रज्या लेने वाली थी। इस प्रकार भिक्षुणीसंघ में सभी जाति एवं वर्णों का प्रतिनिधित्व था और प्रव्रज्या के कारण भी विभिन्न थे।

थेरीगाथा की प्रमुख विशेषता उसका काव्यगत सौन्दर्य है। अम्बपाली से लेकर सुमेधा तक अन्तिम सात भिक्षुणियों की गाथाएँ तो गीतिकाव्य का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इसमें अनेक स्थलों पर नाटकीयता भी सुन्दर रूप में प्रकटित हुई है। रोहिणी और उसके पिता का संवाद, सुंदरी, उसकी माता तथा सारथी का संवाद, चापा और उसके पति का संवाद, शैला और मार तथा चाला और मार का संवाद आदि अनेक संवाद नाटकीयता से परिपूर्ण हैं।

थेरीगाथा के स्वरूप को समझने के लिए यहां अम्बपाली की गाथाओं का हिन्दी रूपान्तर दिया जा रहा है जो उसकी वृद्धावस्था की रची हुई हैं--

"जब मैं जवान थी भ्रमरवर्ण के समान मेरे ये केश छोर पर कुंचित थे। आज वृद्धावस्था में वही सन के छिलके के समान हो गये हैं। सत्यवादी बुद्ध का वचन मिथ्या नहीं हो सकता।"

कालका भमखण्णसदिसा बेलितग्गा मम मुद्धजा अहु।
ते जराय सालवाक सदिसा सच्चवादिवचन अनञ्ञथा।।

"पुष्पराशि से सुगन्धित मेरा केशपाश कभी सुगन्ध से परिपूर्ण मञ्जूषा के समान महकता था। उसी में आज खरगोश के रोमों की सी दुर्गन्ध आती है। सत्यवादी बुद्ध का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता।"

"सघन सुरोपित कानन के समान मेरे केश सुइयों से विचित्र तथा अग्रशोभित थे। आज वे वृद्धावस्था में अत्यन्त विरल तथा अनाकर्षक हो गये हैं। सत्यवादी बुद्ध का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता।"

"नवयौवन की अवस्था में मेरी नासिका कोमल, उन्नत और समरूप थी। आज वह शुष्क तथा पिचकी सी हो गयी है। सत्यवादी बुद्ध का वचन कभी मिथ्या

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं हो सकता।"

थेरगाथा और थैरीगाथाओं का मूल्यांकन करते हुए डा० परमानन्द शास्त्री ने सत्य ही कहा है : "थेरों और थेरियों की गाथाओं में आत्मानुभूति की समुचित अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने अपने जीवन के मार्मिक अनुभवों को सरल स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी शैली में व्यक्त किया है। यह आत्मनिष्ठता उस युग की सबसे बड़ी देन है।"[1]

१०. जातक

जातक खुद्दकनिकाय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। जनसाधारण में इस निकाय के 'धम्मपद' तथा 'जातक' दो ग्रंथ ही लोकप्रिय हुए हैं। यह लोककथाओं का रुचिर संग्रह है। 'जातक' शब्द का अर्थ है जन्म से सम्बद्ध। इसमें गौतम बुद्ध की पूर्वजन्मों की कथाएँ है जिस समय वे बोधिप्राप्ति के लिए उद्योगरत थे। इसमें कुछ कहानियाँ मानव जीवन की हैं और कुछ पशु-पक्षियों की, लेकिन प्रायः प्रत्येक कहानी के प्रमुख पात्र बुद्ध ही रहे और उनके वचन ही कहानी का प्रतिपाद्य या सन्देश हैं।

जातकों की संख्या ५५० मानी जाती है लेकिन आज ५४७ ही उपलब्ध होते हैं। ये जातक गद्य में हैं, लेकिन सभी गाथाओं से सम्पन्न हैं। इन गाथाओं की संख्या एक से लेकर शताधिक तक है। अन्तिम जातक (वेस्सन्तर जातक) में गाथाओं की संख्या सात सौ से भी अधिक है। इन गाथाओं के आधार पर ही इन्हें इक्कीस निपातों में विभाजित किया गया है, लेकिन यह वर्गीकरण नितान्त अवैज्ञानिक है।

प्रत्येक जातक पांच वर्गों में विभक्त रहता है--पच्चुप्पन्नवत्थु (प्रत्युत्पन्नवस्तु), अतीतवत्थु (अतीत वस्तु) गाथा, अत्थवण्णना (अर्थवर्णना) और समोधन (समवधान)। पच्चुप्पन्नवत्थु में बुद्ध के जीवन की वह घटना आती है जो प्राचीन कथा को कहने की प्रेरणा देती है। अतीतवत्थु में बुद्ध के पूर्वजन्म की कथा आती है। कथात्मकता की दृष्टि से यही प्रमुख है। गाथा जातक का प्राचीनतम भाग है। वस्तुतः ये ही बुद्धवचन एवं प्रामाणिक हैं, शेष सम्पूर्ण घटनाएँ इन्हीं के आधार पर गठित की गयी हैं। गाथाओं के पश्चात् अत्थवण्णना आती है जिसमें गाथाओं की व्याख्या रहती है। अन्त में समोधन आता है जिसमें अतीतवत्थु के पात्रों का वर्तमान

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. डा. परमानन्द शास्त्री : गीतिकाव्य का विकास, पृष्ठ १५२

जीवन के पात्रों के साथ सम्बन्ध बताया जाता है।

जातक के उक्त पाँचों अंगों में गाथा-भाग ही प्राचीनतम एवं प्रामाणिक माना जाता है, लेकिन इनसे किसी कथा की रूपरेखा स्पष्ट नहीं होती। जब अतीतवत्थु और पच्चुप्पन्नवत्थु का योग हो जाता है तभी कथा पूर्णत्व प्राप्त करती है इसीलिए सम्पूर्ण (पांचों अंगों सहित) को जातक कह दिया जाता है अन्यथा केवल गाथा-भाग को जातक तथा सम्पूर्ण को 'जातकट्ठकथा' (जातक अर्थकथा) या 'जातकट्ठवण्णना' (जातक-अर्थवर्णना) ही कहना चाहिए।

११. निद्देस

निद्देस स्वतंत्र ग्रंथ न होकर, सुत्तनिपात के कुछ अंशों की व्याख्या है। अतः इसे अट्ठकथा (अर्थकथा) कहना ही अधिक युक्तिसंगत है। इसके दो भाग हैं-- महावग्ग और चुल्लवग्ग। महावग्ग सुत्तनिपात के अट्ठकवग्ग, जिसे सोणकुटिकण्ण ने भगवान् बुद्ध को जेतवन में सस्वर सुनाया था, की व्याख्या है और चुल्लवग्ग सुत्त निपात के खग्गविसाण सुत्त तथा पारायण वग्ग (वत्थुगाथा के अतिरिक्त) की। इस ग्रंथ में भारतवर्ष के ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी के जलमार्गों एवं थलमार्गों का विस्तृत विवरण है। भारत से जिन देशों का व्यापार उस काल में होता था, उनके नगरों, बन्दरगाहों तथा मार्गों का भी उल्लेख मिलता है। परम्परा से यह सारिपुत्र की रचना मानी जाती है।

१२. पटिसम्भिदामग्ग

इस ग्रंथ में अर्हत् के प्रतिसंविद्विषयक ज्ञान का विवेचन है। इसके तीन प्रमुख भाग हैं जो प्रत्येक दस-दस परिच्छेदों में विभक्त हैं। विषय एवं शैली दोनों ही दृष्टि से इसका संबंध सुत्तपिटक की अपेक्षा अभिधम्मपिटक से अधिक है।

१३. अपदान (अवदान)

अपदान का अर्थ है चरित। इसमें विभिन्न बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों का चरित ही वर्णित है। इसे दो भागों में विभाजित किया गया है-थेरापदान एवं थेरी-अपदान। थेरापदान में ५४७ भिक्षुओं द्वारा वर्तमान जीवन तथा अतीत जीवन में किये गये पुण्यकृत्यों का वर्णन है। इसमें पचपन वर्ग हैं और प्रत्येक में दस अपदान हैं, केवल चौतीसवें में सात हैं। सम्पूर्ण थेरापदान ६२८६ गाथाओं में है। थेरी-अपदान में चालीस बौद्ध भिक्षुणियों के अतीत एवं वर्तमान जीवन के सुकृत्यों का वर्णन है। इसमें चार वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में दस-दस अपदान

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हैं। थेरी-अपदान में कुल मिलाकर १२६६ गाथाएं हैं। इस ग्रंथ का न्यूनाधिक धार्मिक महत्त्व ही है, साहित्यिक या ऐतिहासिक नहीं।

१४. बुद्धवंस

यह अट्ठाईस परिच्छेदों का पद्यात्मक ग्रंथ है जिसमें दीपंकर से लेकर शाक्य सिंह गौतम तक पच्चीस बुद्धों का वर्णन है। शाक्य मुनि गौतम का वर्णन विस्तृत है, शेष सभी का वर्णन पौराणिक शैली पर आधारित है। साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्त्व नगण्य है। स्वयं बौद्ध परम्परा भी इसे प्रामाणिक नहीं मानती।

१५. चरियापिटक

यह ग्रंथ भी बुद्धवंस के समान प्रामाणिक नहीं माना जाता। इसमें बुद्धदेव के पूर्वजन्मों का वर्णन है और बताया गया है कि किस-किस प्रकार बोधिसत्त्व ने पारमिताओं को पूर्ण किया। यहां केवल दान-पारमिता, शील पारमिता, नैष्क्रम्य-पारमिता, अधिष्ठान पारमिता, सत्य पारमिता, मैत्री पारमिता और उप्रेक्षा पारमिता का वर्णन मिलता है, शेष तीन का नहीं। यह ग्रंथ सात परिच्छेदों में विभक्त है जिनमें कुल पैंतीस जीवनचर्याओं का वर्णन है। प्रत्येक जीवनचर्या किसी न किसी जातक पर आधारित जान पड़ती है। अधिकांशतः नाम भी उसी जातक के समान ही है जैसे अकित्तिजातक के आधार पर अकित्तिचरिया, महासुदस्सन जातक के आधार पर महासुदस्सन चरिया और भूरिदत्तजातक के आधार पर भूरिदत्त चरिया आदि। मुख्य अन्तर यह है कि जातक की कथा विस्तृत होती है जबकि चरिया की अतिसंक्षिप्त। जातक में मुख्यतः गद्य का आश्रय लिया गया है जबकि चरिया में पद्य का। अतिसंक्षिप्तता के कारण चरिया में जातक जैसा आनन्द नहीं आता। इस ग्रंथ का न साहित्यिक महत्त्व है और न ऐतिहासिक, धार्मिक भी इसे प्रामाणिक नहीं मानते।

चरिया का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए यहां 'कपिराजचरिया' उद्धृत की जाती है--

यदा अहं कपिं आसिं नदीकूले दरीयसे।
पीलतो सुंसुमारेन गमन न लभामहं।।
यम्होकासे अहं ठत्वा ओरपारं पतामहं।
तत्थच्छि सत्तुवधको कुम्भीलो लुद्ददस्सनो।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सो मं असंसि एहीति अहमेमीति तं वदिं।
तस्स मत्थकमक्कम्म परकूले पतिट्ठहिं।।
न तस्स अलिकं भणितं यथा वाचं अकासहं।
सच्चेन मो समो नत्थि एसा मे सच्च पारमितातिं।।

विनयपिटक

विनयपिटक भिक्षुसंघ का संविधान हैं। इसमें उन सभी नियमों का संकलन है जिनका पालन बौद्धभिक्षुओं के लिए आवश्यक है। अतः इसे भिक्षुओं की आचार-संहिता कहना उपयुक्त ही होगा। धार्मिक दृष्टि से इसका महत्त्व अन्य पिटकों से अधिक है।

विनयपिटक के नियमों का उपदेश शाक्य सिंह ने धम्म के बाद ही दिया। बोधिप्राप्ति के उपरान्त ऋषिपत्तन (सारनाथ) में पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देते हुए उन्होंने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। इस उपदेश के साथ ही बुद्ध के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी और अन्ततः भिक्षुसंघ की स्थापना हुई। प्रारम्भ में उनके सभी प्रमुख शिष्य निर्मल एवं निष्पाप थे। अतः नियमों की आवश्यकता नहीं समझी गयी। धर्मसेनापति सारिपुत्र के यह प्रार्थना करने पर, "भन्ते ! भगवान् शिष्यों के लिए शिक्षापद का विधान करें, प्रतिमोक्ष का उपदेश दें जिससे यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो।" गौतम बुद्ध यही कहते हैं-"सारिपुत्र ! शास्ता तब तक शिष्यों के लिए शिक्षापद का विधान नहीं करते, प्रातिमोक्ष का उपदेश नहीं देते, जब तक कि संघ में कोई चित्तमल को प्रकट करने वाले धर्म उत्पन्न नहीं होते। सारिपुत्र ! जब संघ में कोई चित्तमल को प्रकट करने वाले धर्म उत्पन्न हो जाते हैं तो उन्हीं के निवारण के लिए, उन्हीं के प्रातिघात के लिए शास्ता शिष्यों को शिक्षापद का विधान करते हैं, प्रातिमोक्ष का उपदेश देते हैं।" इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भ में गौतम बुद्ध केवल धम्म का ही उपदेश देते थे, किन्तु भिक्षुसंघ की स्थापना के बाद जब उन्होंने उन्हें विपरीत आचरण करते देखा तो विनय का निर्माण किया।

विनयपिटक धम्म के बाद अस्तित्व में आया-इसका अर्थ यह नहीं है कि विनय कम महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः विनय ही भिक्षुसंघ का जीवन तथा धर्म का प्राण है। बौद्धभिक्षु प्रारम्भ से ही यह मानते रहे हैं कि धम्म तभी तक चलेगा जब

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तक विनय का पालन होता। रहेगा। उसे बुद्धानुशासन की आयु माना जाता है। लंका, थाईलैण्ड और बर्मा के भिक्षु आज भी इस तथ्य में दृढ़ विश्वास रखते हैं और महत्त्व की दृष्टि से त्रिपिटक का क्रम इस प्रकार स्वीकारते हैं-विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक।

विनय के उपदेश का उद्देश्य गौतम बुद्ध ने स्वयं भी स्पष्ट किया है। विनयविषयक उपदेश करने में उनकी दृष्टि में दस उद्देश्य रहे हैं। उन्हीं के शब्दों में--"भिक्षुओं ! दस बातों पर विचार कर मैं भिक्षुओं के उपकार के लिए विनयनियमों का उपदेश करता हूं। (१) भिक्षुसंघ के कल्याण के लिए, (२) संघ की सरलता के लिए, (३) उच्छृंखल पुरुषों के नियमन के लिए, (४) अच्छे भिक्षुओं के सुखपूर्ण विहार के लिए, (५) इस जन्म के चित्तमलों के निवारण के लिए, (६) जन्मान्तर के चित्तमलों के विनाश के लिए, (७) अप्रसन्नों की प्रसन्नता के लिए, (८) प्रसन्नों की प्रसन्नता बढ़ाने के लिए, (९) सद्धर्म की चिरस्थिति के लिए, तथा (१०) संयम की सहायता के लिए।" भगवान् बुद्ध के उक्त कथन से विनय-नियमों के स्वरूप, उपयोगिता तथा सीमाओं को समझने में बहुत सहायता मिलती है।

विनयपिटक निम्नलिखित भागों में विभक्त है--

१. सुत्तविभंग--
   (क) पाराजिक
   (ख) पाचित्तिय
२. खन्धक--
   (क) महावग्ग
   (ख) चुल्लवग्ग
३. परिवार।

सुत्तविभंग

सुत्तविभंग का वर्गीकरण दोषपूर्ण है। इसे दो भागों में विभाजित किया गया है-- पाराजिक और पाचित्तिय। नामकरण के आधार पर इसमें क्रमशः चार पाराजिक तथा बानवें पाचित्तिय अपराधों का ही सदण्ड विश्लेषण होना चाहिए था,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लेकिन ऐसा नहीं है। पाराजिक में चार पाराजिकों के अतिरिक्त पन्द्रह संघादिसेसों, दो अनियमित धर्मों तथा तीस निस्सगीय पाचित्तिय धर्मों का भी विवरण है। इसी प्रकार पाचित्तिय में बानवें पाचित्तिय धर्मों के अतिरिक्त पाटिदेसनीय, पचहत्तर सेखिय तथा सात अधिकरण समथ नियमों का विवरण है और बाद में भिक्षुणियों के नियमों का भी। यदि पाराजिक को भिक्षुविभंग तथा पाचित्तिय को भिक्षुणीविभंग कहें, तब भी उचित नहीं है क्योंकि पाराजिक में भिक्षुओं के सम्पूर्ण नियम नहीं हैं, कुछ पाचित्तिय में भी हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सुत्तविभंग में दो सौ सत्ताइस अपराधों तथा तद्विषयक दण्डों का विवेचन है। यहां अधिक विवाद में न पड़कर इन पर संक्षिप्त प्रकाश डालना ही अधिक युक्तिसंगत होगा।

(क) पाराजिक

पाराजिक उन अपराधों को कहते हैं जिन्हें करने पर भिक्षु अपने लक्ष्य में पराजित मान लिया जाता है अर्थात् भिक्षु ने जिस लक्ष्य के लिए प्रव्रज्या ली है उसमें ये अपराध उसे कदापि सफल नहीं होने देते। इसलिए इनके करने पर भिक्षु को कोई भी प्रायश्चित नहीं करना पड़ता, बल्कि उसे अयोग्य मानकर संघ से निष्कासित कर दिया जाता है। पाराजिक के अन्तर्गत चार अपराधों की गणना की जाती है। ये हैं--(१) स्त्रीमैथुन, (२) न दी हुई वस्तुओं को लेना या चोरी, (३) मानव हत्या या उसका प्रयास तथा (४) लाभ एवं सत्कार प्राप्त करने के लिए सिद्धि का दावा या प्रदर्शन करना। इसके करने पर भिक्षु को प्रायश्चित का अवसर नहीं दिया जाता, प्रत्युत उसे संघ से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

(अ) संघादिसेस

संघादिसेस के दण्डस्वरूप भिक्षु को छः दिन संघ से पृथक् रहकर एकान्तवास करना होता है तथा इस समय में तपस्या करके वह शुद्ध हो जाता है। संघादिसेस के अन्तर्गत निम्न तेरह अपराध गिने जाते हैं :

(१) जानबूझकर वीर्यपात करना,

(२) वासना से अभिभूत होकर स्त्री का स्पर्श करना,

(३) वासना से अभिभूत होकर स्त्री के साथ वार्तालाप करना,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(४) अपनी प्रशंसा द्वारा कुत्सित उद्देश्य से किसी स्त्री को आकर्षित करना

(५) विवाह कराना या प्रेमियों को मिलाना या प्रोत्साहित करना,

(६) संघ की पूर्वानुमति के बिना अपने लिए विहार बनवाना,

(७) पूर्वानुमति के बिना बड़ा विहार बनवाना जिसके चारों ओर खुली जगह भी न हो,

(८) क्रोध से अभिभूत होकर भिक्षुओं पर पाराजिक दोष लगाना,

(९) क्रोधाभिभूत होकर भिक्षुओं पर पाराजिक के समान अन्य दोष लगाना,

(१०) चेतावनी देने के उपरान्त भी संघभेद का प्रयास करना,

(११) संघभेदकों का पक्ष करना या सहायता देना,

(१२) अनुमति के बिना गृहस्थ के घर में प्रवेश करना, और

(१३) चेतावनी देने पर भी संघ या साथियों का आदेश न मनाना।

ये ऐसे अपराध हैं जिनका प्रायश्चित करके भिक्षु पुनः शुद्ध हो जाता है।

(ब) अनियतधम्म

ये ऐसे अपराध हैं जिनका स्वरूप अनियत (अनिश्चित) रहता है और साक्ष्य मिलने पर ही जिन्हें किसी श्रेणी के अपराधों में गिना जा सकता है। ये दो प्रकार के हैं : (क) यदि काई भिक्षु एकान्त-स्थान में किसी स्त्री से वार्तालाप कर रहा है और कोई श्रद्धावती उपासिका आकर उस पर दोष लगाती है और वह उसे स्वीकार कर लेता है तो वह तदनुरूप ही दण्ड का भागी होगा। (ख) यदि कोई भिक्षु खुले में किसी स्त्री से वार्तालाप कर रहा है, किन्तु उसके शब्दों में कुछ अनौचित्य है और कोई श्रद्धावती उपासिका उस पर दोष लगाती है तथा वह उसे स्वीकार कर लेता है तो वह तदनुरूप ही दण्ड का भागी होगा।

(ख) पाचित्तिय

पाचित्तिय के अन्तर्गत बानवें ऐसे अपराधों की गणना की जाती है, जिन्हें करने पर भिक्षु प्रायश्चित करके अपराधमुक्त हो जाता है और उसे भविष्य में ऐसा न करने का संकल्प लेना होता है। ये अपराध अधिकांशतः देशकाल से सम्बद्ध हैं लेकिन कुछ सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक भी हैं। संघ के अनुशासन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की दृष्टि से इनका महत्त्व बहुत अधिक है, लेकिन पालि साहित्य की दृष्टि से ये विशेष महत्त्व नहीं रखते। अतः यहां सभी का नामोल्लेख न करके कुछ का स्वरूप दिखा देना ही उपयुक्त होगा। भिक्षु के लिए एक समय भोजन करना, असमय भोजन न करना, झूठ न बोलना, अपशब्द न कहना, निन्दा न करना, भिक्षुणी को उपदेश देते समय सावधान एवं जागरूक रहना, मादक द्रव्यों का प्रयोग न करना आदि का पालन अनिवार्य है। यदि वह किसी का उल्लंघन करता है तो वह अपराध पाचित्तिय के अन्तर्गत आता है। इसके परिमार्जन के लिए भिक्षु को प्रायश्चित करना होता है तथा भविष्य में ऐसा न करने का संकल्प लेना होता है।

(अ) निस्सग्गिय पाचित्तिय

इस वर्ग के अन्तर्गत वे अपराध आते हैं जिनमें अपराध स्वीकार करने के साथ प्रायश्चित तो करना ही पड़ता है, साथ ही अपराध से सम्बद्ध वस्तु भी संघ को लौटानी पड़ती है। इस वर्ग में तीस अपराधों की गणना की गयी है। ये सभी वस्त्र एवं भिक्षापात्र से सम्बद्ध हैं। उदाहरणार्थ, कोई भिक्षु अतिरिक्त चीवर रखना चाहता है, गृहस्थ से असमय वस्त्र मांग करता है अथवा किसी ऊनी या रेशमी वस्त्र की ओर इंगित करता है तो उसका यह अपराध निस्सग्गिय पाचित्तिय के अन्तर्गत आएगा। इस वर्ग के अपराधों में भिक्षु को प्रायश्चित करना होता है और अतिरिक्त वस्त्र या भिक्षापात्र, जिसके कारण वह अपराधी माना गया है, भी संघ को लौटना पड़ता है। संघ को समर्पित वस्तु पर वैयक्तिक अधिकार मानने वाले भिक्षु भी इसी वर्ग के अपराधी माने जाते हैं। इस वर्ग में तीस अपराधों की गणना की गयी है। यहां सभी का नामोल्लेख निरर्थक ही होगा।

(ब) पाटिदेसनीय

ये वे अपराध हैं जिनके लिए भिक्षु को प्रतिदेशना (क्षमायाचना) करनी पड़ती है। इसके अन्तर्गत चार प्रकार के अपराधों की गणना की जाती है--(क) अज्ञात भिक्षुणी द्वारा भोजनप्राप्ति, (ख) भोजन के समय भिक्षुणी द्वारा भिक्षुओं को आदेश देते देखकर भी उसे न रोकना, (ग) पूर्वनिमन्त्रण के बिना अपने स्थान पर गृहस्थ से भोजन ग्रहण करना, और (घ) संकटग्रस्त वन या एकान्त में बुलाकर गृहस्थ से भोजन प्राप्त करना। इन चार अपराधों के लिए भिक्षु को क्षमायाचना करनी पड़ती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(स) सेखिय

ये वे शैक्ष्य धर्म हैं जिनका संबंध बाहरी शिष्टाचार, वस्त्रधारण के ढंग तथा भोजनग्रहण के नियम आदि से है। इनमें अधिकांशतः तात्कालिक शिष्टाचार को व्यक्त करते हैं। इन्हें भगवान् बुद्ध ने क्षुद्रानुक्षुद्र नियम कहा है और देशकाल के अनुसार इनके ग्रहण एवं त्याग को उचित कहा है। भिक्षा के लिए जाते समय किस प्रकार वस्त्र धारण करना चाहिए, वस्त्र शरीर पर कितना ढीला और कितना कसा होना चाहिए, उसे किस प्रकार शान्त रहना चाहिए आदि बातों की गणना इसके अन्तर्गत आती है। इनका उल्लंघन करने पर भिक्षु को पुनः शिक्षा दी जाती है, इनके लिए किसी प्रकार के प्रायश्चित का विधान नहीं किया गया है। पालि विनयपिटक में इनकी संख्या ७५ मानी गयी है जबकि चीनी विनयपिटक में इनकी संख्या १०० तथा तिब्बती विनयपिटक में १०६ मानी गयी है।

(द) अधिकरण समथ

संघ में विनयविषयक विवाद उपस्थित होने पर उसकी शान्ति के लिए सात नियमों का विधान किया गया है। ये सभी नियम तत्कालीन गणतंत्रीय व्यवस्था से लिये गये हैं। ये नियम हैं-- (१) संमुख विनय, (२) स्मृति विनय, (३) अमूढ़ विनय, (४) प्रतिज्ञातकरण, (५) यद्भूयसिक, (६) तत्पापीयसिक, (७) तिणवत्थारक। इनका उपयोग कर संघ के विवाद दूर किये जा सकते हैं।

खन्दक

(क) महावग्ग

महावग्ग दस खन्धकों (स्कन्धकों) में विभाजित है। प्रथम स्कन्ध-महास्कन्धक-में बुद्ध की बोधिप्राप्ति, प्रथम यात्रा, चक्रप्रवर्तन राजगृह में बिम्बिसार को उपासक बनाने तथा सारिपुत्र एवं मोग्गल्लान को प्रव्रज्या देने का वर्णन है। इसमें मुख्यतः प्रव्रज्या-उपसम्पदा की विधि एवं शिष्य-उपाध्याय के कर्तव्यों का विश्लेषण किया गया है। दूसरे स्कन्ध-उपोसथखन्धक-में उपोसथ की विधि का विस्तृत विवरण है। वर्षोपनायिकास्कन्धक में वर्षावास करने तथा प्रवारणास्कन्धक में आश्विन पूर्णिमा को प्रवारणा मनाने की विधि बतायी गयी है। चर्मस्कन्धक में चमड़े की वस्तुओं, मुख्यतः जूतों का उपयोग बताया गया है। छठे स्कन्ध-भैषज्यस्कन्धक-में औषध-प्रयोग बताया गया है। यहां मरहम-पट्टी, सर्पचिकित्सा, विषचिकित्सा,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाण्डूरोग चिकित्सा आदि का विधान किया गया है। इसी स्कन्ध में सर्प, शेर, चीता, भालू, लकड़बग्घा आदि के मांस को त्याज्य माना गया है। सातवें स्कन्ध में कठिन चीवर के नियम वर्णित हैं जो आश्विन पूर्णिमा को गृहस्थों द्वारा किसी भिक्षुविशेष को प्रदान किया जाता है। आठवें चीवर स्कन्धक में चीवर के वितरण, सुरक्षा, उनकी संख्या तथा बिछाने की चादर आदि का उल्लेख है। नवें चम्पेयस्कन्धक में दो दोषों तथा उनके प्रतिकार की बातें हैं। कोशम्बस्कन्धक में कौशाम्बी के घोषिताराम के संघर्ष की बातें हैं। महावग्ग में सेवा का उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध ने एक स्थल पर कहा है--"भिक्षुओं ! तुम्हारे न माता हैं और न पिता जो सेवा करेंगे। यदि तुम एक-दूसरे की सेवा नहीं करोगे तो कौन करेगा? भिक्षुओं ! जो मेरी सेवा करना चाहे, वह रोगी एवं अशक्त की सेवा करे।"

(ख) चुल्लवग्ग

चुल्लवग्ग का विषय भी महावग्ग के समान ही भिक्षुओं का अनुशासन है। यह बारह स्कन्धों में विभाजित है। प्रथम स्कन्धक 'कर्मस्कन्धक' में प्रतिसारणीय, तर्जनीय, उत्प्रेक्षणीय, प्रव्राजनीय आदि कर्मों का विवरण है। पारिवासिक स्कन्धक में परिवास, मूल से प्रतिकर्षण, मानत्व, आह्वान आदि दण्डों की चर्चा है। समच्चयस्कन्धक में कर्मों के समूह का विवरण है। शमथस्कन्धक में मुकदमों के फैसलों में सहायक बातों का उल्लेख है। क्षुद्रकवस्तुस्कन्धक में स्नान, आभूषण, आलेपन, स्वांग-तमाशा, नृत्य-संगीत, पात्र एवं विहार-निर्माण आदि बातों का विस्तृत विवरण हैं। शयनासनस्कन्धक में विहार के भीतर के सामान का विवरण है। यहां विभिन्न प्रकार की चारपाइयों, चौकियों, बिहार की पुताई, घर, आलिन्द, उसारा, पानीघर, आंगन आदि का विधान है। यहीं बुद्धत्व के आधार पर सम्मान देने की बात कही गयी है। संघभेदकस्कन्धक में अनिरुद्ध, देवदत्त और उपालि की कथा विस्तारपूर्वक कही गयी है। देवदत्त महत्त्वाकांक्षा के कारण संघ तथा बुद्ध का विरोधी हो गया था। उसने बुद्ध को मारने के कई असफल प्रयास किए। यहां अतिथि, भिक्षु, आवासिक, गाभिक आदि के कर्तव्य बताए गये हैं। भोजन, आसन, स्नानगृह आदि के नियम एवं शिष्य, उपाध्याय, आचार्य आदि के कर्तव्य भी यहीं बताये गये हैं। प्रतिमोक्षस्थापनस्कन्धक में प्रतिमोक्ष के स्थगन के नियमों की विस्तृत चर्चा है। भिक्षुणीस्कन्धक में भिक्षुणियों की प्रव्रज्या-उपसम्पदा, आठ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गुरुनियम, संघकर्म, अधिकरण शमथ तथा त्याज्य बातें बताई गयी हैं। पंचशतिकास्कन्धक में प्रथम संगीति और सप्तशतिका स्कन्धक में द्वितीय संगीति का विस्तृत विवरण है। इस प्रकार चुल्लवग्ग का उद्देश्य भी भिक्षुओं को सदाचार एवं अनुशासन का पाठ पढ़ाना ही है।

परिवार

विनयपिटक का अन्तिम भाग परिवार है। इस ग्रंथ की अन्तिम गाथाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसे दीप नामक महामति भिक्षु ने सिंहल में लिपिबद्ध कराया था। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना काफी परवर्ती है।

यह इक्कीस परिच्छेदों में विभक्त है। इन परिच्छेदों में न तो विषय-विभाजन की दृष्टि से कोई क्रम है और न ही एकरूपता। प्रत्येक परिच्छेद स्वतंत्र है तथा विनय के एक पक्ष को लेकर लिखा गया है। लेखक का प्रयास विनय को समझाने का ही रहा है। कौन-सा शिक्षापद कहाँ कहा गया है? संघ के झगड़े किस प्रकार के होते हैं? उपोसथ क्या है? भिक्षु को कितनी सामग्री वांछनीय है? किन दस बातों को ध्यान में रखकर बुद्धदेव ने शिक्षा पदों को प्रज्ञप्त किया है? आदि अनेक समस्याएं उठाई गयी हैं और उनके विनयानुरूप समाधान प्रस्तुत किये गये हैं। ग्रंथ की विशेषता यह है कि प्रश्नोत्तर शैली में सम्पूर्ण विनय का संक्षेप में पारायण हो जाता है। विषय या दृष्टिकोण में कोई नवीनता न होने पर भी भिक्षुओं तथा अध्येताओं के लिए इसका महत्त्व असन्दिग्ध है।

अभिधम्मपिटक

जो धर्म सुत्तपिटक में जनसाधारण के लिए अभ्युदयवर्द्धक उपदेश रूप हैं और विनयपिटक में भिक्षु-भिक्षुणियों के संयम और अनुशासन के लिए आज्ञा रूप है, वही अभिधम्मपिटक में मनीषियों के लिए तत्त्व रूप हैं। प्रथम एवं द्वितीय संगीतियों के समय इसका संगायन नहीं हुआ था। अतः यह पहले दोनों पिटकों से बाद में अस्तित्व में आया। इसको एक अन्य ढंग से भी समझा जा सकता है। द्वितीय संगीति के पश्चात् सर्वास्तिवाद, जो स्थविरवाद की ही एक शाखा है, उससे पृथक् हो गया। सर्वास्तिवादियों ने अपने पिटकों को संस्कृत में लिपिबद्ध किया। दोनों संप्रदायों के सुत्तपिटक तथा विनयपिटक में कोई अन्तर नहीं है, लेकिन अभिधम्मपिटक के ग्रन्थ ही पृथक-पृथक हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यह द्वितीय संगीति तक अस्तित्व में नहीं आया था। अभिधम्म का मूल मातिकाओं (मात्रिकाओं) को माना जाता है जो निश्चय ही प्राचीन एवं प्रामाणिक हैं।

परम्परा से अभिधम्मपिटक में जिन सात ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, उनका 'मिलिन्द प्रश्न' (ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी) में उल्लिखित क्रम इस प्रकार हैं--

१. धम्मसंगणि २. विभंग

३. धातुकथा ४. पुग्गलपञ्ञति

५. कथावस्तु ६. यमक

७. पट्ठान

१. धम्मसंगणि

यह अभिधम्मपिटक का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रंथ है। प्राचीन परम्परा में जो सुत्तधर, विनयधर एवं मातिकाधर का उल्लेख मिलता है वह मातिका इस ग्रंथ में संगृहीत मातिका ही है। इस ग्रंथ में गणनात्मक एवं प्रश्नात्मक शैली को आधार बनाकर, मानसिक एवं भौतिक अवस्थाओं का संकलन एवं विश्लेषण किया गया है। इसके संकलन एवं विश्लेषण की विशेषता यह है कि इसमें शुभ (कुशल), अशुभ (अकुशल) एवं इनसे व्यतिरिक्त अव्याख्येत (अव्याकृत) कर्मों एवं उनके विपाकों की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। अतः इसे 'बुद्ध नीतिवाद की मनोवैज्ञानिक व्याख्या या बौद्ध मनोविज्ञान की नीतिवादी व्याख्या' कहा जा सकता है। धम्मसंगणि के प्रारम्भ में मातिका (विषयसूची) दी गयी है जो दुरूह विषय को समझने में काफी सहायक सिद्ध होती है। यह ऐसी सूची है जो इस ग्रंथ में विश्लेषित सभी विषयों के शीर्षकों का उल्लेख कर देती है। इस मातिका में कुल १२२ वर्गीकरण हैं जिसमें २२ को तीन-तीन शीर्षकों में, विभाजित करने के कारण तिक कहा जाता है और १०० दो-दो शीर्षकों में विभाजित होने से दुक कहलाते हैं। यहां सभी तिक एवं दुकों का उल्लेख अनावश्यक होगा, तथापि दो-दो का उपयुक्त उल्लेख काफी है--

तिक- १. (अ) जो धम्म कुशल हैं (कुसला)

(आ) जो धम्म कुशल नहीं हैं (अकुसला)

(इ) जो धम्म अव्याकृत हैं (अव्याकता)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. (अ) जो धम्म सुखकी वेदना से युक्त हैं (सुखवेदनायसम्पयुत्ता)

(आ) जो धम्म दुःख की वेदना से युक्त हैं (दुक्ख वेदनाय सम्पयुत्ता)

(इ) जो धम्म न सुख, न दुःख की वेदना से युक्त हैं (अदुक्खमसुखाय वेदनाय सम्पयुत्ता)

दुक- १. (अ) जो दूसरों के हेतु हैं (हेतु)

(आ) जो दूसरों के हेतु नहीं हैं (अहेतु)

२. (अ) जो हेतुओं से युक्त हैं (सहेतुका)

(आ) जो हेतुओं से युक्त नहीं हैं (अहेतुका)

३. (अ) जो हेतुसंलग्न हैं (हेतु सम्पयुत्ता)

(आ) जो हेतुसंलग्न नहीं हैं (हेतु विपयुत्ता)

उक्त १२२ वर्गीकरणों में जगत् की सभी मानसिक एवं भौतिक धम्मों (कर्मों) का विश्लेषण किया गया है। वस्तुतः उक्त वर्गीकरणों में प्रथम तिक (कुशल, अकुशल एवं अव्याकृत) ही नैतिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं इसलिए धम्मसंगणि में इसी की विशेष व्याख्या की गयी है, शेष १२१ के विश्लेषण को प्रश्नोत्तर रूप में अतिसंक्षेप में कह दिया गया है। इस प्रकार धम्मसंगणि का मुख्य विषय है धम्मों की कुशल, अकुशल एवं अव्याकृत रूप में व्याख्या करना।

धम्मसंगणि की वस्तु चार काण्डों में विभक्त है-(१) चित्तुप्पाद कण्ड, (२) रूपकण्ड, (३) निक्खेपकण्ड, और (४) अत्थुद्धार कण्ड। इनमें से प्रथम काण्ड में कुशल, अकुशल और अंशतः अव्याकृत की विवेचना की गयी है और द्वितीय काण्ड में अव्याकृत के शेष विवेचन को पूर्ण किया गया है। तृतीय एवं चतुर्थ काण्ड में इनका संक्षेप किया गया है तथा शेष १२१ वर्गीकरणों के स्वरूप को प्रश्नोत्तर रूप में समझाया गया है। अभिधम्म का विषय अत्यन्त दुरूह है। पालि के सभी विद्वानों ने इसे स्वीकार किया है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार, "अभिधम्म तो भारी रेगिस्तान सा ज्ञात होता है।"[1] डा० भरतसिंह उपाध्याय इस दुरूहता को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं-"निस्सन्देह 'धम्मसंगणि'

(१) राहुल साँकृत्यायन : पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १६८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की गणनात्मक शैली इतनी विचित्र है कि साहित्य का सामान्य विद्यार्थी उसमें रुचि नहीं ले सकता। उसमें तो कर्म एवं अकर्म के स्वरूप का गवेषी और उसके तत्त्वों को गूढ़ चेतना की तह और उसकी सारी भूमियों में ढूंढने को उद्यत कोई साहित्यिक भिक्षु ही प्रवेश कर सकता है।"[1]

२. विभंग

यह अभिधम्मपिटक का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। विभंग का अर्थ है व्याख्या। यहां स्कन्धों की व्याख्या की गयी है। अतः इसे विभंग कहा जाता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार आत्मा पञ्चस्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) का समन्वित रूप ही है। इन पञ्चस्कन्धों की व्याख्या ही विभंग कहलाती है।

विषयवस्तु की दृष्टि से विभंग को धम्मसंगणि का पूरक ग्रंथ कहा जा सकता है। धम्मसंगणि का मूल प्रतिपाद्य धम्मों का तिकों एवं दुकों के रूप में विश्लेषण करना ही है। इसमें गौण रूप से यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि किन-किन धम्मों का स्कन्ध, आयतन और धातु आदि से संबंध है, लेकिन यह प्रासंगिक तथा धम्मों के स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए ही है, जबकि विभंग में धम्मों का स्कन्ध, आयतन, धातु आदि के रूप में संश्लिष्ट वर्गीकरण प्रस्तुत करते हुए स्कन्ध आदि के स्वरूप की मीमांसा की गयी है। धम्मसंगणि की तिकों एवं दुकों वाली वर्गीकरण-प्रणाली (मातिका) को यथावत् स्वीकार करने के कारण विभंग को उसका पूरक तथा उस पर अवलम्बित ग्रंथ माना जाता है।

विभंग की विषयवस्तु अठारह विभंगों में विभक्त है। ये सभी विभंग स्वतंत्र एवं पूर्ण हैं। इनके नामों से उनका विषय स्पष्ट हो जाता है। ये अठारह विभंग इस प्रकार हैं--

(१)	स्कन्ध विभंग,	(२)	आयतन विभंग,
(३)	धातुविभंग,	(४)	सत्यविभंग,
(५)	इन्द्रियविभंग	(६)	प्रत्ययाकार विभंग,
(७)	स्मृतिप्रस्थान विभंग	(८)	सम्यक् प्रधानविभंग,
(९)	ऋद्धिपाद विभंग	(१०)	बोध्यंग विभंग,
(११)	मार्गविभंग	(१२)	ध्यानविभंग,

(१) डा० भरतसिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४८८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(१३) अपरिमाण विभंग, (१४) शिक्षापद विभंग
(१५) प्रतिसंविद् विभंग, (१६) ज्ञान विभंग
(१७) क्षुद्रक विभंग, (१८) धर्महृदय विभंग

उक्त अठारह विभंगों में प्रायः प्रत्येक विभंग के तीन अंग हैं- (क) सुत्तन्त भाजनीय, (ख) अभिधम्मभाजनीय, और (ग) पञ्हपुच्छक। सुत्तन्तभाजनीय में बताया गया है कि विभंग का विषय कितना और किस रूप में सुत्तपिटक में उपलब्ध होता है। अभिधम्मभाजनीय में मातिका के अनुसार विषय की विवेचना की गयी है। पञ्हपुच्छक में तिक-दुक आदि शीर्षकों के रूप में प्रश्नोत्तर शैली में निरूपित विषय का विवेचन एवं सारसंकलन है।

३. धातुकथा

विभंग के प्रथम तीन प्रकरण-स्कन्ध, आयतन एवं धातु-ही धातुकथा के विषय हैं। यहां इन पर विस्तृत विचार किया गया है। स्कन्ध, आयतन एवं धातु तीनों धातुकथा के विषय होने से इस ग्रंथ का नाम निर्दोष नहीं कहा जा सकता जैसा कि बौद्धाचार्य ज्ञानातिलोक ने स्वीकारा है। इसका नाम 'खन्ध-आयतन-धातुकथा' होना चाहिए था।

धातुकथा में स्कन्ध, आयतन और धातुओं का धम्मों से संबंध प्रदर्शित किया गया है। इन धम्मों की संख्या मातिका के अनुसार ११४ है। ये धम्म इस प्रकार हैं--पाँच स्कन्ध, बारह आयतन, अठारह धातुएं, चार सत्य, बाईस इन्द्रिय, चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, चार ध्यान, चार अपरिणाम, पाँच इन्द्रिय, पाँच बल, सात सम्बोध्यंग, चार आर्यमार्ग के अंग, प्रतीत्यसमुत्पाद, स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, चित्त, अधिमोक्ष तथा मनसिकार। इस ग्रंथ के चौदह अध्यायों में प्रश्नोत्तर शैली में इसी का विवेचन किया गया है कि किन-किन स्कन्ध, आयतन अथवा धातु में कौन-कौन धर्म संगृहीत, असंगृहीत, सम्प्रयुक्त या विप्रयुक्त हैं? ग्रंथ के स्वरूप को समझने के लिए दो-चार प्रश्नोत्तर उद्धृत करना उपयुक्त होगा--

१. कितने स्कन्धों, आयनों एवं धातुओं में रूपस्कन्ध सम्मिलित हैं? एक स्कन्ध, ग्यारह आयतनों एवं ग्यारह धातुओं में रूपस्कन्ध सम्मिलित हैं।

२. कितने स्कन्धों, आयतनों एवं धातुओं में रूपस्कन्ध संयुक्त हैं?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किसी के साथ भी नहीं।

३. कितने स्कन्धों, आयतनों एवं धातुओं में वे धर्म सम्मिलित हैं जो वेदना स्कन्ध, संज्ञा स्कन्ध और संस्कार से संयुक्त हैं?

तीन स्कन्धों, दो आयतनों एवं आठ धातुओं में वे सम्मिलित हैं।

४. कितने स्कन्धों, आयतनों एवं धातुओं में वे धर्म सम्मिलित हैं जो रूपस्कन्ध से विप्रयुक्त हैं?

एक स्कन्ध, दस आयतनों और दस धातुओं में वे सम्मिलित नहीं हैं।

४. पुग्गलपञ्ञति (पुद्‌गलप्रज्ञप्ति)

पुग्गल (पुद्‌गल) का अर्थ है व्यक्ति और पञ्जति (प्रज्ञप्ति) का पहचान। विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की पहचान करना ही इस ग्रंथ का विषय है। यह ग्रंथ दस अध्यायों में विभक्त है जिनमें क्रमशः एक, दो, तीन से लेकर दस प्रकार के मानवों की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इस प्रकार इसमें भी अंगुत्तर निकाय के समान गणनात्मक शैली का अवलम्बन किया गया है, सर्वत्र प्रश्नोत्तर शैली अपनायी गयी है--

दो प्रकार के व्यक्ति

१. कौन सा व्यक्ति भीतरी संयोजनों से बंधा हुआ है?

जिसके प्रथम पांच संयोजन अभी नष्ट नहीं हुए हैं, वही व्यक्ति भीतरी संयोजनों से बंधा हुआ है।

२. कौन सा व्यक्ति बाहरी संयोजनों से बंधा हुआ है?

जिसके अन्तिम पांच संयोजन अभी नष्ट नहीं हुए हैं, वही व्यक्ति बाहरी संयोजनों में बंधा हुआ है।

तीन प्रकार के व्यक्ति

१. कौन सा व्यक्ति कामवासना संबंधी आसक्ति और भववासनाविषयक आसक्ति से विमुक्त नहीं है?

स्रोतापन्न तथा सकृदागामी-ये व्यक्ति कामवासना संबंधी आसक्ति और भववासनाविषयक आसक्ति से विमुक्त नहीं हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. कौन सा व्यक्ति कामवासना संबंधी आसक्ति से विमुक्त है, लेकिन भववासनाविषयक आसक्ति से विमुक्त नहीं है?

अनागामी वह व्यक्ति है जो कामवासना सम्बन्धी आसक्ति से मुक्त है, लेकिन भववासनाविषयक आसक्ति से विमुक्त नहीं है।

३. कौन सा व्याक्ति कामवासनासंबंधी तथा भववासनाविषयक, दोनों प्रकार की आसक्तियों से विमुक्त हैं?

अर्हत् वह व्यक्ति है जो कामवासनासंबंधी तथा भववासनाविषयक, दोनों प्रकार की आसक्तियों से विमुक्त है।

चार प्रकार के व्यक्ति

१. कौन सा व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता है, बरसता नहीं? जो बहुत कहता है, पर करता कुछ नहीं, वही व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता है, पर बरसता नहीं।

२. कौन सा व्यक्ति उस बादल के समान है जो बरसता है पर गरजता नहीं? जो करता है कहता नहीं-वही व्यक्ति उस बादल के समान है जो बरसता है पर गरजता नहीं।

३. कौन सा व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता भी है और बरसता भी है?

जो कहता भी है और करता भी है-वही व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता भी है और बरसता भी है।

४. कौन सा व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता भी नहीं है और बरसता भी नहीं है?

जो व्यक्ति कुछ कहता भी नहीं है और करता भी नहीं है-वही व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता भी नहीं है और बरसता भी नहीं है।

इसी प्रकार सभी अध्यायों में वर्गीकरण के आधार पर व्यक्ति-स्वभाव का सुंदर विश्लेषण किया गया है। विषय-विश्लेषण में अनेक रम्य उपमाएं प्रयुक्त हुई हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५. कथावस्तु (कथावस्तु)

बौद्ध मतावलम्बियों में मतभेद तो प्रारम्भ से ही थे, जो स्वयं बुद्धजी के जीवनकाल में भी प्रकट होते रहते थे, लेकिन अशोक के समय तक बौद्धधर्म अठारह सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। ऐसी स्थिति में बुद्ध का वास्तविक मन्तव्य लगाने में कठिनाई होने लगी। अशोक ने तृतीय संगीति का आयोजन कराया, जिसका उद्देश्य बुद्ध के वास्तविक वचनों को स्पष्ट करना ही था। इस संगीति के अध्यक्ष मोग्गलिपुत्र तिस्स थे। महास्थविर तिस्स ने 'कथावत्थु' शीर्षक रचना में स्थविरवादी सम्प्रदाय को मूल बुद्धधर्म माना और शेष सत्रह सम्प्रदायों के दार्शनिक सिद्धान्तों का स्थविरवादी दृष्टिकोण से खण्डन किया। इस ग्रंथ में इन सम्प्रदायों का नामोल्लेख नहीं मिलता, केवल उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का खण्डन है। अतः इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि ये दार्शनिक सिद्धान्त किन-किन सम्प्रदायों के थे। यह कार्य बुद्धघोष (पांचवी शताब्दी) की अट्ठकथा पूर्ण करती है, लेकिन मूलग्रंथ और अट्ठकथा के मध्य आठ सौ वर्ष का अन्तराल अनेक शंकाओं को जन्म देता है।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का मत है कि कथावत्थु में जिन सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है उनमें कई ऐसे हैं जो अशोक के बाद अस्तित्व में आये। उन्होंने अंधक, अपरशैलीय, पूर्वशैलीय, राजगिरिक, सिद्धार्थक, वैपुल्य, अत्तरान्धक तथा हेतुवादी को परवर्ती माना है। इस प्रकार वे परोक्षतः यही स्वीकारते हैं कि कथावत्थु में बाद में भी सामग्री जोड़ी जाती रही है। डा० भरतसिंह उपाध्याय का मत है कि अशोक काल में वे व्यवहारतः उत्पन्न हो चुके हों तथा उन्हें साम्प्रदायिक मान्यता बाद में मिली हो। वे कथावत्थु को निश्चयतः अशोककालीन रचना मानते हैं। डा० उपाध्याय का मत सम्भावना पर आधारित है, तर्क पर नहीं। अतः राहुल जी का मत ही अधिक ग्राह्य प्रतीत होता है।

कथावत्थु में बौद्धधर्म के सत्रह संप्रदायों के दो सौ सोलह सिद्धान्तों का तेईस अध्यायों में खण्डन किया गया है। पहले किसी सिद्धान्त को पूर्वपक्ष के रूप में रखा गया है, तदुपरान्त उसका स्थविरवादी दृष्टिकोण से खण्डन किया गया है। इसके अनेक समाधान दार्शनिक दृष्टि से नितान्त महत्त्वपूर्ण हैं तथा उनके समझने से बुद्ध-धर्म के वास्तविक आशय को समझा जा सकता है। ग्रंथ के स्वरूप को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्पष्ट करने के लिए यहां कुछ प्रश्नोत्तर संक्षेप में उद्धृत किये जा रहे हैं--

१. क्या व्यक्ति संसार में रहते हुए राग-द्वेष से मुक्त हो सकता है?

सम्मितियों का विश्वास था कि हो सकता है, लेकिन स्थविरवादी परम्परा इसे स्वीकार नहीं करती। उनके अनुसार राग-द्वेष का पूर्ण निरोध भिक्षुजीवन में ही संभव है।

२. क्या गृहस्थ भी अर्हत् बन सकता है?

उत्तरापथकों का विश्वास था कि बन सकता है। स्थविरवादी परम्परा इसे स्वीकार नहीं करती। उनके मतानुसार अर्हत् पद प्राप्त होने पर मनुष्य गृहस्थ में नहीं रह सकता।

३. क्या यहां का दिया हुआ दान परलोक में पितरों द्वारा उपभोग किया जा सकता है?

राजगिरिक और सिद्धार्थिक भिक्षुओं का विश्वास था कि किया जा सकता है। स्थविरवादी दृष्टिकोण के अनुसार भोजनादि का साक्षात् उपभोग तो उनके लिए सम्भव नहीं है, लेकिन यहां दान करने से उनके मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यहां का दान उनके कल्याण में सक्षम है।

४. क्या व्यक्ति का भाग्य पूर्वनियत है?

पूर्वशैलीय और अपरशैलीय भिक्षुओं का ऐसा ही विश्वास था। स्थविरवादी परम्परा इसका खण्डन करती है और भाग्य को कर्मजन्य स्वीकारती है।

६. यमक

यमक का अर्थ है जोड़ा। इस ग्रंथ में आद्योपान्त अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रश्नों के जोड़े बनाए गये हैं इसलिए इसे यमक नाम दिया जाता है। इस ग्रंथ का मुख्य विषय है अभिधम्म की शब्दावली की सुनिश्चित व्याख्या करना, अतः इसे 'अभिधम्म का पारिभाषिक कोश' कहा जा सकता है।

'यमक' दस अध्यायों में विभक्त है। अध्यायों के नामों से ही उनके विषय स्पष्ट हो जाते हैं। ये दस अध्याय इस प्रकार हैं--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. मूल यमक-कुशल, अकुशल एवं व्याकृत धर्म।

२. स्कन्ध यमक-पञ्चस्कन्ध-रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान।

३. आयतन यमक-अठारह आयतन।

४. धातु यमक-अठारह धातुएँ।

५. सत्य यमक-चार आर्यसत्य।

६. संस्कार यमक-कायिक, वाचिक एवं मानसिक संस्कार।

७. अनुशय यमक-सात अनुशय।

८. चित्त यमक-चित्तविषयक प्रश्नोत्तर।

९. धर्म यमक-धम्मविषयक प्रश्नोत्तर।

१०. इन्द्रिय यमक-बाईस इन्द्रिय।

यह सम्पूर्ण ग्रंथ प्रश्नयुगल के रूप में है जिसमें अनुकूल एवं प्रतिकूल स्वरूपों को रखा गया है। कुछ प्रश्न-युगल प्रस्तुत करने से ग्रंथ का स्वरूप स्पष्ट हो जायगा।

१. (क) क्या सभी कुशल-धर्म कुशल-मूल हैं?

(ख) क्या सभी कुशल-मूल कुशल-धर्म हैं?

२. (क) क्या सभी रूप, रूप-स्कन्ध हैं?

(ख) क्या सभी रूप-स्कन्ध रूप हैं?

३. (क) क्या वेदना स्कन्ध उनको भी उत्पन्न करता है जिनको रूप-स्कन्ध उत्पन्न करता है?

(ख) क्या रूप-स्कन्ध उनको भी उत्पन्न करता है जिनको वेदना स्कन्ध उत्पन्न करता है?

४. (क) क्या वेदना स्कन्ध उस जीवनभूमि में निरुद्ध हो जाता है जिस भूमि में रूप-स्कन्ध उत्पन्न होता है?

(ख) क्या रूप-स्कन्ध उस जीवनभूमि में निरुद्ध हो जाता है जिस भूमि में वेदना स्कन्ध उत्पन्न होता है?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७. पट्ठान (प्रस्थान)

यह ग्रंथ शैली की दृष्टि से अत्यन्त दुरूह तथा आकार की दृष्टि से अत्यन्त विशाल है। महास्थविर ज्ञानातिलोक का यह अनुमान सत्य ही है कि असंक्षिप्त रूप में यह ग्रंथ चौदह हजार पृष्ठ से कम न होता। सम्भवतः इसीलिए इसे 'महाप्पकरण' (महाप्रकरण) नाम दिया जाता है। इसका प्रमुख विषय प्रतीत्यसमुत्पाद का विशद विश्लेषण है। सुत्तपिटक में इसके आधारभूत बारह अंगों की व्याख्या की गयी है जबकि इसमें अंगों की व्याख्या न करके, उन प्रत्ययों पर बल दिया गया है जिसके आश्रय से ये अंग उत्पन्न तथा निरुद्ध होते हैं। यह ग्रंथ चार विशाल भागों में विभक्त है--

(क) **अनुलोम पट्ठान**-इस भाग में धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-संबंधों का विधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। स्यामी संस्करण में यह भाग ही तीन जिल्दों में प्रकाशित हुआ है।

(ख) **पच्चनिय पट्ठान**-इसमें धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-संबंधों का विधानात्मक तथा निषेधात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(ग) **अनुलोम पच्चनिय पट्ठान**-इसमें धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-संबंधों का विधानात्मक तथा निषेधात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(घ) **पच्चनिय अनुलोम पट्ठान**-इसमें धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-संबंधों का निषेधात्मक तथा विधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

उक्त चारों भागों में से प्रत्येक अध्ययन-क्रम से छः भागों में विभाजित किया गया है : (क) तिक पट्ठान-बाइस तिकों के आधार पर धम्मों के साथ प्रत्ययों का संबंधनिरूपण, (ख) दुक पट्ठान-सौ दुकों के आधार पर धम्मों के साथ प्रत्ययों का संबंधनिरूपण, (ग) दुकतिक पट्ठान-दुकों एवं तिकों को लेकर पूर्ववत् व्याख्या, (ङ) तिकतिक पट्ठान-परस्पर मिश्रित तिकों को लेकर धम्मों की पूर्ववत् व्याख्या, (च) दुकदुक पट्ठान-परस्पर मिश्रित दुकों को लेकर धम्मों की पूर्ववत् व्याख्या। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ग्रंथ चौबीस भागों में बंटा हुआ है जिनमें प्रत्येक पट्ठान (प्रत्यय-स्थान) कहलाता है।

ग्रंथ के प्रारम्भ में 'पच्चयनिद्देस' (प्रत्ययनिर्देश) नाम से भूमिका दी गयी है। यह भूमिका भी इतनी विशाल है कि स्यामी संस्करण की एक पूरी जिल्द में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकाशित हुई है। इस भूमिका में चौबीस प्रत्ययों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है और इन्हीं के आधार पर धम्मों का उदय एवं अस्त दिखाया गया है। ये चौबीस प्रत्यय निम्नलिखित हैं--

१. हेतु प्रत्यय	२. आलम्बन प्रत्यय	३. अधिपति प्रत्यय
४. अनन्त प्रत्यय	५. समनन्तर प्रत्यय	६. सहजात प्रत्यय
७. अन्योन्य प्रत्यय	८. निःश्रय प्रत्यय	९. उपनिःश्रय प्रत्यय
१०. पूर्वजात प्रत्यय	११. पश्चात् जात प्रत्यय	१२. आसेवन प्रत्यय
१३. कर्म प्रत्यय	१४. विपाक प्रत्यय	१५. आहार प्रत्यय
१६. इन्द्रिय प्रत्यय	१७. ध्यान प्रत्यय	१८. मार्ग प्रत्यय
१९. सम्प्रयुक्त प्रत्यय	२०. विप्रयुक्त प्रत्यय	२१. अस्ति प्रत्यय
२२. नास्ति प्रत्यय	२३. विगत प्रत्यय	२४. अविगत प्रत्यय

इस महाग्रंथ के चार भागों की तो बात ही क्या, भूमिका के चौबीस प्रत्ययों का तात्पर्य तथा परस्पर आश्रय लेकर एक या अनेक धम्मों की उत्पत्ति और निरोध की संक्षिप्त व्याख्या वाञ्छनीय होने पर भी विस्तार-भय से छोड़ी जा रही है। यहां यही पर्याप्त होगा कि एक या अनेक धम्मों की उत्पत्ति तथा निरोध, दूसरे धम्म या धम्मों की उत्पत्ति तथा निरोध पर आंधारित होते हैं। इसी आधार पर आधार संबंध को प्रत्यय कहा जाता है और यहां प्रत्ययों की विस्तृत मीमांसा करते हुए भवचक्र की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

पालि-त्रिपिटक और मूल बुद्धवचन

यह सर्वविदित तथ्य है कि अशोक के समय तक बौद्धधर्म अठारह सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था। इनमें प्रायः प्रत्येक के अपने त्रिपिटक थे। चौदहवीं शताब्दी के लामा तारानाथ का मत है कि सर्वस्तिवादी सम्प्रदाय का त्रिपिटक संस्कृत में, महासंधिक का प्राकृत में, स्थविरवाद का पैशाची में तथा महासम्मितिय का अपभ्रंश में था। आज केवल पालि त्रिपिटक तथा सर्वास्तिवाद का त्रिपिटक (मूल संस्कृत त्रिपिटक के चीनी एवं तिब्बती अनुवाद मात्र) उपलब्ध होते हैं। शेष सभी काल के गर्त में समा गये। इनमें सर्वास्तिवादी त्रिपिटक निश्चय ही परवर्ती है। इसमें बुद्ध को लोकोत्तर एवं दैवी रूप दे दिया गया है जहाँ बुद्ध सर्वशक्तिमान्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा सर्वज्ञ ईश्वरीय अंश के रूप हैं। वह नानाविध अतिशयोक्तियों एवं कल्पनाओं से युक्त हैं। पालि त्रिपिटक में यथार्थ एवं विवेक की प्रधानता है। वहां बुद्ध केवल उपदेशक एवं पथप्रदर्शक के रूप में सामने आते हैं। उनमें मानवीय पक्ष भी दिखता है जैसे अपने संघ से खिन्न होकर चुपचाप एकान्तवास भी कर लेते हैं, गांव में भिक्षा न मिलने पर अपने भिक्षापात्र को लेकर भी वर्णित हैं और वृद्धावस्था में रोगादि से पीड़ित भी होते हैं, जबकि सर्वास्तिवादी त्रिपिटक में वे सर्वत्र सुर, नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि से सम्मानित एवं पूजित दिखाये गये हैं। अतः स्पष्ट है कि सर्वास्तिवादी त्रिपिटक में बुद्ध के प्रभाव की महानता के लिए अनेक प्रकार की कल्पनाओं एवं अतिरंजनाओं से कार्य लिया गया है। ऐतिहासिक सन्दर्भ भी इसी की पुष्टि करते हैं।

पालि त्रिपिटक की प्रामाणिकता पर विचार करते समय यह ध्यान रंखना चाहिए कि कुछ अंशों के प्रक्षिप्त होने की बात प्राचीन आचार्यों ने भी स्वीकार की है। मातिकाओं के अतिरिक्त संपूर्ण अभिधम्म बाद में रचा गया है। प्रथम एवं द्वितीय संगीति के समय इसका संगायन नहीं हुआ, केवल विनय एवं धम्म का ही हुआ था। बुद्धघोष के समय (पांचवीं शताब्दी) में भी इसमें संदेह किया जाता था। इसके एक ग्रंथ 'कथावस्तु' के लेखक तो स्पष्टतः अशोक के धर्मगुरु हैं। हां, इतना अवश्य स्वीकार्य है कि इसकी रचना बुद्ध के सिद्धान्तों के आधार पर तथा विनय एवं सुत्त पिटक के सन्दर्भों में ही हुई है।

पालि विनय पिटक में चार पाराजिक, तेरह संघादिसेस, दो अनियतधम्म, तीस निस्सगिय पाचित्तिय, बानवें पाचित्तय, चार पाटिदेसनीय, पचहत्तर सेखिय और सात अधिकरण समथ-इस प्रकार कुल दो सौ सत्ताईस अपराध तथा उनके दण्ड विधान का विवरण है। भगवान् बुद्ध ने सारिपुत्र से स्पष्ट कहा था कि जब तक संघ में चित्तमल उत्पन्न नहीं होते, शास्ता शिष्यों के लिए शिक्षापद का विधान नहीं करते, प्रतिमोक्ष का उपदेश नहीं देते। एक स्थल पर वे अपने शिष्यों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं-"उन भिक्षुओं को मात्र स्मरण दिला देना मेरा काम था। उन्हें अनुशासन की आवश्यकता मुझे नहीं थी।" जब अनुशासन की अवश्यकता नहीं थी और बिना आवश्यकता के वे शिक्षापदों का विधान नहीं करते थे, तो इतने शिक्षापदों का विवरण तर्कसंगत नहीं जान पड़ता। वैसे भी मानवजीवन को स्वतंत्रता प्रदान करने वाले उदारहृदय शास्ता से इतने बंधनों का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विधान स्वाभाविक नहीं जान पड़ता। निश्चय ही इनमें कुछ परिवर्द्धित हैं जिन दस बातों को दृष्टि में रखकर बुद्धजी ने शिक्षापदों का विधान किया है उन्हीं को ध्यान में रखकर परवर्ती भिक्षुओं ने भी आवश्यकतानुसार संघ की रक्षा एवं उन्नति के लिए नियमों का निर्माण कर डाला है। साहित्यिक दृष्टि से विनयपिटक का महत्त्व बहुत अधिक नहीं है इसलिए इसके प्रक्षेपों की चर्चा भी युक्तिसंगत नहीं।

जहां तक सुत्तपिटक की प्रामाणिकता का प्रश्न है इसमें खुद्दकनिकाय सर्वाधिक विवाद का विषय है। प्रथम संगीति के समय भिक्षुओं ने बुद्धवंस, चरियापिटक तथा अपदान को अप्रामाणिक माना था। द्वितीय संगीति के समय पटिसम्भिदामग्ग, निद्देस और जातक के कुछ अंशों को प्रामाणिक नहीं माना गया। थाइलैण्ड की बौद्धपरम्परा विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, अपदान, बुद्धवंस और चारियापिटक को प्रामाणिक नहीं मानती। यदि उक्त सभी को निकाल दिया जाए तो भी खुद्दकनिकाय के खुद्दकपाठ, धम्मपद, सुत्तनिपात, उदान तथा इतिवुत्तक पूर्ण प्रामाणिक बुद्धवचन के रूप में परम्परा मान्य रहे हैं। वस्तुतः खुद्दकनिकाय के यही अंश प्राचीन, प्रामाणिक तथा विवेकप्रधान हैं।

सुत्तपिटक के शेष चार निकाय प्रामाणिकता की दृष्टि से अधिक विवादास्पद नहीं हैं। इसके कई सुत्त जैसे घोटकमुखसुत्त, मधुर सुत्त, सुभसुत्त, महावेदल्ल सुत्त, चुल्ल वेदल्ल सुत्त आदि तो स्पष्टतः महात्मा बुद्ध के शिष्यों द्वारा उपदिष्ट हैं। प्रेतों से सम्बद्ध सुत्त जैसे दीघनिकाय का आटानाटिय सुत्त भी स्पष्ट ही परिवर्द्धित है क्योंकि गौतम बुद्ध इस प्रकार की योनियों में विश्वास नहीं करते थे। इनके अतिरिक्त बुद्ध उनके शिष्यों की दिव्यता से सम्बद्ध तथा सुरासुर, स्वर्ग-नरक आदि से सम्बद्ध सुत्तों को प्रक्षिप्त ही माना जा सकता है किन्तु इनकी संख्या अत्यल्प है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुछ अंशों को छोड़कर, सुत्तपिटक के प्रथम चार निकाय तथा खुद्दक निकाय के खुद्दक पाठ, धम्मपद, सुत्तनिपात, उदान तथा इतिवुत्तक ये पांच ग्रंथ लगभग प्रामाणिक हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने मज्झिम निकाय को सबसे अधिक प्रामाणिक माना है। विनयपिटक में बुद्धवचन तथा प्रक्षिप्तांश नीरक्षीरवत् मिले हुए हैं इसलिए प्रक्षिप्त को पृथक् करना न केवल कठिन है, कल्कि साहित्यिक दृष्टि से निरर्थक भी है। अभिधम्म तो मूलतः परवर्ती

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रचना है, लेकिन है बुद्धोपदेशों पर आधारित ही। सम्पूर्ण त्रिपिटक गौतम बुद्ध के मुख से ही निस्सृत है-ऐसा दावा तो न बौद्धाचार्यों का है और न त्रिपिटक का। भदन्त आनन्द कौसल्यायन के शब्दों में-"सारे त्रिपिटक में या नौ अंगों वाले बुद्धवचन में, कितना वास्तव में बुद्ध तथा उनके शिष्यों का उपदेश है और कितना पीछे का भर्ती, कहना कठिन है।" अतः जब हम पालि त्रिपिटक को बुद्धवचन कहते हैं तो इसका अर्थ यही होता है कि इसमें बुद्धकालीन पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में बुद्ध के उपदेश संगृहीत हैं। यद्यपि कुछ उनके प्रधान शिष्यों के तथा कुछ परवर्ती भी हैं लेकिन सभी मिलकर बौद्धधर्म के स्वरूप के उद्घाटन में सहायक होते हैं। डा० भरतसिंह उपाध्याय ने ठीक ही कहा है-"पालि त्रिपिटक के इस गौरवमय अंश के कारण ही हम उसके सारे रूप को भी 'बुद्धवचन' कहते हैं जो यद्यपि अक्षरशः सत्य नहीं है, किन्तु सत्य की गरिमा और अनुभूति से व्याप्त अवश्य है।"[१]

***

(१) डा० भरतसिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १५३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय नवम

पिटकेतर साहित्य

अनुपालि, अनुपिटक या पटिकेतर को प्रारम्भ में ही दो भागों में विभक्त किया गया है-- धार्मिक साहित्य तथा शास्त्रीय साहित्य। यहां इनका इसी क्रम से विवरण दिया जाता है।

धार्मिक साहित्य

इस वर्ग मे वह साहित्य आता है जिसका उपजीव्य त्रिपिटक ही है। नेत्तिप्पकरण, पेटकोपदेस, मिलिन्दपञ्ह के अतिरिक्त अट्ठकथाएं एवं वंस साहित्य को इस वर्ग में परिगणित किया जाता है। नेत्तिप्पकरण, पेटकोपदेस और मिलिन्दपञ्ह उत्तरभारत की गौरवसम्पन्न कृतियां हैं। बर्मा में इन्हें सुत्तपिटक के खुद्दक निकाय के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है। ये सभी ग्रंथ बौद्ध धर्म के उद्घाटक हैं, अतः इन्हें धार्मिक साहित्य माना जाता है।

नेत्तिप्पकरण

'नेत्ति' का अर्थ है पथप्रदर्शिका। यह ग्रंथ बौद्ध धर्म को समझाने के लिए पथप्रदर्शक के समान है। यह ग्रंथ त्रिपिटक के पाठ तथा तात्पर्यविषयक नियमों या युक्तियों का विवेचन प्रस्तुत करता है। वस्तुतः यह त्रिपिटक का निरुक्तिपरक ग्रंथ है। विचारकों ने इसके विषय-विभाजन को अगले पृष्ठ पर दी गयी तालिका के अनुसार प्रस्तुत किया है।

नेत्तिप्पकरण का विषय १६ हार (गुम्फित विषयों), ५ नय (तात्पर्य-निर्णय की युक्तियों) तथा १८ मूलपादों (नैतिक विषयों) का विवेचन करना है। इसमें पहले इनका नामोल्लेख (उद्देस) किया गया है, तदुपरान्त उनकी परिभाषाएं दी गयी हैं और अन्त में उनका विस्तृत विवरण दिया गया है। यह विस्तृत विवेचन चार भागों में विभक्त है-- हारविभंग, हारसम्पात, नयसमुट्ठान तथा सासनपट्ठान।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नेत्तिप्पकरण

- सगंहवार (समस्त ग्रंथ की विषयसूची)
- विभागवार (विषयसूची का वर्गविभाजन)
  - उद्देसवार (विषय वस्तु का संक्षिप्त उल्लेख)
  - निद्देसवार (उद्देस में उल्लिखित विषय की परिभाषाएं)
  - पटिनिद्देसवार (निद्देसवार में परिभाषित विषयों का विस्तृत विवरण)

इस ग्रंथ की न केवल विषयवस्तु, प्रत्युत शैली भी अभिधम्म से विशेषतः प्रभावित जान पड़ती है।

परम्परा से नेत्तिप्पकरण को बुद्ध के प्रधान शिष्य महाकात्यायन की रचना माना जाता है, लेकिन यह संदिग्ध ही है। प्रायः सभी विद्वान् इसे ईस्वी सन् के आसपास की रचना मानते हैं। विचारक इसे किसी कच्चायन नामक अन्य भिक्षु की रचना मानते हैं जिसके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। पांचवीं-छठी शताब्दी में इस पर धम्मपाल ने 'नेत्तिप्पकरणस्स अत्थसंवण्णना' (नेत्तिप्पकरण की अर्थसंवर्णना) नामक अट्ठकथा भी लिखी थी जो इसके महत्त्व की परिचायिका है।

पेटकोपदेस

परम्परा से इस ग्रंथ के रचयिता भी बुद्ध-शिष्य महाकात्यायन माने जाते हैं। इसका रचयिता एवं निर्माणकाल भी 'नेत्तिप्पकरण' के समान ही विवादास्पद है। इसका प्रयोजन त्रिपिटक के विद्यार्थियों को धर्म की शिक्षा देना है। इसकी विषयवस्तु भी 'नेत्तिप्पकरण' के ही समान है लेकिन एक तो यहां विषय-विभाजन चार आर्यसत्यों को दृष्टि में रखकर किया गया है, दूसरे 'नेत्तिप्पकरण' के दुरूहस्थलों की यहां विस्तृत मीमांसा की गयी है। बर्मा में इस ग्रंथ को बहुत सम्मान दिया जाता है। वे इसे सुत्तपिटक के खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं।

मिलिन्दपञ्ह (मिलिन्दप्रश्न)

'मिलिन्दपञ्ह' न केवल बौद्ध धर्म, प्रत्युत दर्शन एवं साहित्य की दृष्टि से भी अत्युत्तम ग्रंथ है। अनुपालि या अनुपिटक में यह ग्रंथ अपना सानी नहीं रखता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाश्चात्य विचारक डा० (श्रीमती) रीज़ डेविड्स ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है--"यह भारतीय गद्य-साहित्य की अत्युत्तम कृत्ति है और साहित्यिक दृष्टि से अपनी श्रेणी की सर्वोत्तम पुस्तक है, जैसी आज तक किसी भी देश में नहीं लिखी गयी होगी।"

इसमें ग्रीक सेनापति मिनाण्डर के प्रश्नों तथा भिक्षु नागसेन के समाधानों का विवरण है। मिलिन्द ग्रीक शब्द मिनाण्डर का भारतीय संस्करण है। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद भारत-विजय के प्रयास में निकला दिमित्रि, अपने देश पर आक्रमण की बात सुनकर, पंजाब का राज्य अपने दामाद तथा सेनापति मिनाण्डर या मिनाण्ड्रोस पर छोड़कर स्वदेश लौट गया था। इस मिनाण्डर के प्रश्नों का नागसेन के उत्तरों सहित विवरण ही इस ग्रंथ में है। इस प्रकार मिलिन्द निश्चयपूर्वक ऐतिहासिक व्यक्ति है। मिलिन्द के प्राप्त सिक्कों पर धर्मचक्र का अंकित होना उसके बौद्धमतावलम्बी होने का प्रमाण है। इस मिलिन्द का समय क्या था--इस पर विद्वानों में कुछ मतभेद है। अधिकांश विद्वानों ने मिलिन्द का शासनकाल ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी ही माना है। 'मिलिन्दपञ्ह' में भी बुद्धपरिनिर्वाण के पांच सौ वर्ष बाद मिलिन्द एवं नागसेन का समय माना गया है अतः यह निश्चित है कि यह कृति अपने मूलरूप में ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी की रचना है।

'मिलिन्दपञ्ह' में सात अध्याय हैं। इसके चीनी अनुवाद में केवल प्रथम तीन अध्याय ही उपलब्ध होते हैं। इसी आधार पर कुछ पाश्चात्य विचारकों ने कल्पना की है कि मूल 'मिलिन्दपञ्ह' में तीन ही अध्याय रहे होंगे, बाद के चार अध्याय परिवर्द्धित हैं। तीसरे अध्याय की अंतिम पंक्ति 'मिलिन्द के प्रश्नों के उत्तर समाप्त हुए' को वे अपने मत के समर्थन में प्रस्तुत करते हैं। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि आचार्य बुद्धघोष ने जिन अवतरणों को उद्धृत किया है वे भी प्रथम तीन से ही हैं। किन्तु चीनी संस्करण में तीन ही अध्याय उपलब्ध होने से शेष को अप्रामाणिक या परवर्ती तो नहीं कहा जा सकता। संभव है चीनी अनुवादक को शेष उपलब्ध न रहे हों या किसी दुर्घटनावश वह अपना कार्य पूर्ण न कर सका हो अथवा शेष चार अध्यायों को जानबूझकर छोड़ दिया हो। चीनी भाषा में दो अन्य अनुवाद भी हुए थे जो आज अनुपलब्ध हैं। अतः चीनी भाषा में केवल तीन अध्याय उपलब्ध होने से शेष कृति को अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'मिलिन्दपञ्ह' की विषयवस्तु सात अध्यायों में विभक्त है-(क) बाहिरकथा, (ख) लक्खणपञ्हो, (ग) विमतिच्छेपनपञ्हो, (घ) मेण्डकपञ्हो, (ङ) अनुमानपञ्हो, (च) धुतंगकथा, और (छ) ओपम्मकथापञ्हं। प्रथम अध्याय में कथा की भूमिका है। नागसेन और मिलिन्द के पूर्व तथा वर्तमान जन्मों की कथा और मिलिन्द का नागसेन के पास जाना वर्णित हैं। द्वितीय अध्याय में अनात्मवाद की उपमापूर्वक सुंदर व्याख्या की गयी है। तृतीय अध्याय में अनात्मवाद के साथ पूनर्जन्म की संगति बिठाई गयी है। इसी अध्याय के अन्त में मिलिन्द घर लौट जाता है। परवर्ती अध्यायों में उसका बार-बार आना तथा शंका-समाधान करना वर्णित है। चतुर्थ अध्याय में मिलिन्द त्रिपिटक की परस्पर विरुद्ध बातों को प्रस्तुत करता है और स्थविर नागसेन बड़ी सावधानी से उसका समाधान करते हैं। पञ्चम अध्याय में मिलिन्द पूछता है कि जब आपने और आपके गुरुओं ने गौतम बुद्ध को देखा ही नहीं है तो उन्हें अस्तित्वशून्य क्यों न मान लिया जाए। इस पर नागसेन धर्म को ही प्रमाण मानते हुए गौतम बुद्ध का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। षष्ठ अध्याय में मिलिन्द के यह प्रश्न करने पर कि क्या गृहस्थ छोड़े बिना निर्वाण पद प्राप्त नहीं हो सकता, भदन्त नागसेन तेरह अवधूत नियमों की विवेचना करते हैं। अन्तिम अध्याय में यह बताया गया है कि बोधिसत्त्व को किस प्रकार नाना गुणों का सम्पादन करना चाहिए।

'मिलिन्दपञ्ह' प्रश्नोत्तर शैली की एक सुंदर रचना है। संपूर्ण कृति में स्थविर नागसेन, भिलिन्द के प्रश्नों का उत्तर देते हैं। प्रश्नोत्तर शैली में बौद्धधर्म के गहन से गहन सिद्धान्त विभिन्न उपमाओं द्वारा अत्यन्त सरल रूप में प्रस्तुत कर दिये गये हैं। यहां अधिक न देकर केवल एक वार्तालाप देना उचित होगा। प्रथम दर्शन में परस्पर कुशलप्रश्न पूछने पर ही अनात्मवाद पर संलाप छिड़ जाता है-

'भन्ते ! आप किस नाम से पुकारे जाते हैं?'

'महाराज ! मैं 'नागसेन' नाम से पुकारा जाता हूं। ब्रह्मचारी, भिक्षु आदि मुझे यही कहकर पुकारते हैं लेकिन यह नाम केवल व्यवहार के लिए है। तात्त्विक दृष्टि से इस प्रकार का कोई व्यक्ति नहीं होता।'

'भन्ते ! नागसेन !! यदि यथार्थ में कोई व्यक्ति नहीं है तो आपको अपनी आवश्यक वस्तुएं कौन देता है? उन वस्तुओं का उपयोग कौन करता है? पुण्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कौन करता है? ध्यान कौन लगाता है? आप कहते हैं कि लोग आपको नागसेन नाम से पुकारते हैं। आखिर नागसेन है क्या? क्या ये केश नागसेन हैं?'

'केश किस प्रकार नागसेन हैं?'

'तो क्या नख, दांत, त्वचा, मांस, शरीर नागसेन हैं?'

'राजन् ! ये भी नहीं।'

'तो क्या पञ्चस्कन्धों का संयोग नागसेन है?'

'नहीं राजन् !'

'तो फिर क्या रूप, वेदना संज्ञा, संस्कार, विज्ञान-इन पांचों स्कन्धों से पृथक् वस्तु नागसेन है?'

'नहीं महाराज !'

'भन्ते ! मैं पूछते-पूछते थक गया, तथापि यह न जान सका कि नागसेन क्या है? क्या नागसेन एक नाम ही है? भन्ते ! आप असत्य बोल रहे हैं कि नागसेन नामक कोई व्यक्ति यथार्थ में विद्यमान नहीं है।'

'महाराज ! आपका जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ है इसलिए आप स्वभावतः सुकुमार हैं। मुझे विश्वास है, आप अवश्य थक गये होंगे। आप पैदल चलकर आये हैं या रथ पर?'

'भन्ते ! मैं पैदल नहीं चलता। मैं रथ पर आया हूं।'

'महाराज ! आप रथ पर आये हैं तो मुझे बताएं रथ क्या है? क्या दण्ड ही रथ है?'

'नहीं भन्ते ! दण्ड रथ नहीं हो सकते।'

'तो क्या धुरा, चक्र, चाबुक, रस्सी आदि रथ हैं?'

'नहीं भन्ते !'

'तो क्या रथ इनसे कोई अतिरिक्त वस्तु है?'

'नहीं भन्ते ! यह कैसे हो सकता है?'

'महाराज ! मैं पूछते-पूछते थक गया तथापि यह न जान सका कि रथ क्या

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वस्तु है? क्या रथ नाममात्र है? क्या आप असत्य बोल रहे हैं कि आप रथ पर आये हैं? आप किससे भयभीत होकर असत्य बोल रहे हैं?'

'भन्ते ! मैं असत्य नहीं बोल रहा हूं। रथ के दण्ड, धुरे, चक्र, चाबुक इन विभिन्न अंगों पर रथ का अस्तित्व निर्भर है। रथ केवल एक शब्द है जो व्यवहार के लिए है।'

'महाराज ! आपने यथार्थ जान लिया। ठीक इसी प्रकार रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान-इन पञ्चस्कन्धों पर मेरा अस्तित्व निर्भर है। 'नागसेन' शब्द व्यवहारमात्र है। यथार्थ में नागसेन नामक कोई व्यक्तित्व विद्यमान नहीं है।'

यहां रथ की उपमा से अनात्मवाद की सुंदर व्याख्या की गयी है। इसके उद्धरण के अभाव में अनात्मवाद की व्याख्या पूर्ण ही नहीं हो सकती।

'मिलिन्दपञ्ह' में इसी प्रकार प्रश्नोत्तर शैली में महत्त्वपूर्ण बौद्ध सिद्धान्तों की सुंदर विवेचना की गयी है।

अट्ठकथा साहित्य

अट्ठकथा (अर्थकथा) संस्कृत के भाष्य जैसी वस्तु है। दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि भाष्य में, जहां केवल अर्थ की गहराई एवं व्याख्या पर बल रहता है वहां अर्थकथा में अर्थ के साथ-साथ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी प्रमुख रहता है। पालि साहित्य में अट्ठकथा साहित्य का अपना महत्त्व है। पालि साहित्य में तीन प्रमुख अट्ठकथाकार हुए हैं-बुद्धदत्त, बुद्धघोष तथा धम्मपाल। इनमें बुद्धघोष सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। यहां इन तीनों के ही सहित्य पर संक्षिप्त विचार युक्तियुक्त होगा।

बुद्धदत्त

बुद्धदत्त की पांच अट्ठकथाएं उपलब्ध होती हैं-विनय-विनिच्छय, उत्तरविनिच्छय, अभिधम्मावतार, रूपारूपविभाग और मधुरत्थ-विलासिनी। इनमें विनय-विनिच्छय (विनय-विनिश्चय) और उत्तरविनिच्छय (उत्तरविनिश्चय) दोनों बुद्धघोष रचित 'समन्तपासादिका' (विनयपिटक की अट्ठकथा) के पद्यबद्ध सार हैं। उत्तरविनिच्छय वस्तुतः विनयविनिच्छय का परिशिष्ट ही है। दोनों में क्रमशः ३१ अध्याय एवं ३१८३ गाथाएं तथा २३ अध्याय एवं ९६९ गाथाएं हैं। अभिधम्मावतार गद्य-पद्य मिश्रित रचना है। मूल भाग पद्य में है और गद्य में उसकी व्याख्या की गयी है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यह भी बुद्धघोष की अभिधम्मविषयक अट्ठकथाओं पर आधारित है, लेकिन लेखक ने बुद्धघोष को यथावत् स्वीकार नहीं किया है, स्थल-स्थल पर उसका मौलिक चिन्तन भी स्फुरित होता रहा है। रूपारूपविभाग भी अभिधम्मविषयक रचना है जिसमें रूप, अरूप, चित्त, चेतसिक आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। मधुरत्थविलासिनी खुद्दक-निकाय के एक ग्रंथ 'बुद्धवंस' की अट्ठकथा है जिसमें शाक्यमुनि गौतम के विभिन्न वर्षावासों से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध होती हैं।

बुद्धघोष

पालि अट्ठकथा-साहित्य में सबसे महत्त्वपूर्ण नाम आचार्य बुद्धघोष का है। ये वेदों में पारंगत ब्राह्मण थे किन्तु स्थविर रेवत के सम्पर्क में आकर प्रव्रजित हुए। त्रिपिटक का विधिपूर्वक अध्ययन करके, ये अपने गुरु के आदेश पर लंका गये और वहां अनुराधापुर के महाविहार में रहकर अध्ययन किया। उस समय लंका में त्रिपिटक पर अनेक अट्ठकथाएं उपलब्ध थीं जिनमें सुत्तपिटक पर 'महाअट्ठकथा', विनयपिटक पर 'कुरुन्दी' तथा अभिधम्म पर 'महापच्चरि' विशेष प्रसिद्ध थीं। इनके अतिरिक्त बुद्धघोष ने 'अन्धक अट्ठकथा' और 'संखेप अट्ठकथा' से भी सहायता ली है। इन सभी का उल्लेख बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में स्थल-स्थल पर किया है। बुद्धघोष का साहित्य अत्यन्त विशाल है--

१. ञानोदय
२. विसुद्धिमग्ग
३. समन्त पासादिका (विनयपिटक की अट्ठकथा)
४. कंखावितरणी (प्रातिमोक्ष की अट्ठकथा)
५. सुमंगलविलासनी (दीघनिकाय में अट्ठकथा)
६. पपञ्चसूदनी (मज्झिमनिकाय की अट्ठकथा)
७. सारत्थसप्पकासिनी (संयुत्तनिकाय की अट्ठकथा)
८. मनोरथपूरणी (अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा)
९. परमत्थजोतिका (खुद्दकपाठ और सुत्तनिपात की अट्ठकथा),
१०. अट्ठसालिनी (धम्मसंगणि की अट्ठकथा)
११. सम्मोहविनोदनी (विभंग की अट्ठकथा)
१२. पञ्चप्पकरण (धम्मसंगणि तथा विभंग के अतिरिक्त अभिधम्मग्रंथों की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अट्ठकथाएं)

१३. जातकट्ठवण्णना (जातक की अट्ठकथा)

१४. धम्मपदट्ठकथा (धम्मपद की अट्ठकथा)

उक्त साहित्य में केवल ञानोदय उपलब्ध नहीं है। शेष में विसुद्धिमग्ग को छोड़कर प्रायः सम्पूर्ण त्रिपिटक पर अट्ठकथाएं ही हैं।

विसुद्धिमग्ग बहुत ही महत्त्वपूर्ण रचना है इसलिए इस पर तनिक विस्तार से विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा।

विसुद्धिमग्ग (विशुद्धिमार्ग)

विशुद्धि का अर्थ है 'सर्वमलरहित, परिशुद्ध निर्वाण' और मग्ग का 'मार्ग या प्राप्ति का उपाय'। अतः विसुद्धिमग्ग का अर्थ हुआ 'सर्वमलशून्य, पूर्णतः परिशुद्ध निर्वाणप्राप्ति का मार्ग'। बुद्धघोष का यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ निश्चय ही निर्वाणप्राप्ति का अनुपम साधन है। इसमें बौद्धधर्म एवं साधना के सभी महत्त्वपूर्ण विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसके व्यापक महत्त्व के कारण ही इसे आचार्यों ने 'बौद्धधर्म का महान् विश्वकोश' कहा है। स्वयं बुद्धघोष की दृष्टि में भी यह ग्रंथ अत्यन्त महत्त्व-सम्पन्न रहा है। उन्होंने इसे अपनी संपूर्ण अट्ठकथाओं का मध्यस्थ बिंदु माना है तथा इसमें वर्णित विषयों का अट्ठकथाओं में पुनः विवेचन नहीं किया है।

यद्यपि 'विसुद्धिमग्ग' पूर्णतः मौलिक रचना है तथापि यह दो गाथाओं के व्याख्यास्वरूप लिखी गयी है। संयुत्तनिकाय की ये दो गाथाएं इस प्रकार हैं--

अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटिता जटा।
तं तं गोतम पुच्छामि को इमं विजटेय जटं ति।।

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो चित्तं पञ्ञञ्च भावये।
आतापी निपको भिक्खु सा इमं विजटये जटं ति।।

(अन्दर भी उलझन है और बाहर भी। यह समस्त जनता उलझन में जकड़ी हुई है। अतः हे गौतम ! मैं तुमसे पूछता हूं कि कौन इस उलझन को सुलझा सकता है। शील में प्रतिष्ठित होकर प्रज्ञावान् मानव जब समाधि एवं प्रज्ञा की भावना करता है तो उद्योगी एवं ज्ञानसम्पन्न भिक्षु होते हुए भी वह इस उलझन को सुलझा देता है।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पहली गाथा श्रावस्ती में विचरण करते हुए गौतम बुद्ध से देवदत्त ने पूछी थी और दूसरी भगवान् ने उत्तरस्वरूप कही थी। 'विसुद्धिमग्ग' में कहा गया है कि जब बुद्धघोष लंका के महाविहार के पुस्तकालय में अट्ठकथाओं के रूपान्तर के लिए गये तो भिक्षुओं ने इन दो गाथाओं को बुद्धघोष को व्याख्या के लिए दिया था जिनकी व्याख्यास्वरूप उन्होंने 'विसुद्धिमग्ग' की रचना की। इस पर वे भिक्षु अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें सभी ग्रंथों को देखने की सहर्ष अनुमति प्रदान की।

तेईस परिच्छेदों में विभक्त इस महाग्रंथ में बौद्धसाधना मार्ग के उत्तरोत्तर विकास को स्पष्ट किया गया है। निर्वाणप्राप्ति के मार्ग की तीन भूमियां हैं जो उत्तरोत्तर विकास द्वारा प्राप्त की जाती हैं। ये भूमियां हैं-शील, समाधि और प्रज्ञा। इस ग्रंथ का उद्देश्य शील, समाधि और प्रज्ञा के रूप में अवस्थित बौद्धसाधना के संपूर्ण मार्ग का विवरण देना है। इस महाग्रंथ के प्रथम दो परिच्छेदों में शील का विशद निरूपण किया गया है। परिच्छेद तीन से तेरह तक-ग्यारह परिच्छेदों में-समाधि का विस्तृत विवेचन है तथा परिच्छेद चौदह से तेइस तक-दस परिच्छेदों में-प्रज्ञा का। इस प्रकार इसमें शील एवं समाधि का स्वरूप, अवधूतव्रत, कर्मस्थान, समाधिमार्ग की दस बाधा, अठारह त्याज्य स्थान, चार ध्यान, छः अनुस्मृति, ब्रह्मविहार, ऋद्धिविध, अभिज्ञा, पञ्चस्कन्ध, षडायतन, अठारह धातुओं, प्रज्ञाभूतियों आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह कहना सत्य ही है कि यहां बौद्धधर्म एवं साधनामार्ग का कोई भी महत्त्वपूर्ण विषय छोड़ा नहीं गया है।

धम्मपाल

बुद्धघोष के परवर्ती अट्ठकथाकारों में धम्मपाल का नाम प्रसिद्ध है। इनकी शिक्षा-दीक्षा लंका के महाविहार में हुई थी। इन्होंने बुद्धघोष के कार्य को ही पूर्णता देने का प्रयास किया है। त्रिपिटक के वे ग्रंथ, जिन पर बुद्धघोष ने अट्ठकथाओं का प्रणयन नहीं किया, इनकी अट्ठकथाओं के विषय बने। साथ ही इन्होंने बुद्धघोष की अट्ठकथाओं पर टीकाएं भी लिखी हैं। इनकी प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं--

१. **परमत्थदीपनी**-खुद्दकनिकाय के उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा और चरियापिटक की अट्ठकथाएं इसमें सम्मिलित हैं। इस पर बुद्धघोष ने अट्ठकथाएं नहीं लिखीं थी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. **नेत्तिप्पकरणस्स अत्थसंवण्णना**-नेत्तिप्पकरण की अट्ठकथा, इसी पर 'नेत्तित्थककथाय टीका' नाम टीका।

३. **परमत्थमञ्जूषा**-विसुद्धिमग्ग की अट्ठकथा

४. **लीनत्थप्पकासिनी**-सुत्तपिटक के प्रथम चार निकायों की बुद्धघोष की अट्ठकथाओं की टीका।

५. **लीनत्थप्पकासिनी**-बुद्धघोष कृत जातकट्ठकथा की टीका।

परवर्ती अट्ठकथाकारों में चूल, आनन्द, महानाम, अनिरुद्ध, वज्रबुद्धि आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें अनिरुद्ध कृत 'अभिम्मत्थसंग्रह' का नाम विशेषोल्लेखनीय है। यह अत्यन्त महत्त्वशाली ग्रंथ है। इस पर अनेक टीकाएं भी लिखी गयी हैं जो इसके महत्त्व की परिचायक हैं।

वंस-साहित्य

वंस साहित्य (वंश साहित्य) पालि में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। अन्य भारतीय आर्यभाषाओं में इस प्रकार का साहित्य प्रायः नहीं मिलता। महाभारत और पुराणों में वंशावलियां दी गयी हैं लेकिन इतनी कल्पना एवं अतिरंजना से कार्य लिया गया है कि उनमें फंसी ऐतिहासिकता का निकालना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। हां, 'राजतरंगिणी' को इसके उदाहरणस्वरूप अवश्य प्रस्तुत किया जा सकता है। कल्पना एवं अतिरंजना का प्रयोग पालि के वंस-साहित्य में भी कम नहीं हुआ है ओर कहीं-कहीं तो ऐतिहासिकता ही तिरोहित हो गयी है तथापि महाभारत एवं पुराणों जैसा कल्पनाबाहुल्य वहां दृष्टिगत नहीं होता।

पालि में वंस-साहित्य की समृद्ध परम्परा मिलती है, लेकिन इसमें निम्न ग्रंथ ही विशेष महत्त्वपूर्ण हैं-दीपवंस, महावंस, चूलवंस, बुद्धघोसुप्पत्ति, सद्धम्मसंगह आदि। इनमें से कुछ का परिचय यहां दिया जा रहा है--

दीपवंस

दीपवंस वस्तुतः लंका द्वीप का इतिहास है जिसमें प्रारम्भिक काल से लेकर महासेन (३२५-३५२ ई०) तक का विवरण है। यह ग्रन्थ बुद्धघोष से पूर्व का है क्योंकि बुद्धघोष ने 'कथावस्थु' की अट्ठकथा में इसका कई स्थलों पर उल्लेख किया है। इसका लेखक अज्ञात है। विचारकों की यह भी मान्यता है कि इसके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लेखक कई रहे होंगे। चूलवंस के प्रमाण पर कहा जा सकता है कि लंकानरेश धातुसेन (४६०-४७८ ई०) महेन्द्र-उत्सव पर इसके सार्वजनिक पाठ का आयोजन करता था। इससे स्पष्ट है कि पांचवीं शताब्दी तक इसे व्यापक सम्मान मिलने लगा था।

यह ग्रंथ सिंहली भाषा में लिखित अट्ठकथाओं (आज अनुपलब्ध) के ऐतिहासिक साक्ष्यों को आधार बनाकर लिखा गया है। इन्हीं के आधार पर बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं का निर्माण किया है। दोनों का उपजीव्य एक ही होने से इनमें ऐतिहासिक मतभेद प्रायः बहुत कम हैं।

दीपवंस का प्रारम्भ गौतम बुद्ध के तीन बार लंकागमन से किया गया है। उनकी विस्तृत वंशावली दी है और उनके वंश का आदिपुरुष महासम्मत बताया गया है। इसके उपरान्त प्रथम दो संगीतियों का विस्तृत वर्णन विनयपिटक के चुल्लवग्ग के अनुसार ही है। तीसरी संगीति का वर्णन करने से पूर्व लेखक ने लंका के इतिहास का वर्णन किया है। लंका की स्थापना एक उपनिवेश के रूप में लाल नरेश सिंहबाहु के पुत्र विजय ने की थी जो अपने अभद्र व्यवहार के कारण पिता द्वारा बहिष्कृत कर दिया गया था। यह विजय ही लंका का प्रथम अभिषिक्त नरेश हुआ। इसके उपरान्त अनेक नरेश हुए तथा अशोक के समय यहां देवानंपिय तिस्स सत्तारूढ़ थे। तृतीय संगीति के पश्चात् महेन्द्र और संघमित्रा धर्म-प्रचारार्थ लंका गये तो देवानंपिय तिस्स ने उनका स्वागत किया और अनुराधापुर में बोधिवृक्ष की शाखा लगायी तथा वहीं महाविहार की स्थापना की। इसके बाद लंका में तमिलों ने आतंक मचाया और बुद्ध जनता उनसे पीड़ित हो उठी। वहां के युवराज ने तमिलों के दमन की आज्ञा मांगी जो अहिंसावादी पिता से नहीं मिली। पिता के मरणोपरान्त दुट्ठगामणि (हिंसा का समर्थक होने के कारण ही उसे दुट्ठ (दुष्ट) कहा जाता है) ने तमिलों को पराजित किया और अनुराधापुर में नौमंजिला 'लौहप्रासाद' नामक विहार बनवाया। तमिलों के नेता की मृत्यु पर दुट्ठगामणि ने उसका राजकीय सम्मान से दाह-कर्म कराया तथा उसकी स्मृति में स्तूप बनवाया। दुट्ठगामणि की कई पीढ़ियों बाद वट्टगामणि अभय के वंश में ही लंकाधिपति महासेन (३२५-३५२ ई०) का जन्म हुआ जिसके शासन काल में यह ग्रंथ पूर्णता प्रदान करता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी की दृष्टि से यह ग्रंथ बहुत उपादेय है लेकिन साहित्यिक दृष्टि से बहुत कम। इसकी भाषा बहुत अव्यवस्थित है, छन्द भी बहुत दोषपूर्ण हैं और पुनरुक्तियों का बाहुल्य मिलता है। एक ही वर्णन कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत दो-दो रूपों में भी मिलता है। डा० भरतसिंह उपाध्याय ने इसका साहित्यिक आकलन करते हुए ठीक ही लिखा है-"साहित्यिक दृष्टि से 'दीपवंस' एक अव्यस्थित, पुनरुक्तिमय, भाषा एवं शैली के दोषों से परिपूर्ण एवं नीरस पद्यात्मक (केवल दो जगहों पर गद्यमिश्रित) रचना है।"

महावंस

दीपवंस के समान, महावंस भी लंका का इतिहास है। इसकी विषयवस्तु एवं वंशावलीक्रम भी दीपवंस के समान ही है। इसमें भी प्रारम्भिक काल से लेकर लंकाधिपति महासेन (२३५-३५२ ई०) तक का वर्णन है और कहीं भी दीपवंस के ऐतिहासिक तथ्यों का विरोध इसमें नहीं मिलता। लगता है, यह भी सिंहल की अट्ठकथाओं तथा दीपवंस के ही आधार पर लिखा गया है। इसके लेखक भिक्षु महानाम माने जाते हैं।

विषयवस्तु एवं वंशावली-क्रम में समानता होने पर भी महावंस कुछ विभिन्नताएं लिये हुए है। इसकी भाषा अत्यन्त व्यवस्थित तथा काव्योचित गुणों से सम्पन्न है। इसमें दीपवंस जैसी शिथिलता एवं अव्यवस्था दृष्टिगत नहीं होती। सच्चे अर्थों में यह इतिहास न होकर 'ऐतिहासिक काव्य' है। इसे ऐतिहासिक महाकाव्य कहना अतिशयोक्ति न होगा।

इसमें बौद्धधर्म से सम्बद्ध राजाओं एवं घटनाओं का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। देवानंपिय तिस्स का वर्णन, महेन्द्र का स्वागत, बोधिवृक्ष की शाखा की स्थापना एवं विहार-निर्माण का जैसा वर्णन महावंस में है वैसा दीपवंस में नहीं। दीपवंस में दुट्ठगामणि का वर्णन केवल तेरह गाथाओं में है जबकि महावंस में ग्यारह अध्यायों में। उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है-कुमारजन्म, योद्धाओं की प्राप्ति, भातृ-युद्ध एवं गामणि-विजय, मरिचवट्टिविहार-पूजा, लौहप्रासाद पूजा, महास्तूप की साधन-प्राप्ति, धातुगर्भ की रचना, धातुनिधान और तुषितपुर-गमन। इसी प्रकार वट्टगामणि अभय का वर्णन अत्यन्त विशाल है। तृतीय संगीति के अवसर पर कौन-कौन दूत कहां-कहां भेजे गये-इसका विस्तृत वर्णन किया गया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है।

यद्यपि दीपवंस और महावंस लंका द्वीप के, विशेषतः बौद्धधर्म के, इतिहास ग्रंथ हैं, लेकिन इनमें कुछ अनैतिहासिक तथ्य भी उपलब्ध होते हैं जैसे दोनों ही ग्रंथों में बुद्ध का तीन बार लंका-गमन दिखाया गया है जिसका त्रिपिटक समर्थन नहीं करता। वस्तुतः यहां लंका-गमन धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से ही रख दिया गया है, ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं है।

महावंस ३७वें अध्याय की ५०वीं गाथा पर समाप्त हो जाता है। आगे भी इस ग्रंथ का परिवर्द्धन किया गया लेकिन यह अंश महावंस न कहलाकर चूलवंस कहलाता है। अतः इसका विवरण चूलवंस के अन्तर्गत ही दिया जा रहा है।

चूलवंस

चूलवंस, जिसे महावंस का परिवर्द्धित अंश ही कहना चाहिए, में महासेन के राज्य के अन्तिम वर्ष से लेकर १९३५ ई० तक का लंका का क्रमबद्ध इतिहास वर्णित है जो समय-समय पर पांच विभिन्न व्यक्तियों द्वारा जोड़ा गया। इनमें प्रथम नाम है स्थविर धर्मकीर्ति का-जिन्होंने ३७वें परिच्छेद की ५१वीं गाथा से ७९वें परिच्छेद (राजा महासेन एवं उनके पुत्र श्री मेघवर्ण से लेकर पराक्रमबाहु द्वितीय पर्यन्त) तक परिवर्द्धन किया। द्वितीय परिवर्द्धक हैं भिक्षु बुद्धरक्षित जिन्होंने ८०वें परिच्छेद से ९०वें परिच्छेद तक (पराक्रमबाहु द्वितीय से पराक्रमबाहु चतुर्थ पर्यन्त) की रचना की। तृतीय व्यक्ति हैं स्थविर सुमंगल जिन्होंने ९१वें परिच्छेद से १००वें परिच्छेद तक (भुवनेकबाहु तृतीय से कीर्तिश्री राजसिंह पर्यन्त) की रचना की। चतुर्थ परिवर्द्धक हैं हिक्कडुवे श्रीसुमंगल तथा देवरक्षित, जिन दोनों ने मिलकर १०१वें परिच्छेद के रूप में श्री राजाधिराजसिंह तथा श्री विक्रमराजसिंह का वर्णन प्रस्तुत किया जो सन् १७८५ से १८१५ के मध्य का लंका का इतिहास प्रस्तुत करता है। अन्तिम व्यक्ति स्थविर युगिरल प्रज्ञानन्द ने १८१५ से १९३५ ई० तक का वर्णन लिखकर स्वतंत्र रूप से प्रकाशित कराया।

बुद्धघोससुप्पत्ति

चौदहवीं शताब्दी में भिक्षु महामंगल ने बुद्धघोष की जीवनी के रूप में इस ग्रंथ की रचना की। इसमें उनकी बाल्यावस्था, शिक्षा-दीक्षा, धर्मपरिवर्तन, लंका-गमन, अध्ययन, लेखन आदि को विस्तारपूर्वक चित्रित किया गया है लेकिन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें अनेक भयंकर त्रुटियां हैं। लगता है, लेखक ने प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास ही नहीं किया है।

इसके अतिरिक्त सद्धम्मसंगह, महाबोधिवंस, यूथवंस आदि उल्लेख्य रचनाएं हैं। इनका न्यूनाधिक महत्त्व धार्मिक ही है, साहित्यिक नहीं।

शास्त्रीय या धर्मेतर साहित्य

पिटकेतर साहित्य का वह भाग जो त्रिपिटक को उपजीव्य रूप में स्वीकार नहीं करता, शास्त्रीय या धर्मेतर साहित्य कहलाता है। इसमें धार्मिक भावों की प्रधानता नहीं है, प्रत्युत काव्यात्मक तत्त्वों का बाहुल्य है। इसमें भी कहीं-कहीं गौतम बुद्ध नायक के रूप में सामने आते हैं लेकिन यहां उनका स्वरूप त्रिपिटक के बुद्धसे भिन्न है। इस प्रकार इसे पालि का शुद्ध साहित्य कहा जा सकता है।

पालि के इस साहित्य का संक्षिप्त विवेचन दिया जा रहा है।

काव्य

पालि-काव्य संस्कृत के समान न समृद्ध है और न हीं विस्तृत। प्राकृत एवं अपभ्रंश काव्य भी पालि से अधिक समृद्ध है। पालि में कालिदास, भास, भारवि, माघ, दण्डी, श्रीहर्ष, वाक्पतिराज, सातवाहन या स्वयंभू के समान एक भी कवि दृष्टिगत नहीं होता। जो भी काव्य उपलब्ध है, उसमें न कल्पना की प्रधानता है, न रसात्मकता और न आलंकारिकता ही, अपितु शुद्ध इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य है तथा सभी की विषयवस्तु गौतम बुद्ध पर केन्द्रित है मानो भारतभूमि में अन्य महापुरुष ही न हुए हों। सम्पूर्ण काव्य की दो सामान्य विशेषताएं दिखती हैं-नैतिक आदर्शवाद तथा नीरस इतिवृत्तात्मकता।

पालि के प्रमुख काव्यग्रंथ निम्नलिखित हैं--

तेलकटाहगाथा

यह ९८ गाथाओं की अत्यन्त प्रौढ़ एवं परिष्कृत रचना है जिसके रचयिता कल्याणिय भिक्षु माने जाते हैं। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि उक्त भिक्षु को राजा तिष्य ने महारानी के साथ अनुचित संबंध के आरोप में बंदी बनाकर खौलते हुए तेल के कड़ाह में ड़लवा दिया था जहां उसकी मृत्यु हो गयी थी। मृत्यु से पूर्व उन्होंने बुद्ध-धर्म का चिन्तन किया और ९८ गाथाओं की रचना की। यह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुश्रुति दीपवंस, सुधम्मालंकार आदि से समर्थित होने पर भी कहां तक सत्य है, यह नहीं कहा जा सकता। स्वयं ग्रंथ इस बात का कोई संकेत नहीं देता।

जो भी हो, यह रचना अत्यन्त प्रौढ़ एवं परिष्कृत है, साथ ही काव्यात्मक गुणों से परिपूर्ण भी। इसमें जीवन की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता, संसार की अनित्यता, वैराग्य की महत्ता एवं भोगों की असारता का गम्भीर चिन्तन है। इसमें काव्यात्मकता के साथ बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्तों का मणिकांचन योग दिखायी देता है। ये ९८ गाथाएं नौ भागों में विभक्त हैं-१. रतनत्तय, २. मरणनुस्सति, ३. अनिच्चलक्खण, ४. दुक्ख लक्खण, ५. अनास्तलक्खण, ६. असुभलक्खण, ७. दुच्चरित आदीनवा, ८. चतुरारक्खा, ९. पटिच्चसमुप्पाद। इस प्रकार इसमें बौद्धधर्म के प्रायः सभी मूल सिद्धान्त समाविष्ट हो जाते हैं।

'तेलकटाहगाथा' काव्यात्मक दृष्टि से अत्यन्त रमणीय ग्रंथ है, लेकिन इसके रचयिता एवं रचनाकाल के विषय में कछ नहीं कहा जा सकता। रचनाकाल को लेकर भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने जो कल्पनाएं की हैं, उनका कोई स्पष्ट आधार नहीं दिखाई देता। अतः इस विवाद में पड़ना निरर्थक ही है। अधिकांश विद्वानों ने इसे बारहवीं शताब्दी की रचना माना है।

काव्यात्मक दृष्टि से परिष्कृत इस रचना की दो-तीन गाथाएं उद्धृत करने का लोभ संवरण कर पाना ही कठिन है--

आपुण्णता न सलिलेन जलालयस्स
कट्ठस्स चापि पहुता न हुतासनस्स।
भुत्वान सो तिभुवनम्पि तथा असेसं
भो निद्दयो न खलु पीतिमुपेति मच्चु॥
निचचतुरं जगदिदं सभयं ससोकं
दिस्वा च कोधमदमोहजराभिभूतं।
उब्बेगमत्तमपि यस्स न विज्जती चे
सो दारुणो न मरणो वत तं धिरत्थु॥
पोसो यथा हि कदलीसु विनिब्भुजन्तो
सारं तदप्पमपि नोपलभेय्य कामं।
खन्धेसु पञ्चसु छळायतनेसु तेसु
सुञ्ञेसु सिञ्चिदपि नोपलभेय्य सारं॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(हे मनुष्यो ! जिस प्रकार पानी से समुद्र की तथा काष्ठ से अग्नि की कभी भी तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार निर्दय मृत्यु तीनों लोकों को खाकर भी संतुष्ट नहीं होती, सदैव आतुर, भय एवं शोक से युक्त, क्रोध-मद-मोह और जरा से पीड़ित इस संसार को देखकर जो उद्विग्न नहीं होता, वह मनुष्य दारुण है, मृत्यु नहीं। उस मनुष्य को धिक्कार है। जिस प्रकार कदली के तने को उधेड़नें पर मानव को कुछ भी सार नहीं मिलता उसी प्रकार इन पञ्च-स्कन्धों तथा छः आयतनों में कुछ भी सार नहीं है।)

जिनालंकार

जिनालंकार २५० गाथाओं का ग्रंथ है जिसकी रचना बुद्धरक्षित ने बारहवीं शताब्दी में की। इसमें गौतम बुद्ध का जन्म से लेकर बोधिप्राप्ति का वर्णन है। इसमें परवर्ती संस्कृत महाकाव्यों-किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध-के समान काव्य-चमत्कार एवं विद्वत्ता-प्रदर्शन की प्रवृत्ति मिलती है जिससे काव्य में कृत्रिमता एवं क्लिष्टता का समावेश हो गया है। कहीं-कहीं एक ही वर्ण को लेकर सम्पूर्ण श्लोक के निर्माण का उद्यम भी दिखता है। बुद्धरक्षित ने इस पर एक टीका भी लिखी थी जो आज उपलब्ध नहीं होती।

जिनचरित

जिनचरित ४७२ गाथाओं की रचना है जिसका विषय बुद्ध-जीवनी का वर्णन करना ही है, लेकिन इसमें जीवनी के साथ-साथ बुद्ध के उपदेशों एवं वर्षावासों का भी विस्तृत विवरण अंकित है। विषय की दृष्टि से किसी प्रकार की नवीनता या मौलिकता दृष्टिगत नहीं होती, बल्कि सम्पूर्ण विवरण जातकट्ठकथा पर आधारित जान पड़ता है। फिर भी पालि साहित्य में इसका स्थान नितान्त महत्त्वपूर्ण है। रचयिता ने प्रकृति के सुंदर चित्र बहुतायत में अंकित किये हैं और इनमें उसे सफलता भी मिली है। हिमालय का वर्णन बहुत ही रमणीय है। इसकी अलंकारयोजना अत्यन्त सफल एवं सार्थक है। सांगरूपक प्रवाह दर्शनीय है--

भेरीनादसुगन्धेन याचकालिसमागते।
दानकिञ्जक्खओघेन सत्ताहं पीणयी ततो।।
दानग्गहिमविन्दूनं निपातेनापिं धंसनं।
आयातं तं विलोकत्वारतनम्बुजकाननं।।

इसके रचयिता वचरतन मेङ्कर माने जाते हैं। यद्यपि मेङ्कर नाम के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कई भिक्षु लंका में हुए हैं, लेकिन ये विजयबाहु के समकालीन थे जैसा उन्होंने ग्रंथ में उल्लेख किया है। अतः इनका समय तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है।

पज्जमधु (पद्यमधु)

पज्जमधु शतक के ढंग की १०४ गाथाओं की रचना है जिसकी ६६ गाथाओं में बुद्ध का सौंदर्यवर्णन है तथा शेष में ज्ञान एवं संघ की प्रशंसा मात्र है। काव्यात्मकता की दृष्टि से यह एक अच्छी रचना है, लेकिन शैली की कृत्रिमता एवं नीरसता से युक्त है। बुद्ध के रूप-वर्णन का एक उदाहरण दर्शनीय है--

"इन्दीवर के भीतर स्थित भ्रमर-पंक्ति के समान पञ्चवर्ण वाले कमलों के सरोवर पर गमन करती, नेत्रकमल की शोभा की यवनिका सी तुम्हारी श्रीसम्पन्न बरौनियों की पंक्ति हमारे पापों को दूर करें।"

इस ग्रंथ के रचयिता बुद्धप्रिय दीपंकर हैं। इनका समय तेरहवीं शताब्दी है। ग्रंथ के अंत में इन्होंने स्वयं ही अपना नामोल्लेख कर दिया है। ये आनन्दवनरतन के शिष्य थे।

सधम्मोपायन

यह ग्रंथ लंका के स्थविर आनन्द ने अपने प्रिय सब्रह्मचारी बुद्धसोम को भिक्षुत्व न छोड़ने के लिए सद्धर्म की भेंट (उपायन) स्वरूप लिखा है। इसमें ६२९ गाथाएं हैं जो १९ परिच्छेदों में विभक्त हैं। इसमें सदाचार की प्रशंसा एवं दुराचार के परिणाम दिखाये गये हैं। इसके अतिरिक्त बौद्धधर्म के प्रायः सभी सिद्धान्त सरल एवं सरस भाषा में संगृहीत हो गये हैं। पाप-दुष्परिणाम, पुण्यलाभ, सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा, दान एवं शील की प्रशंसा, सत्संगति, अप्रमाद आदि के काव्यात्मक वर्णन बहुत अच्छे हैं। काव्यात्मकता एवं वैचारिकता के मधुर संगम में कवि को सफलता मिली है। दान के माहात्म्य से सम्बद्ध कुछ गाथाएं उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं--

नाथभूतो अनाथानं सब्बेसं पीतिवद्धनो।
सतञ्च सुखसंवासो सततं होति दायको।।
सेट्ठो मुदालोको पहट्ठो तं उदिक्खति।
इट्ठदो ति मुदालोको पहट्ठो तं उदिक्खति।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यं यं दिसं दानपति रित्तहत्थो व गच्छति।
साभिसङ्खारिका तस्स सुलभा होन्ति पच्चया।।
यं हि दानपति दीनं याचकं समुपागतं।
लद्धत्थं पस्सती हत्थं किं विपुलं फलं।।

व्याकरण

त्रिपिटक के समान, प्रारम्भ में व्याकरण की परम्परा भी मौखिक ही रही। इसका लिखित रूप काफी बाद में विकसित हुआ। सातवीं शताब्दी में कच्चायन व्याकरण का प्रणयन हुआ जो एक व्यवस्थित लिपिबद्ध ग्रंथ है। इसके पश्चात् लंका एवं बर्मा में व्याकरण के गहन अध्ययन, चिन्तन-मनन की समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है जिसके परिणामस्वरूप अनेक ग्रंथ सामने आये हैं। आज पालि का उपलब्ध व्याकरण तीन सम्प्रदायों में विभक्त है-- कच्चायन व्याकरण, मोग्गल्लान व्याकरण और सद्दनीति। यहां इन पर संक्षिप्त प्रकाश डालना ही युक्तिसंगत होगा।

कच्चायन व्याकरण

वैयाकरण कच्चायन (कात्यायन) का संबंध न बुद्धशिष्य कच्चायन से है, न वार्तिकार कात्यायन से और न ही नेत्तिप्पकरण के रचयिता कच्चायन से। ये सातवीं शताब्दी के कोई भिक्षु थे। कच्चायन व्याकरण में ६७५ सूत्र हैं जो आठ परिच्छेदों में विभक्त हैं। प्रत्येक परिच्छेद में चार प्रकार का विवेचन मिलता है-- (क) सुत्त (सूत्र), (ख) वुत्ति, (वृत्ति), (ग) पयोग (प्रयोग), (घ) न्यास (व्याख्यात्मक विवरण)। न्यास पृथक् रूप से भी प्राप्त होता है। परम्पराप्रसिद्ध है कि सूत्र कच्चायन रचित हैं, वृत्ति संघनन्दी द्वारा रचित, प्रयोग ब्रह्मदत्त द्वारा रचित और न्यास विमलबुद्धि द्वारा। इस व्याकरण के अतिरिक्त कच्चायन ने 'महानिरुत्तिगन्ध' तथा 'चुल्लनिरुत्तिगन्ध' की भी रचना की।

कच्चायन व्याकरण का उपकारी साहित्य अत्यन्त विशाल है। सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है 'न्यास' इसे 'मुखमत्तदीपनी' भी कहा जाता है। इसकी टीकास्वरूप बर्मी भिक्षु छपद ने 'न्यास प्रदीप' की रचना की। इसके अतिरिक्त इस व्याकरण को टीकारूप में 'सुत्तनिद्देस' ग्रंथ की भी सृष्टि भी छपद ने की। कच्चायन व्याकरण के आधार पर ही स्थविर संघरक्षित ने 'सम्बन्धचिन्ता',

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बुद्धप्रिय दीपकर ने 'रूपसिद्धि', स्थविर शीलवंश ने 'धातुमञ्जुषा' की रचना की। कच्चायन व्याकरण की व्याख्या रूप में भिक्षु कण्डकखिप नागित ने 'सद्दसारत्थजालिनी', स्थविर महायश ने 'कच्चायन भेद' जिस पर कई टीकाएं भी मिलती हैं, राजा क्यचवा ने 'सद्दबिन्दु' की रचना की। अन्य भी अनेक ग्रंथों की सृष्टि इस परम्परा में हुई, लेकिन वे न महत्त्वपूर्ण हैं और न उल्लेख्य ही।

मोग्गल्लान व्याकरण

मोग्गल्लान व्याकरण बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना है। यद्यपि यह कच्चायन की अपेक्षा अधिक अर्वाचीन है लेकिन उससे अधिक गम्भीर एवं प्रौढ़ है। इसमें भाषाविषयक तत्त्वों की अत्यन्त गम्भीर एवं विस्तृत व्याख्या की गयी है। इसमें ८१७ सूत्र हैं जिसमें सभी व्याकरणिक विषयों की सर्वांगपूर्ण मीमांसा की गयी है। मोग्गल्लान ने व्याकरण के साथ उसकी वृत्ति भी लिखी है और उस पर 'पञ्जिका' नामक पाण्डित्यपूर्ण टीका भी।

मोग्गल्लान व्याकरण के उपकारी ग्रंथों की संख्या भी कम नहीं है। इनमें प्राचीनतम है प्रियदर्शी कृत 'पदसाधन'। यह व्याकरण का संक्षिप्त एवं सारपूर्ण ग्रंथ है। दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है वनरतन मेङ्ककर का 'पयोगसिद्धि'। यह भी अत्यन्त गम्भीर एवं व्यवस्थित ग्रंथ है। 'मोग्गल्लान पञ्जिका' पर 'मोग्गल्लान-पञ्जिका-प्रदीप' नामक टीका भी उपलब्ध होती है जिसके लेखक हैं स्थविर राहुल वागीश्वर। 'धातुपाठ' में मोग्गल्लान व्याकरण की धातुओं का संग्रह किया गया है। इसके रचयिता एवं रचनाकाल दोनों अज्ञात हैं।

सद्दनीति

लंका के समान बर्मा में भी व्याकरण का गहन चिन्तन-मनन हुआ है। इसकी चरम परिणति 'सद्दनीति' (शब्दनीति) में दृष्टिगत होती है। इसके लेखक अग्गवंस थे जिनका समय तेरहवीं शताब्दी माना जाता है। यह कच्चायन व्याकरण पर आधारित है। इस ग्रंथ में २७ अध्याय हैं। प्रारम्भ के अठारह अध्याय 'महासद्दनीति' और अन्तिम नौ अध्याय 'चूलसद्दनीति' कहलाते हैं।

कोश

पालि के दो कोश प्रसिद्ध हैं-अभिधानप्पदीपिका और एकक्खरकोश।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभिधानप्पदीपिका संस्कृत के आधार पर रचा गया है। इसमें पर्यायवाची शब्दों का संग्रह किया गया है जो तीन काण्डों में विभक्त हैं-स्वर्गकाण्ड, भूखण्डकाण्ड और श्रामण्यकाण्ड। इसके रचनाकार मोग्गल्लान माने जाते हैं जो वैयाकरण मोग्गल्लान से भिन्न हैं। एकक्खरकोश संस्कृत के एकाक्षरीकोश का रूपान्तर मात्र है। रूपान्तरकार सद्धर्मकीर्ति माने जाते हैं जिनका समय पन्द्रहवीं शताब्दी माना जाता है।

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय दशम
जातक

जातक खुद्दकनिकाय का एक विशालकाय ग्रंथ है। इसकी विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने हिन्दी, श्री ईशानचन्द्र घोष ने बंगला तथा ई० बी० कोवेल ने अंग्रेजी में इसका सम्पादन किया है जो छः-छः जिल्दों में है, सिंहल ओर रोमन लिपि में यह सात-सात जिल्दों में प्रकाशित हुआ है। वस्तुतः इसे ग्रंथ न कहकर 'महाग्रंथ' कहना चाहिए, क्योंकि इसके अन्तिम दस जातक संक्षिप्त महाकाव्य जैसे लगते हैं। अन्तिम जातक-वेस्सन्तर जातक-इसका सुंदर प्रमाण है जो सात सौ से भी अधिक गाथाओं से समन्वित तथा विशाल कथा से सम्पन्न है।

'जातक' शब्द 'जात' से बना है जिसका अर्थ है जन्म लेना या उत्पन्न होना। इस प्रकार 'जातक' शब्द का अर्थ हुआ-जन्म से संबंधित कथाएं। इसमें गौतम बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाएँ सन्निहित हैं जब वे बोधिसत्त्व (बोधिप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील प्राणी, जिसकी बुद्धत्वप्राप्ति सुनिश्चित है) अवस्था में विभिन्न पारमिताओं को प्राप्त कर रहे थे। इन कथाओं में कहीं वे प्रधान पात्र के रूप में सामने आते हैं तो कहीं गौण पात्र के रूप में, कहीं-कहीं तटस्थ दर्शक के रूप में भी सामने आते हैं किन्तु वहां उपदेशक के रूप में कथा में जोड़ दिये गये हैं। इस प्रकार जातक में वे किसी न किसी रूप में कथा से सम्बद्ध रहे हैं।

जातकों में अनेक रूढ़ियों का पालन दृष्टिगत होता है। प्रायः प्रत्येक कथा का प्रारम्भ इस प्रकार होता है--'प्राचीन काल में, वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व xxx योनि में उत्पन्न होकर, बुद्धि प्राप्तकर सौभाग्यसम्पन्न हो वन में विचरण करते थे' (अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो xxx योनियं निब्बतित्वा बुद्धिं अन्वाय सोभग्गपत्तो अरञ्ञे विचरि।) समूह को बताने के लिए प्रायः पांच सौ संख्या का प्रयोग किया गया है-'वे पांच सौ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

माणवकों को पढ़ाते थे।', 'पांच सौ शकट लेकर व्यापार करते थे।' आदि। कहीं-कहीं अस्सी हजार का प्रयोग भी मिलता हैं संन्यासियों के प्रसंग में प्रायः ये शब्द आए हैं। 'ऋषि प्रव्रज्या से प्रव्रजित होकर अभिज्ञा एवं सभापत्तियों को प्राप्त कर हिमवत्त प्रदेश में ध्यान-क्रीड़ा में रह रहे थे।' भिक्षुओं के बस्ती के पास जाकर नमक-खटाई खाने का उल्लेख भी अनेक स्थलों पर हुआ है। जातक के अन्त में आये समोधान (समवधान) में प्रज्ञावान् प्राणी को बुद्ध ही घोषित करते हैं-'तपस्वी तो मैं ही था।', 'न्यायवादी राजा तो मैं ही था।' गौणपात्र प्रायः आनन्द, सारिपुत्र, राहुल, राहुलमाता आदि बताये जाते हैं। दुष्ट पात्रों में प्रायः देवदत्त का नाम आता है। समूह को बुद्ध-परिषद् नाम दिया जाता है। इस प्रकार जातक-कथाओं में अनेक रूढ़ियों का पालन दिखता है।

जातकों का नामकरण किसी एक सुनिश्चित आधार पर नहीं किया गया है। कहीं-कहीं बोधिसत्त्व की जन्म-योनि के आधार पर ही जातक का नामकरण कर दिया गया है उदाहरणार्थ मक्कट जातक, वानरिन्द जातक, कपोतजातक, गोहजातक, सिगालजातक आदि। कहीं जातक के नामकरण का आधार प्रधान पात्र बनाया गया है, नन्दिविसाल जातक, रोहिणी जातक, इल्लीस जातक, भीमसेन जातक आदि में यही प्रवृत्ति काम कर रही है। कहीं-कहीं नामकरण वर्ण्यविषय के आधार पर किया गया है जैसे फलजातक, नच्चजातक, मतकभत्तजातक, भेरिवाद जातक आदि तथा कहीं गाथा के प्रथम शब्द को ही जातक का नाम बना दिया है जैसे एकपण्णजातक, लित्तजातक, सङ्कप्पजातक आदि भी। कभी-कभी वर्णित स्थान पर पथ के आधार पर भी नामकरण कर दिया गया है। इस प्रकार जातकों के नामकरण का कोई सुनिश्चित आधार नहीं रहा है, सुविधा के अनुसार उनका नामकरण कर दि्या गया है।

जातक संख्या

लंका, बर्मा तथा थाईलैण्ड आदि देशों की स्थविरवादी परम्परा जातकों की संख्या साढ़े पांच सौ मानती है, लेकिन वर्तमान रूप में केवल ५४७ जातक उपलब्ध होते हैं और जातकट्ठकथा में भी इनकी संख्या ५४७ ही दी गयी है। यह संख्या भी अत्यन्त औपरिक तथा औपचारिक ही है क्योंकि कई कथाएं स्वल्प परिवर्तन के साथ कई-कई स्थलों पर उपलब्ध होती हैं या एक दूसरे में समाविष्ट कर दी गयी हैं। इसके विपरीत कई जातकों का अन्य बौद्धग्रन्थों में उल्लेख

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मिलता है, लेकिन वे वर्तमान जातक में उपलब्ध नहीं होते। इनके उदाहरणों से ये बातें स्पष्ट हो जाएंगी-मुनिक जातक और सालुक की कथा एक ही है, केवल नाम भिन्न हैं, वानरिन्द जातक, सुंसमारजातक, कुम्भीलजातक और वानरजातक की कथा प्रायः समान ही है, केवल गाथाओं का अन्तर है, आरामदूसक जातक और राधजातक नाम से दो-दो जातक उपलब्ध हैं दोनों की कथा समान ही है। इसी प्रकार किम्पल्क जातक और फल जातक, मक्कट जातक और कपि जातक की कथा एक ही है, केवल स्वल्प परिवर्तन है। दो जातकों के आधार पर तीसरे जातक के निर्माण के उदाहरण भी अनायास ही मिल जाते है। पञ्चपण्डित जातक और दकरक्कखस जातक दोनों महाउम्मग जातक में अन्तर्भुक्त हैं। एक नाम से कई-कई जातक भी मिलते हैं जिनकी कथा भिन्न होने से, उनसे जातकों की संख्या प्रभावित नहीं होती। कुछ जातकों का उल्लेख अन्यत्र बौद्धग्रंथों में तो लिता है लेकिन वर्तमान जातकों में वे उपलब्ध नहीं हैं, ऐसे जातकों पर प्रकाश डालना भी अपेक्षित है। जातकट्ठवण्णना की निदानकथा में ही एक 'महागोविन्द जातक' का नामेल्लेख मिलता है, लेकिन वह वर्तमान जातकों में उपलब्ध नहीं है। धम्मपदट्ठकथा तथा मिलिन्दपञ्ह में भी ऐसी कई जातक-कथाएं उद्धृत हैं जो वर्तमान जातकों में अनुपलब्ध हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जातकों की ५४७-संख्या अत्यन्त औपचारिक एवं औपरिक है। ध्यान रखने योग्य तथ्य यह है कि यह विवेचन जातकों की संख्या का है, उनमें सन्निहित साधारण कथाओं का नहीं क्योंकि साधारण कथाओं की संख्या बहुत अधिक है। श्री ईशानचन्द्र घोष ने जातक में सन्निहित सम्पूर्ण कथाओं एवं उपाख्यानों की संख्या तीन हजार के लगभग मानी है।

वर्गीकरण

सम्पूर्ण जातक ग्रंथ विषयवस्तु के अनुसार विभक्त न होकर, गाथाओं की संख्या के आधार पर विभक्त है। इसमें बाइस निपात हैं। पहले निपात में १५० ऐसे जातक हैं जिनमें एक-एक ही गाथा पायी जाती है। दूसरी निपात में भी १५० ऐसे जातक हैं जिनमें दो-दो गाथाएं उपलब्ध होती हैं। तीसरे और चौथे निपात में ऐसे ५०-५० जातक हैं जिनमें क्रमशः तीन-तीन और चार-चार गाथाएँ मिलती हैं, पाँचवें निपात से लेकर तेरहवें निपात तक सामान्यतः यही क्रम जारी रहा है। इन सभी निपातों में कुछ ऐसे भी हैं जिनमें गाथाओं की संख्या उस

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निपात की संख्या से अधिक है। इन नौ निपातों में जातकों की कुल संख्या १३२ है। चौदहवें निपात का नाम पकिण्ण्क (प्रकीर्णक) निपात हैं। इसमें संगृहीत जातकों में गाथाओं की संख्या अत्यन्त अस्थिर है। यह नियमानुसार चौदह न होकर १० से ४७ तक विस्तृत है। आगे के निपातों में गाथाओं की संख्या तीव्रता से बढ़ती गयी है। पन्द्रहवें निपात का शीर्षक है वीसति निपात, सोलहवें का तिंस निपात, संत्रहवें का चत्तालीस निपात, अठारहवें का पण्णास निपात, उन्नीसवें का छट्‌ठी निपात, बीसवें का सत्तति निपात और इक्कीसवें का असीति निपात। बीसवें और इक्कीसवें निपात में सन्निहित जातकों में गाथाओं की संख्या क्रमशः ७० और ८० होनी चाहिए थी लेकिन इनकी गाथाओं की संख्या अधिकतर ही है। इनमें कुछ जातकों में तो ६०-१०० तक गाथाएं उपलब्ध होती हैं। बाइसवें निपात का नाम महानिपात है जो उसके आकार को ध्यान में रखकर ही किया गया है। इसमें कुल दस जातक संगृहीत हैं लेकिन प्रत्येक में शताधिक गाथाएं हैं और अन्तिम जातक-वेस्सनतर जातक-में तो गाथाओं की संख्या सात सौ से भी अधिक है।

पहले नौ निपातों को पुनः वर्गों में विभक्त किया गया है। इन वर्गों का नामकरण भी किया गया है लेकिन इसमें कोई सुनिश्चित आधार नहीं ग्रहण किया गया है। किसी वर्ग का नामकरण पहले जातक के आधार पर है तो किसी का वर्ग के सम्पूर्ण जातकों के आधार पर। यह वर्ग-व्यवस्था भी निपात-व्यवस्था के समान ही शिथिल एवं अवैज्ञानिक है, उदाहराणार्थ स्त्रीवर्ग में कुदालपण्डित की कथा आती है जिसका स्त्रीवर्ग से, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, कोई संबंध दृष्टिगोचर नहीं होती।

जातक का यह वर्गीकरण नितान्त शिथिल एवं पूर्णतः अवैज्ञानिक है इससे विषयवस्तु या जातक के स्वरूप को समझने में तनिक भी सहायता नहीं मिलती। जातक की गाथाओं को ही सर्वाधिक महत्त्वशाली मानते हुए यदि इसे उपयुक्त मानने का प्रयास भी किया जाए तो भी निराशा ही हाथ लगती है, क्योंकि गाथाओं की संख्या का निपात-संख्या से निरंतर मेल नहीं खाता। ऐसी स्थिति में यह वर्गीकरण कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता।

पांच अंग

प्रत्येक जातक पांच भागों में विभक्त रहता है जो इसके अगं कहलाते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ये अंग हैं-(क) पच्चुप्पन्नवत्थु (प्रत्युत्पन्नवस्तु), (ख) अतीतवत्थु (अतीतवस्तु), (ग) गाथा, (घ) अत्थवण्णना (अर्थ-वर्णना), और (ङ) समोधान (समवधान)। इनमें प्रत्युत्पन्नवस्तु और अतीतवस्तु को समझने के लिए बुद्ध-कल्पना को समझना आवश्यक है। सुत्तपिटक के पहले चार निकायों में गौतम बुद्ध का ऐतिहासिक रूप ही सामने आता है लेकिन पञ्चमनिकाय (खुद्दकनिकाय) के कुछ ग्रंथों में गौतम बुद्ध के पूर्वजन्मों की कल्पना भी मिलती है। जातक की निदानकथा में यह परिचय विस्तार से दिया गया है और बुद्धदेव के जीवन को तीन भागों में विभाजित किया गया है-दूरेनिदान, अविदूरेनिदान ओर सन्तिके निदान। कहा गया है कि गौतम बुद्ध बहुत जन्म पहले सुमेध नामक तपस्वी थे। उस समय उन्होंने दीपंकर बुद्ध के प्रति जीवन समर्पित किया, परिणामतः उन्हें बुद्ध होने का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। तब से वे विभिन्न पारमिताएँ पूर्ण करते हुए बुद्धत्व की योग्यता सम्पादित करते रहे और अन्त में वेस्सन्तर राजा के रूप में मरकर तुषितलोक पहुंचे। सुमेध तपस्वी से लेकर वेस्सन्तर तक की जीवन-यात्रा दूरेनिदान कहलाती है। तुषितलोक से अवतरित होकर माया के गर्भ में प्रविष्ट हुए और जीवन धारण कर साधना करते हुए गया में बुद्धत्व प्राप्ति में सफल हुए। माया के गर्भ में प्रवेश से लेकर बुद्धत्वप्राप्ति तक की कथा अविदूरेनिदान कहलाती है। बुद्धत्वप्राप्ति से लेकर कुसीनारा में परिनिर्वाण तक वे पैंतालीस वर्ष निरंतर धर्मोपदेश करते रहे। यह कथा सन्तिके निदान कहलाती है। जातक के प्रारम्भ में प्रत्युत्पन्नवस्तु आती है जो वर्तमान कथा कहलाती है। इसका संबंध सन्तिके निदान से है। यह बुद्ध के ऐतिहासिक जीवन का अंग हैं यह कथा ही अतीतवस्तु को कहने का अवसर प्रदान करती है। अतीतवस्तु बुद्धदेव के पूर्वजन्म से सम्बद्ध कथाएँ हैं जिसका संबंध दूरेनिदान से है। अतीतवस्तु में वे विविध योनियों में जन्म लेकर पारमिताएँ पूर्ण करते सामने आते हैं। अतीतवस्तु के अन्त में गाथाएं आती हैं। ये गाथाएं ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये स्वयं बुद्ध के मुखारविन्द से उच्चरित मानी जाती हैं। अर्थवर्णना का अर्थ है व्याख्या। इसमें गाथाओं का शब्दार्थ तथा विस्तृत अर्थ रहता है। अन्त में समवधान आता है जिसमें बुद्ध बताते हैं कि अतीतवस्तु में प्रधान एवं गौण पात्रों का वर्तमान पात्रों से क्या संबंध है और वे स्वयं किस पात्र के रूप में अवस्थित थे।

जातक में गाथाएँ ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं त्रिपिटक का अंग हैं। वे ही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बुद्धदेव के मुखारविन्द से उच्चरित हैं, शेष सम्पूर्ण कथाभाग संगीतिकारों की सृष्टि है। लेकिन गाथा की प्रकृति इस प्रकार की है कि वह कथाभाग के अभाव में महत्त्वहीन है। वस्तुतः गाथाभाग ही जातक है जिसे पाश्चात्य विण्टरनित्ज ने गाथाजातक कहा है। पांचों अंगों से परिपूर्ण को जातक ने कहकर 'जातकट्ठवण्णना' (जातकार्थवर्णना=जातक के अर्थ की व्याख्या) या 'जातकट्ठकथा' (जातकार्थकथा=जातक की अर्थकथा) ही कहना चाहिए, लेकिन सामान्यतः सम्पूर्ण को ही जातक कह दिया जाता है।

जातक के स्वरूप और उसके विविध अंगों को समझने की सुविधा के लिए एक जातक का हिन्दी रूपान्तर देना अप्रासांगिक न होगा। यहां 'सिगाल जातक' (११३) का रूपान्तर प्रस्तुत है--

(यह गाथा शास्ता ने बेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के विषय में कही है। उस समय धर्मसभा में बैठे भिक्षु परस्पर वार्तालाप कर रहे थे-- "आयुष्मानो ! देवदत्त पांच सौ भिक्षुओं को लेकर गयाशीर्ष चला गया। वहां जाकर उसने उन भिक्षुओं से कहा कि श्रमण गौतम जो करता है, वह धर्म नहीं है, बल्कि जो मैं करता हूं, वही धर्म है। उन्हें इस प्रकार अपने मत के बना, झूठा आचरण कर, संघ में फूट डाल, उसने एक सीमा में दो उपोसथगृह बना दिये।"

"क्या वार्तालाप कर रहे हो?" भगवान् ने पूछा।

"यह वार्तालाप चल रहा है।"

"भिक्षुओं ! देवदत्त केवल अभी झूठ बोलने वाला नहीं है, बल्कि वह पूर्वजन्म में भी झूठ बोलने वाला रहा है।" कह पूर्वजन्म की कथा कह सुनायी।)

प्राचीनकाल में वाराणसी नगर में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्त्व श्मशान में वृक्षदेवता होकर उत्पन्न हुए। उसी समय वाराणसी में शुभ नक्षत्र की घोषणा हुई। मानवों ने यक्षों को बलि देने की इच्छा से चौराहों तथा दूसरे मार्गों पर मत्स्यमांस आदि रखकर खप्परों में शराब भरवा दी।

एक गीदड़ अर्धरात्रि को नगर में प्रविष्ट हुआ। वह मत्स्य-मांस खा, शराब पी, पुन्नाग वृक्षों के मध्य सो गया। सोते-सोते सूर्योदय हो गया। आंख खुलने पर चारों ओर प्रकाश फैला हुआ देखकर उसने सोचा-"अब मैं नगर से निकल नहीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सकता।" वह मार्ग के निकट छिप गया। दूसरे मानवों को आते-जाते देखकर वह कुछ नहीं बोला, लेकिन एक ब्राह्मण को जाते देखकर उसने सोचा-"ब्राह्मण धन के लोभी होते हैं। मैं ऐसा उपाय करूं कि यह ब्राह्मण मुझे अपनी चादर में छिपाकर, गोद में ले जाकर नगर से बाहर कर दे।" उसने मनुष्य की भाषा में उसे पुकारा।

ब्राह्मण ने लौटकर देखा-"मुझे कौन बुला रहा है?"

"ब्राह्मण ! मैं।"

"किस कारण?"

"ब्राह्मण ! मेरे पास दो सो कार्षापण हैं। यदि मुझे गोद में लेकर, चादर से ढंककर, इस नगर से निकाल सके तो मैं यह कार्षापण तुझे दे दूंगा।"

धन के लोभ से ब्राह्मण 'अच्छा' कह, उस गीदड़ को वैसे ले, नगर से थोड़ा आगे निकल गया। गीदड़ ने पूछा, "ब्राह्मण, यह कौन-सी जगह है?"

"अमुक जगह है।"

"थोड़ा और आगे तक ले चल !"

इस प्रकार बार-बांर कहकर उसे शमशान तक ले गया। वहां पहुँचकर उसे कहा-"मुझे यहां उतार दे।" ब्राह्मण ने उतार दिया।

"अच्छा तो चादर फैला।" ब्राह्मण ने चादर फैला दी।

"इस वृक्ष की जड़ खोद।" ब्राह्मण वृक्ष की जड़ में खोदने लगा। गीदड़ ने उसकी चादर पर चढ़, उसके चारों कोनों तथा बीच में पांचों स्थानों पर मल त्यागकर, उसे सानकर वन में प्रवेश कर गया।

बोधिसत्त्व ने वृक्ष की शाखा पर खड़े होकर यह गाथा कही--

"ब्राह्मण ! तू शराब पीये गीदड़ का विश्वास करता है। उसके पास सौ सीपियां भी नहीं हैं, दो सौ कार्षापण तो कहां होंगे।"

बोधिसत्त्व यह कहकर, "हे ब्राह्मण ! जा, अपनी चादर धोकर, स्नान करके अपना काम कर।" अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मण वैसा कर 'हाय मैं ठगा गया।' सोचता हुआ, अपने स्थान को चला गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(शास्ता ने धर्म-देशना कह जातक का मेल विठाया। उस समय गीदड़ देवदत्त था और वृक्षदेवता तो मैं ही था।)

वस्तुतः जातक-साहित्य की रचना लोककथा शैली पर हुई है। कभी-कभी व्यक्ति अपने जीवन की वर्तमान घटना से किसी पुरातन घटना का स्मरण करने लगता है और उसे अपने साथियों को सुना देता है। जातक-साहित्य में ऐसा ही मिलता है। बोधिप्राप्ति के पश्चात् धर्म-देशना के लिए विचरण करते समय बुद्धदेव वर्तमान घटना के समान किसी पूर्वजन्म की घटना का वर्णन करते हैं। वर्तमान घटना (प्रत्युत्पन्नवस्तु) बोधिप्राप्ति के बाद की होती है और पुरातन घटना (अतीतवस्तु) पूर्वजन्म की। दोनों घटनाओं में मुख्य पात्र प्रायः समान ही रहते हैं।

वर्ण्य विषय

जातक में उपदेशात्मक लघुकथाएँ संकलित हैं। संस्कृत में 'पञ्चतन्त्र' एवं 'हितोपदेश' का जो महत्त्व है, वही महत्त्व पालि में जातक का है। प्रायः सभी कथाएं नैतिक उपदेश प्रस्तुत करती हैं। यहां सभी जातकों की विषयवस्तु स्पष्ट करना कठिन होगा तथापि कुछ प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कर देना उचित होगा जिससे जातक-साहित्य का नैतिक धरातल स्पष्ट हो सके।

जातक का मुख्य संदेश है कि मानव को संकट के समय धैर्य नहीं खोना चाहिए, प्रत्युत बुद्धिबल से मार्ग निकालने का प्रयास करना चाहिए। पत्नी की दोहदपूर्ति हेतु शिशुमार द्वारा पकड़ लिये जाने पर, कपिराज धैर्य नहीं खोते, बल्कि बुद्धि से संकटमुक्त होते हैं। बुद्धिबल से ही ढोंगी शृगाल से चूहों की रक्षा सम्भव होती है और सूअर व्याघ्र पर विजय प्राप्त करते हैं। कहना न होगा कि जातक में स्थल-स्थल पर बुद्धिकौशल का स्तवन उपलब्ध होता है। व्यावहारिक सफलता का आदर्श ही जातक-साहित्य की सबसे बड़ी देन है।

जातक-साहित्य में अनेक स्थलों पर लोभ का दुष्परिणाम व्यक्त किया गया है। कहीं लोभी ब्राह्मण की चादर पर गीदड़ मल-त्याग कर देता है, तो कहीं लोभवश चिड़िया मृत्यु को प्राप्त होती है। लोभवश ब्राह्मणी स्वर्ण-पंख देने वाले हंस के समस्त पंख एक साथ उखाड़ लेती है और वे स्वर्णमय न होकर साधारण रह जाते हैं। जिह्वालोलुप को सदैव निन्दनीय माना गया है। कहीं स्वादिष्ट भोजन के कारण मत्स्य मृत्यु को प्राप्त दिखाया है तो कहीं मांसलोलुप तपस्वी को निराश दिखाकर उसका उपहास किया गया है। रोमकजातक में कबूतर का मांस चाहने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाला तपस्वी आश्रमवासी कबूतरों को मारना चाहता है लेकिन वे उड़ जाते हैं और वह हाथ मलता रहता है। कामी व्यक्ति की उपहास्यता भी स्थल-स्थल पर प्रकटित हुई है। मछुओं द्वारा पकड़े गये कामी मत्स्य का कथन दर्शनीय है--"न मुझे अग्नि तपाती है और न अच्छी तरह से छीला हुआ शूल ही। मछली समझेगी कि रति के कारण दूसरी मछली के पास चला गया-इसी का मुझे दुख है।" कामविलाप जातक में सूली पर चढ़े व्यक्ति को अपनी कोई चिन्ता नहीं, केवल पत्नी की चिन्ता है। कच्छप जातक में जन्मभूमि के मोह के कारण कछुए को जान गंवानी पड़ी। इस प्रकार जातक-साहित्य में लोभ, काम, मोह, जिह्वालोलुपता आदि के दुष्परिणाम स्थल-स्थल पर देखने को मिलते हैं।

कृतज्ञता और कृतघ्नता से संबद्ध अनेक कथाएँ भी जातक में आयी हैं। अम्बजातक में प्यास से व्याकुल पशुओं को जल पिलाने वाले तपस्वी को पशु-पक्षी इतने मधुर फल लाकर देते हैं कि पांच सौ तपस्वी उनसे क्षुधातृप्ति कर लेते हैं। अलीनचित जातक में बढ़इयों द्वारा कांटा निकालने के कारण हाथी आजीवन उनकी सेवा करता रहा और मरणोपरान्त अपना बच्चा भी सेवार्थ दे गया। गुणजातक में दलदल में फंसे सिंह को निकालने के कारण वह आजीवन गीदड़ का कृतज्ञ रहा और उसे मत्स्य मांस देता रहा। गृद्धों ने कृतज्ञता प्रकट करने के लिए विभिन्न व्यक्तियों के वस्त्राभरण सेठ के घर डाल दिये। इसके विपरीत कुछ नीच व्यक्ति उपकार को नहीं समझते तथा उपकारी के साथ अपकार ही करते हैं। तपस्वी से पोषित होकर भी सर्पशावक ने उसे ही डस लिया। प्यास से व्याकुल वानर को जल पिलाने पर भी उसने तपस्वी पर मल-त्याग किया। तपस्वी द्वारा पोषित हाथी ने न केवल उसका पर्ण कुटीर नष्ट कर दिया, बल्कि उसे भी परलोक भेज दिया। मैत्री के विषय में जातक का संदेश है-"जिसके सदाचार, शील तथा ज्ञान को अपने बराबर समझे, उसी के साथ मैत्री करे। सत्पुरुष के साथ की गयी मित्रता सुखद होती है और असत्पुरुष के साथ की गयी दुःखद।" सम्मान, योग्य व्यक्ति को ही देना चाहिए, अयोग्य के प्रति नहीं। अयोग्य मेढ़े को सम्मान देनेवाले परिव्राजक की जांघ की हड्डी उसी के द्वारा तोड़ दी गयी। शिक्षा भी सुपात्र को ही देनी चाहिए अन्यथा उसका परिणाम घातक ही होता है। बया ने वानर को शिक्षा देकर अपना घोंसला ही नष्ट करा लिया।

जातक-साहित्य में एकता की शक्ति की भी अनेक स्थलों पर प्रशंसा की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गयी है। कोई जाति या समूह जब तक मिल-जुलकर रहता है, सशक्त रहता है और ज्यों ही उसमें विघटन प्रारम्भ होता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। बड्ढकीसूकर जातक में सूअरों के संगठित दल ने व्याघ्र पर विजय प्राप्त की तथा प्रतिदिन एक सूअर खाने वाला व्याघ्र निराश लौट गया। कुरुंगमिग जातक में कुरंगमृग ने कछुवे तथा कठफोड़े की सहायता से अपनी जान बचायी और शिकारी को पाशबद्ध मृग खोकर खाली हाथ लौटना पड़ा। रुक्खधम्म जातक में एक-दूसरे के आश्रय में खड़े वृक्षों का तुफान कुछ न बिगाड़ सका जबकि एकाकी वृक्ष टूटकर गिर पड़े। सम्मोदमान जातक में जब तक बटेर एकमत रहे शिकारी उनका कुछ न बिगाड़ सका, लेकिन ज्यों ही उनमें मतभेद हुआ, सभी शिकारी के जाल में फंसकर मरने को बाध्य हुए।

जातक में बहुभाषी तथा मिथ्याभाषी की भी निन्दा की गयी है। कच्छप जातक में हंसों द्वारा चोंच में लकड़ी पर ले जाये जाते हुए कछुए ने चुप न रह सकने के कारण अपनी जान गंवायी, असमय बोलने वाला मुर्गा विद्यार्थियों द्वारा मार डाला गया। तित्तिर जातक में वाचाल तपस्वी ओर तित्तिर को बहुभाषिता के कारण जान से हाथ धोना पड़ा। बहुभाषिता के साथ मिथ्याभाषिता या मिथ्या प्रशंसा (चमचागिरी) को भी जातक में अनुचित माना गया है। पदुमजातक में श्रेष्ठिपुत्रों ने नकटे की मिथ्या प्रशंसा कर, उससे कमल लेने चाहे, लेकिन उसने यथार्थवक्ता को ही दिये। जम्बुखादक जातक में गीदड़ ने कौवे की मिथ्या प्रशंसा करके जामुन खानी चाहीं, लेकिन उसे निराशा ही हाथ लगी। इस प्रकार जातक में बहुभाषी, मिथ्याभाषी या मिथ्याप्रशंसा करने वाले को सम्मानपूर्ण दृष्टि से नहीं देखा गया है, प्रत्युत् उसके दुष्परिणाम ही दिखाये गये हैं।

धार्मिक साहित्य होने पर भी जातकों में भाग्यवाद की अपेक्षा पुरुषार्थ को महत्त्व दिया गया है। नक्खत्त जातक में कहा गया है कि नक्षत्र देखने वाले व्यक्ति का काम नष्ट हो जाता है। मंगल जातक में कहा गया है कि बुद्धिमान् व्यक्ति को शकुन माननेवाला नहीं होना चाहिए। जातक में सर्वत्र ही ग्रह-गणना, शकुन-विचार, नक्षत्रविचार, भाग्यवाद आदि को मूर्ख व्यक्तियों का आधार माना गया है और पुरुषार्थ की सदा ही प्रशंसा की गयी है। महासीलव जातक में कहा गया है : "पुरुष आशा लगाये रखे। बुद्धिमान् व्यक्ति कभी निराश न हो। प्रयत्नरत रहना पुरुष का कर्तव्य है, फल तो प्राप्त होगा ही।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जातक में पशु-पक्षियों को मानव के समान ही चिन्तनशक्तिसम्पन्न दिखाया गया है। वे उपकार को समझते हैं और प्रत्युपकार का प्रयास करते हैं। कण्हजातक में बैल ने अपनी बुढ़िया को, जिसने उसे पाला था, एक हजार कार्षापण कमाकर दिये। नन्दिविसाल जातक में मालिक के अपशब्द कहने पर बैल ने गाड़ी नहीं खींची और अपशब्द न कहने की प्रतिज्ञा कराकर गाड़ी खींच दी। गिद्धजातक में गिद्ध ने उपकारी सेठ को अन्य व्यक्तियों के वस्त्राभूषण ला दिये। इस प्रकार वानर, भेड़ा आदि निम्नस्तरीय जन्तुओं को छोड़कर, शेष सभी पशु-पक्षियों में विचारशक्ति एवं प्रत्युपकार-भावना दिखायी गयी है। वास्तविकता यह है कि वे जातक ही अधिक प्रसिद्ध हुए हैं जिनमें पशु-पक्षियों का प्रशंसनीय कृत्य सामने आता है। अन्य भाषाओं में अनुवाद भी प्रायः उन्हीं का हुआ है।

जातक में स्त्रियों के आचरण एवं चरित्र को सन्देहास्पद माना गया है। पहले निपात के 'इत्थिवग्ग' (६१-७०) में स्त्रियों के विषय में अनेक ऐसे वाक्य उपलब्ध होते हैं जिनसे स्त्री की सन्दिग्ध-चरित्रता स्पष्ट हो जाती है। यहां कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं-'हे भिक्षु ! स्त्रियां असाध्वी, असती, पापी और निकृष्ट होती हैं।' 'लोक में स्त्रियां असाध्वी होती हैं। उनका कोई समय नहीं होता। जैसे दीपशिखा सभी को खा जाने वाली होती है वैसे ही वे रागानुक्त और प्रगल्भ होती है।' 'स्त्री को गोद में लेकर साथ लिये फिरने पर भी उसे सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। ऐसी कोई स्त्री नहीं है जो एक पुरुष वाली हो।' 'स्त्रियां अनाचार वाले दिन तो स्वामी का अनुकरण करती हैं, दासी की तरह नम्र हाती है, न करने के दिन अभिमान के कारण स्वामी का अनादर करती हैं, इसप्रकार वे अनाचारिणी और दुश्शीला होती हैं। उनके हृदय की बात जानना दुष्कर है।' इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जातक में उनका आचरण सन्दिग्ध माना गया है और उन पर जो भी आरोप लगाये गये हैं, वे सम्पूर्ण जाति पर हैं, व्यक्ति-विशेष पर नहीं। वस्तुतः इतनी अविश्वसनीयता विकृत दृष्टि का परिणाम ही कही जा सकती है। संभव है, जनमानस में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए नारी दूषण को ही उपयुक्त शस्त्र समझा हो।

जातक में व्यंग्य एवं विनोद का पुट भी काव्यात्मक रूप में उपलब्ध होता है। सिगाल जातक में ब्राह्मणों की लोभवृत्ति पर मार्मिक व्यंग्य किया गया है। रोहिणी जातक में दासी अपनी मां के शरीर पर बैठी मक्खी को हटाने के स्थान पर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मूसल से मारती है। मकस जातक में बढ़ई पुत्र पिता के सिर पर बैठे मच्छर को मारने का प्रयास में तेज कुल्हाड़े से पिता के सिर के दो टुकड़े कर देता है। कच्छप जातक में समाधिस्थ तपस्वी के कर्णविवर में जननेन्द्रिय डालने के अभ्यस्त दुष्ट वानर का शिश्न कच्छप द्वारा मुंह से काट लिया गया। आरामदूषक जातक में वानर पौधों को उखाड़कर जड़ों के अनुरूप ही पानी देतें हैं। कूटवाणिज जातक में 'चूहे खा गये' कहकर लोहे के फाल चुराने वाले वैश्य को ग्रामीण द्वारा 'तेरे पुत्र को चिड़िया लेकर उड़ गयी' कहकर उचित पट्टी पढ़ायी जाती है। इसी प्रकार अनेक जातकों में मधुर एवं मर्मस्पर्शी व्यंग्य किए गये हैं। गरहित जातक में मानवजाति पर किया गया व्यंग्य बहुत ही मधुर एवं मर्मस्पर्शी है। मनुष्यों के मध्य रहने वाले वानर द्वारा मानवसमाज पर की गयी टिप्पणी दर्शनीय है-''आर्यधर्म को न जानने वाले मनुष्य दिन-रात यही कहते हैं 'हिरण्य मेरा, सोना मेरा।' घर में दो व्यक्ति रहते हैं। एक को मूंछ नहीं होतीं। उसके लम्बे स्तन होते हैं वेणी होती है और कानों में छेद होते हैं। उसे धनराशि देकर खरीदा जाता है और वह सभी को कष्ट देता है।'' यहां मानवजाति की धनलोलुपता, नारीविक्रय, गृहकलह आदि पर सुंदर एवं काव्यात्मक व्यंग्य किये गये हैं। सुनने वाले वानरों द्वारा 'मत कहें, मत कहें। न सुनने योग्य बात हमने सुनी' कहकर कान बंद कर लिये जाने से उनकी घृणा एवं उपेक्षा व्यक्त होती है।

जातक में लोककथा शैली में सरल उपदेशों के अतिरिक्त कुछ गम्भीर एवं शास्त्रीय विवेचन भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। बड्ढकीसूकर जातक में तीन व्यूहों की विवेचना हुई है-पद्मव्यूह, चक्रव्यूह, और शकटव्यूह। आक्रान्ता शत्रु को फंसाकर पराजित करने के लिए यहां व्यूहों के स्वरूप एवं उनके प्रयोगों का सुंदर विवेचन किया गया है। सक जातक में भोजन की मात्रा की सुंदर विवेचना की गयी है। गाथा के शब्द दर्शनीय हैं-''भोजन में रसज्ञ न होकर मात्रज्ञ होना चाहिए क्योंकि अमात्रज्ञ डूब जाते हैं, मात्रज्ञ नहीं डूबते। जब तक पक्षी भोजन की मात्रा जानता रहा, वह जीवनयापन करता हुआ माता-पिता का निर्वाह करता रहा। जब उसने बहुत भोजन किया वह डूब गया।'' आयुर्विज्ञान की दृष्टि से ये पंक्तियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। भोजन की मात्रा का इससे सुंदर विवेचन और क्या हो सकता है? वच्छनख जातक में गृहस्थ एवं संन्यास के दोषों की तुलनात्मक विवेचना की गयी है जो गृहस्थ के लिए अत्यन्त उपकारक है। मय्हक जातक में दान की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि दान देने से पहले मन प्रसन्न रहे, और दान देने के उपरान्त भी मन प्रसन्न रहे-यही दानयज्ञ की सम्पत्ति है। दानी की श्रद्धा एवं मनःस्थिति का यह अत्यन्त रम्य चित्रण है। जातक में इसी प्रकार के गम्भीर एवं शास्त्रीय विवेचन यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। यहां स्थान की परिमा को ध्यान में रख सभी का नामोल्लेख भी सम्भव नहीं है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जातक का मुख्य प्रतिपाद्य लोककथाओं के माध्यम से नैतिकता का आदर्श उपस्थित करना ही है। लोककथाओं ने विषय को सरलता प्रदान की है तो हास्य-व्यंग्य ने रोचकता। गम्भीर उपदेश या दार्शनिक विषय प्रासांगिक ही हैं।

जातक में पुनरुक्तियाँ

यों तो सम्पूर्ण त्रिपिटक में ही पुनरुक्तियों का प्राचुर्य है, लेकिन जातक में पुनरुक्तियाँ अपने चरमोत्कर्ष पर हैं। सुत्तपिटक के पहले चार निकायों में जो पुनरुक्तियाँ पायी जाती हैं वे प्रायः सैद्धान्तिक कथन हैं जो भगवान् बुद्ध की उपदेशात्मक पद्धति को देखते हुए बहुत अस्वाभाविक नहीं जान पड़ते। यदि हम यह ध्यान रखें कि त्रिपिटक एक व्यक्ति की रचना न होकर, अनेक व्यक्तियों के विभिन्न समयों पर किये गये संकलनों का परिणाम हैं तो उक्त पुनरुक्तियाँ क्षम्य ही माननी होंगी, किन्तु जातक की पुनरुक्तियाँ कुछ भिन्न एवं गम्भीर हैं, अतः इन पर यहां संक्षिप्त विचार कर लेना अपेक्षित ही होगा।

जातक में गौतम बुद्ध के पूर्वजन्मों से सम्बद्ध ५४७ कथाएं हैं। इनमें अतीतवस्तु (प्राचीनकथा) ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस अतीतवस्तु की दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि यहां एक कथा पर कई-कई जातक लिखे गये हैं। तटवासी वानर को देखकर मगरपत्नी के मन में उसका हृदय-मांस खाने की इच्छा उत्पन्न होना, मगर का उसको बहलाकर लाना, नदी के मध्य ही रहस्योद्घाटन होना और चतुरता से वानर का संकटमुक्त होना- यह कथा जातककारों को इतनी पसंद आयी कि इस पर चार जातकों का प्रणयन किया गया। ये चार जातक हैं--वानरिन्द जातक, सुंसमार जातक, कुम्भील जातक और वानर जातक। वस्तुतः शिशुमार और कुम्भील- ये मगरमच्छ के ही पर्याय हैं। इन चारों जातकों में न केवल अतीतवस्तु एवं प्रत्युत्पन्नवस्तु समान है, बल्कि इनका प्रतिपाद्य भी एक ही है--बुद्धिकौशल की स्थापना। इसी प्रकार घर में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सूअर को यवागुभात खाते देखकर एक बैल का दूसरे से मन की ईर्ष्या व्यक्त करना, दूसरे बैल का समझाना कि यह गृहपतितनया के विवाह के दिन के लिए पल रहा है, विवाह के दिन उसका काटा जाना और बैलों द्वारा अपने भूसे को ही वरेण्य मानना-इस कथा पर भी दो जातक लिखे गये हैं-मुनिक जातक और सालुक जातक। इन दोनों में भी प्रत्युत्पन्नवस्तु, अतीतवस्तु एवं प्रतिपाद्य समान ही है। छद्मवेशी वानर का तपस्वी के आश्रम पर आग तापने आना, बच्चे द्वारा प्रोत्साहन एवं स्वागत और तपस्वी द्वारा रहस्य जानकार भगा देना-इस कथा का मक्कट जातक और कपि जातक, अधिक हंसने वाली एवं वाचाल लड़की को जंगल में ले जाकर उसके पिता द्वारा कौमार्य-परीक्षण-इस कथा पर पण्णिक जातक और सोग्गुजातक, चंचल एवं जिह्वालोलुप काक का गृहवासी कपोत के साथ रहना, अवसर पाकर सेठ के भोज्य में चोंच मारना तथा पाचकों के हाथ मृत्यु को प्राप्त करना-इस कथा का कपोतजातक, लोलजातक तथा काकजातक का निर्माण हुआ है। इसी प्रकार राधजातक ओर आरामदूसक जातक नाम से एक ही कथा पर दो-दो जातकों का निर्माण हुआ है जिनमें न केवल नामसाम्य है बल्कि कथासाम्य भी है।

एक ही कथा पर दो जातकों के अतिरिक्त, कथा में न्यूनाधिक संशोधन करके भी उसका अन्य जातक में प्रयोग हुआ है। पब्बतूपत्थर की कथा में कुछ संशोधन करके ही खन्तिवण्णन जातक, फलजातक से स्वल्पपरिवर्तन के साथ किम्पक्कजातक और मकस जातक की कथा से रोहिणी जातक का निर्माण हुआ है। भेरीवाद जातक तथा संखधमन जातक, गोह जातक (१३८) तथा रोमक जातक में कथा एक ही है, केवल स्वल्प परिवर्तन है वह भी कथा का नहीं, बल्कि पदार्थमात्र का, जैसे गोह जातक में तपस्वी गोह पकड़ना चाहता है तो रोमक जातक में कबूतर। दोनों ही जातकों में जिह्वालोलुप तपस्वी का उपहास करना ही प्रयोजन है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जातक में एक ही कथा पर कई-कई जातक लिखे गये हैं और कथा में न्यूनाधिक परिवर्तन करके तथा कहीं पदार्थमात्र का परिवर्तन करके भी।

जातक में एक ही नाम के ऐसे दो-दो जातक भी मिलते हैं जिनकी कथा एक-दूसरे से नितान्त भिन्न है। ऐसी स्थिति में सामान्य पाठक को भ्रान्ति हो जाना स्वाभाविक है। यदि संगीतिकार इसमें सावधानी बरतते तो भिम्न नामकरण करके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वट्टकजातक, सिगालजातक, कुरुंगामिग जातक-ये ऐसे जातक हैं जिनके नाम समान होने पर भी कथा परस्पर भिन्न है।

जातकों में केवल कथा की दृष्टि से ही पुनरुक्तियाँ नहीं मिलतीं, बल्कि गाथाएँ भी त्यों की त्यों अन्यत्र मिल जाती हैं एक ही कथा पर लिखे गए जातकों में कहीं-कहीं गाथाएँ भी यथावत् मिल जाती हैं। पण्णिक जातक में पिता द्वारा जंगल में पुत्री का कौमार्य-परीक्षण करने पर वह कहती है--

यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं
सो मे पिता दूभि वने कराति।
सा कस्स कनदामि वनस्स मज्झे
यो तायिता सो सहसा करोति।।

(संकट में जिसे त्राता होना चाहिए, वही पिता वन में विश्वासघात कर रहा है। वन में मैं किसे बुलाऊं? जो त्राता है वही दुस्साहस कर रहा है।) इसी कथा पर रचित सेग्गुजातक में यह गाथा यथावत् ही गयी है। वानरिन्द जातक की एक गाथा यह है--

यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द ! यथा तव।
सच्चं धम्मों धिति चागो दिट्ठसो अतिवत्तति।।

यही गाथा कुम्भील जातक में भी यथावत् रूप में मिलती है।

एक ही कथा पर आश्रित दो जातकों में कहीं-कहीं स्वल्प परिवर्तन के साथ भी गाथाओं का प्रयोग दृष्टिगत होता है। मुनिक जातक की एक गाथा इस प्रकार है--

मा मुनिकस्स पिहयि आतुरन्नानि मुञ्जति।
अप्पोस्सुक्को भुसं खाद एतं दीघापुलक्खणं।।

(सूअर के भोजन से ईर्ष्या न कर। वह मरणान्त भोजन करता है। तू उत्सुकतारहित होकर शुष्क भूसे को खा। यह दीर्घायु होने का लक्षण है।) सालुक जातक में केवल 'मुनिक' शब्द के स्थान पर 'सालुक' शब्द का प्रयोग किया गया है, शेष गाथा यथावत् है। सालुक और मुनिक दोनों ही शब्दों का अर्थ सूअर है। इसी प्रकार भेरीवाद जातक की यह गाथा--

धमे धमे नातिधमे अतिधंनतं ही पापकं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धन्तेन सतं लद्धं अतिधन्तेन नासितं।।

संखधमन जातक में कुछ परिवर्तित रूप में उपलब्ध होती है--

धमे धमे नातिधमे अतिधनतं ही पापकं।
धन्तेनाधिगता भोगा ते तातो विधमी धमं।।

भिन्न कथाओं वाले जातकों में भी कहीं-कहीं समान गाथाएं उपलब्ध हो जाती हैं। उपदानदूसक जातक और पुटदूसक जातक की कथाएं भिन्न हैं, तथापि दोनों में एक गाथा सामान्य है। उपदानदूसक की तीसरी गाथा ही पुटदूसक जातक की चौथी गाथा के रूप में उपलब्ध होती है। यह गाथा इस प्रकार है--

यसं वा एदिसो धम्मो अधम्मों पन कीदिसो।
मा वो धम्मं अधम्मं वा अद्दसाम कुदाचनं।।

अर्थात्, जिनका धर्म ऐसा है उनका अधर्म कैसा होगा? हम न कहीं तुम्हारा धर्म देखते हैं और न अधर्म ही।

भिन्न कथाओं वाले जातकों में भी गाथाओं का आधा भाग अनेक स्थानों पर आवृत्त हुआ है। वस्तुतः गाथा के पूर्वार्द्ध में प्रायः सिद्धान्तकथन होता है और उत्तरार्द्ध में उदाहरण। इस पूर्वार्द्ध के सिद्धान्तकथन की अनेकशः पुनरावृत्ति मिल जाती है। कपोतजातक की एक गाथा इस प्रकार से है--

यो अत्थकामस्स हितानुकम्पिनो
ओवज्जमानो न करोति सासनं।
कपोतस्स वचनं अकत्वा
अमित्तहत्थत्थगतोव सेति।।

अर्थात्, जो कल्याण चाहने वाले हितैषी के उपदेशानुसार आचरण नहीं करता, वह कबूतर के वचन न मानने वाले कौवे के समान अमित्र के हाथ पड़कर सोता है।

इसका अर्द्धांश वेळुकजातक में यथावत् मिलता है--

यो अत्थकामस्स हितानुकम्पिनो
आवज्जमाानो न करोति सासनं।
एवं सो निहतो सेति
वेळुकस्स यथा पिता।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वेळुकस्स यथा पिता।।

आरामदूसक जातक की एक गाथा इस प्रकार है--

न वे अनत्थकुसलेन अत्थचरिया सुखावहा।
हापेसि अत्थं दुम्मेधो कपि आरमिको यथा।।

यही गाथा किञ्चित् परिवर्तित रूप में वारुणीजातक में मिलती है--

न वे अनत्थकुसलेन अत्थचरिया सुखावहा।
हापेति अत्थं दुम्मेधो कोण्डञ्ञ वारुणिं यथा।।

इसी प्रकार पञ्चावुध जातक की यह गाथा--

यो अलीनेन चित्तेन अलीनमनसो नरो
भावति कुसलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया,
पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसंयोजनक्खयं।।

(जो उत्साही पुरुष योग-क्षेत्र की प्राप्ति के लिए उत्साहयुंक्त चित्त से शुभ कर्म करता है वह सम्पूर्ण संयोजनों के क्षय को प्राप्त होता है।)

कञ्चनक्खन्ध जातक ही इस गाथा से बहुत साम्य रखती है--

यो पहट्ठेन चित्तेन पहट्ठमनसो नरो
भावेति कुसलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया,
पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसंयोजनक्खयं।।

गाथाओं की पूर्ण या आंशिक पुनरुक्ति के अन्य भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं लेकिन स्थानाभाव के कारण यहां अधिक उद्धरण उपयुक्त नहीं कहे जा सकते। इन्हें उद्धृत करने का प्रयोजन केवल यह दिखाना ही है कि जातक में कथाओं एवं गाथाओं की पुनरुक्तियाँ बहुत अधिक मिलती हैं। साहित्यिक दृष्टि से तो यह दोष है ही, धार्मिक दृष्टि से भी इसे उपादेय नहीं कहा जा सकता। जातक की रूढ़ियों का दर्शन पहले ही करा चुके हैं, लेकिन इन्हें कथानकरूढ़ियों के समान साहित्यिक मान्यता दिलाना कठिन है।

जातक और लोककथाएं

पांच सौ सैंतालीस जातक-कथाओं में अधिकांश नैतिक उपदेशात्मक कथाएं हैं। यह उपदेश या तो पशु-पक्षियों की कथा के माध्यम से दिया गया है अथवा मानव की कथाओं के माध्यम से। जातक की जो कथाएं विदेशों में प्रसिद्ध हुई

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हैं वे मानव या मानवेतर जीवों से सम्बद्ध लघुकाय नैतिक कथाएँ ही हैं। लम्बे-लम्बे ऋषियों या प्राचीन महापुरुषों के जीवन से सम्बद्ध या जटिल एवं व्यस्त कथानकों की अपेक्षा ये नैतिक-शिक्षा-सम्पन्न लघुकथाएँ निश्चय ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

लघुकाय नैतिक कथाओं में अधिकांशतः तत्कालीन लोककथाओं से ली गयी हैं। जातककथाओं में पशु-पक्षियों को मानव के ही समान विचारसम्पन्न, शक्तिसम्पन्न तथा कर्मसंलग्न दिखाया गया है, वे भी मानव के ही समान ऊहापोहों में पड़ते हैं और कृतज्ञ एवं कृतघ्न होते हैं। संस्कृत के पञ्चतन्त्र एवं हितोपदेश की कथाओं तथा विभिन्न भारतीय लोककथाओं में इनका ऐसा ही स्वरूप उपलब्ध होता है। अतः जातक में पशु-पक्षियों को मानववत् दिखाना भारतीय साहित्य एवं लोकथाओं के अनुरूप ही है।

जातक-साहित्य में जो कथा सबसे अधिक पायी जाती है, वह है मगर और वानर की। वानर को देखकर मगरपत्नी के हृदय में उसका मांस खाने की इच्छा उत्पन्न होना, मगर का बहकाकर लाना और नदी के मध्य में रहस्योद्घाटन करना, वानर का हृदय को वृक्षस्थ बताना और देने का वायदा करना, मगर का तट पर ले जाना और वानर द्वारा उसकी भर्त्सना करना-यह कथा है जो जातक-साहित्य में बड़ी प्रसिद्ध रही है। इस कथा पर चार जातकों का प्रणयन हुआ है-वानरिन्द जातक, सुंसमार जातक, कुम्भील जातक और वानर जातक। यह कथा यथावत् रूप में भारतीय लोककथाओं में पायी जाती है। इसी प्रकार सिगाल जातक, अम्बजातक, विलारव्रत जातक, गुण जातक, मक्कट जातक, दुब्बभिय मक्कट जातक, कच्छप जातक, बकजातक, आरामदूसक जातक, उदपानदूसक जातक आदि सैंकड़ों जातक ऐसे हैं जो आज भी किञ्चित् रूपान्तर के साथ लोककथाओं के रूप में प्रचलित हैं। लोककथाओं का एक रूप व्यंग्य एवं विनोद से परिपूर्ण भी रहता हैं। यहां ऐसी लोककथाओं को उद्धत करना प्रसंगातिरेक होगा अन्यथा जातककथाओं का लोककथाओं से गहन सम्बन्ध स्पष्ट कर दिया जाता। जातक-साहित्य में मकस जातक, रोहिणी जातक, आरामदूसक जातक आदि ऐसे ही हैं जो व्यंग्य-विनोदात्मक लोककथाओं का रूप प्रस्तुत करते हैं। जातक-कथा और लोककथा का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण का लोभ संवरण नहीं किया जा रहा है। यहां कटिदूसक जातक (३२१) का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कथाभाग प्रस्तुत है--

"प्राचीन काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व बया की योनि में उत्पन्न हुए। बड़े होने पर सुरक्षित नीड़ बना हिमालय प्रदेश में रहने लगे। एक दिन मूसलाधार वर्षा के समय शीत से ठिठुरता हुआ एक वानर बोधिसत्त्व के निकट आ बैठा। बोधिसत्त्व ने उसे कष्ट में देखकर यह गाथा कही-

'हे वानर ! तेरा सिर भी मनुष्य के ही समान है और हाथ पैर भी। फिर किस कारण तेरे पास घर नहीं है।'

इसे सुनकर वानर ने दूसरी गाथा कही--

'हे बया। मेरा सिर मनुष्य का ही है और हाथ-पैर भी, लेकिन जो मनुष्यों में श्रेष्ठ प्रज्ञा कहलाती है, वह मेरे पास नहीं है।'

यह सुनकर बोधिसत्त्व ने दो गाथाएं कहीं--

'जो अस्थिर चित्त है, जो हल्के चित्त वाला है, जो मित्रद्रोही है उसे सुख नहीं मिलता। इसलिए हे कपि ! तू दुश्शीलता को त्यागकर, कुछ उपाय कर और घर बना, जो शीत-वात से रक्षा कर सके।'

बन्दर ने सोचा यह सुरक्षित स्थान पर बैठी मेरा उपहास कर रही है। इसे घोंसले में न बैठने दूंगा। वह बोधिसत्त्व को पकड़ने के लिए उछला। बोधिसत्त्व उड़कर अन्यत्र चले गये। वानर ने घौंसला नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और चला गया।"

कटिदूसक जातक के इस कथाभाग के पश्चात् वह लोककथा भी देख लीजिये जिस पर यह आधारित है। प्रस्तुत लोककथा मेरठ जनपद में इस रूप में प्रचलित है--

"एक बया घौंसला बनाकर आराम से रहती थी। एक दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी। एक बन्दर भीगता तथा ठंड से सिकुड़ता हुआ उसी वृक्ष पर आ बैठा। बया को देखकर उसने कहा-'बया ! तू तो बहुत सुरक्षित बैठी है। तेरा घौंसला बहुत अच्छा है।' बया को अभिमान हो गया। उसने बंदर से कहा--

हाथ तेरे, पांव तेरे, मानस की सी देह।
बया के सा घौंसला बनाय क्यों न लेय।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बन्दर को लगा कि यह अपने घौंसले के कारण तेरा अपमान कर रही है। उसने कहा-'देखता हूं, तू भी कैसे बैठती है।' यह कहकर उसने घौंसला तोड़ दिया। बया को बड़ा दुःख हुआ। उसने दुःखी होकर कहा--

सीख वाको दीजिए जाको सीख सुहाय।
सीख दई बानरा बया कौ घर जाय।।

यह कहकर वह अन्यत्र उड़ गई।"

उक्त लोककथा तथा कटिदूसक जातक की अतीतकथा दोनों का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों की कथावस्तु एक ही है। दोनों में जो न्यूनाधिक अन्तर दृष्टिगत होता है, उतना तो एक ही लोककथा में स्थानवैभिन्न्य और वक्तावैभिन्न्य से भी उत्पन्न हो जाता है, फिर संगीतिकारों ने लोककथाओं का बौद्धीकरण करने में कम प्रयास नहीं किया। कथा या उपदेश या सन्देश बुद्ध-मुख से ही निस्सृत होना चाहिए-यह उनकी आवश्यक शर्त है। इस सायास परिवर्तन से ही उक्त जातक-कथा की सहजगति पंगु-सी दिखती है जबकि लोककथा में सहज प्रवाह है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि उक्त जातक लोककथा का ही बौद्धीकृत रूप है।

जातक और लोककथाओं के इस साम्य पर अनेक विद्वानों ने विचार किया है। डा० (श्रीमती) रीज़ डेविड्स का मत है कि जातक का संकलन और प्रणयन मध्यदेश में प्रचलित जनकथाओं के आधार पर ही हुआ है। प्रो० विण्टरनित्ज भी इसी मत के समर्थक हैं। भदन्त आनन्द जी कौसल्यायन ने जातक (प्रथम खण्ड) की कथावस्तु में इसी तथ्य को स्वीकार किया है--"इन कथाओं में से अनेक कथाएं भगवान् बुद्ध से पूर्व की हैं। बुद्ध ने अपने उपदेशों में उनका उपयोग भर किया है।"(१) संस्कृत के नैतिक कथा-साहित्य से पालि-जातक की तुलना करते हुए भी वे स्वीकारते हैं-"उस साहित्य में और बौद्ध साहित्य में जो साम्य है, वह जहां एक-दूसरे की लेन-देन हो सकता है, वहां यही अधिक सम्भव है कि एक ही मूलकथा ने दोनों जगह भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हों।"(२) ये मूलकथाएं लोककथाएं ही हो सकती हैं जो जनसाधारण में मनोरंजन एवं उपदेशात्मकता के लिए प्रचलित थीं। यही कथाएं जहां पञ्चतंत्र एवं हितोपदेश में संस्कृत रूप में

(१) आनन्द कौसल्यायनः जातक (प्रथमभाग) कथावस्तु, पृ० २७।
(२) वही, पृ० २६।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यक्त हुई हैं वहीं जातक में पालि रूप में भी। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि लोककथा एवं लोकभाषा से क्रमशः साहित्यिक कथा एवं साहित्यिक भाषा का निर्माण हो सकता है लेकिन साहित्यिक कथा एवं साहित्यिक भाषा से लोककथा एवं लोकभाषा जन्म नहीं ले सकती। जातक के साथ भी यही सत्य है, लेकिन कुछ विचारक उल्टी गंगा बहाने में विश्वास करते हैं। वे धार्मिक दुराग्रह या मौलिकता प्रदर्शनार्थ जातककथाओं से लोककथाओं का जन्म सवीकारते हैं जो कदापि सम्भव नहीं, पूर्णतः असम्भव है। डा० भरत सिंह उपाध्यास का मत है-- "भारतीय लोकसाहित्य में भी अनेक जातक कहानियों को अदृश्य रूप से खोजा जा सकता है। ऐसी कहानियां भारत के प्रत्येक प्रान्त में प्रचलित हैं। उदाहरणतः 'सीख वाकू दीजिये जाकू सीख सुहाय। सीख न दीजे बानरा बया कौ घर जाय' के रूप में बन्दर और बया की कहानी भारत के सब प्रदेशों में विदित है, परन्तु कम ही लोग जानते हैं कि यह कटिदूसक जातक की कहानी है।"(१) वस्तुतः साहित्यिक कथा कभी भी लोककथा के रूप में प्रचलित नहीं हो सकती। बन्दर और बया की कहानी मूलतः मध्यदेश की लोककथा ही थी जिसे बुद्धदेव ने उपदेश के लिए प्रयोग किया और बाद में वह संगीतिकारों के हाथ सज्जित होकर जातक में स्थान पा गयी।

सद्धर्मपुण्डरीक में कहा गया है कि बुद्धदेव अनेक उपमाओं, दृष्टान्तों तथा जातकों के द्वारा धर्म का उपदेश दिया करते थे। इन दृष्टान्तों एवं जातकों में वे मध्यप्रदेश में प्रचलित जनकथाओं (लोककथाओं) को ही ग्रहण करते थे। ये कथाएं पर्याप्त प्रचलित थीं, अतः बुद्ध उन्हें सारी न कहकर उसका मूल सार (गाथा मात्र) ही कह दिया करते थे। जातककथा में आज जातक (गाथा भाग) ही प्राचीन एवं बुद्धवचन माना जाता है। ज्यों-ज्यों ये जनकथाएं समाज्ञ से लुप्त होने लगी, गाथाभाग को निरर्थकता से बचाने के लिए संगीतिकारों को कथाभाग जोड़ना पड़ा। प्रारम्भ में जातक बहुत कम रहे होंगे। चुल्लनिद्देस में हमें केवल प्राच सौ का उल्लेख मिलता है। चीन देश के प्रवासी फाहियान ने ईसा की पांचवीं शताब्दी में लंका में पांच सौ जातकों की ही चित्राकृतियां देखी थीं। इससे पूर्व इनकी संख्या बहुत कम रही होगी। बाद में भिक्खुओं ने सुत्तपिटक और विनयपिटक के आख्यान लेकर उन्हें जातक का रूप दे दिया। रामायण और महाभारत के अनेक

(१) डा० भरतसिहँ उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३६४-६५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आख्यानों को भी तोड़-मोड़कर जातक बना दिया गया। इस प्रकार इनकी संख्या बढ़ती गयी। बड़े-बड़े जातक उपदेश के समय साधन रूप में प्रयोग ही नहीं किये जा सकते। अतः वे भिक्षुओं या संगीतिकारों की सृष्टि हैं। इसका आशय यह है कि प्रारम्भ में जातक बहुत कम थे, जैसा कि आर्यशूर की 'जातकमाला' में इनकी संख्या केवल ३५ ही है, और ये लोककथाओं पर आधारित थे, लेकिन परवर्ती भिक्षुओं तथा संगीतिकारों ने अपने तथा पराये धर्मग्रन्थों के आधार पर इनकी संख्या में भरपूर वृद्धि की। सुदीर्घ आकार वाले, शताधिक गाथाओं से समन्वित, जटिल एवं व्यस्त कथानकों से सम्पन्न जातक इसी प्रकार के हैं।

जातक का मूल लोककथाओं में अवश्य है, लेकिन उनका बौद्धीकरण करने में भी भिक्षुओं को कम परिश्रम नहीं करना पड़ा। उन्हें पूर्ण परिश्रम के साथ बौद्ध धर्म का नैतिक रूप दे दिया गया है। लोककथा के प्रधान पात्र को प्रायः सर्वत्र ही बोधिसत्त्व बना दिया गया है और उसे बार-बार इसी नाम से पुकार गया है। इनकी कथाओं का सम्पूर्ण संगठन तथा नैतिक आदर्श आज पूर्णतः बौद्धधर्म के अनुकूल है। पञ्चतन्त्र की कथाओं से मिलान करने पर स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धीकरण की प्रक्रिया में जातककथाओं की न केवल सरलता एवं रोचकता नष्ट हुई है बल्कि उसकी सहज गति भी आहत हुई। 'पञ्चतन्त्र' में जहा कोई भी पात्र नीतिपरक बात कह देता है वहाँ जातककार प्रत्येक महत्त्वपूर्ण बात बोधिसत्त्व के मुख से कहलवाने के लिए बाध्य है।

जातककालीन समाज

जातक धार्मिक साहित्य है और उस पर भी बु;द्धदेव के पूर्वजन्मों का आवरण पड़ा है, तथापि उसमें तत्कालीन समाज की पर्याप्त अभिव्यक्ति हुई है। पुरातन समाज के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, व्रतोत्सव को व्यक्त करने वाला कम ही साहित्य हमारे पास सुरक्षित बचा है। इस दृष्टि से जातक का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। जर्मन विद्वान् फिख ने ठीक ही लिखा है कि भविष्य में प्राचीन भारत का जो भी विवरण कभी लिखा जायेगा, उसे किसी न किसी रूप में जातक पर अवलम्बित रहना होगा। यहां इस विवरण के प्रासंगिक रूप से आने से इसकी महत्ता और भी अधिक बढ़ गयी है। अतः तत्कालीन परिस्थितियों एवं समाज को जानने के लिए जातक निश्चय ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(क) सामााजिक जीवन

जातक में जो कथाएँ वर्णित हैं वे जनसाधारण के मध्य घटित दिखायी गयी हैं, अतः उनके साथ सामाजिक जीवन भी अभिव्यक्त हुआ है। राजाओं के महलों से लेकर भिक्षुओं की कुटियों तक के चित्र जातक साहित्य में उपलब्ध होते हैं, इसलिए इस काल का सम्पूर्ण सामाजिक जीवन अभिव्यक्त होना स्वाभाविक है।

जातक का रचनाकाल एक ऐसा संक्रान्तिकाल है जब वर्णव्यवस्था समाज से लुप्त होने लगी थी और जातिवाद प्रारम्भ हो रहा था। फलतः दोनों ही व्यवस्थाएँ साथ-साथ चल रही थीं। एक ओर समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में विभाजित था, चाण्डालों तथा पुक्कुसों का भी एक वर्ण विकसित हो चला था जो समाज से दूर रहते थे, तो दूसरी ओर नाई, केवट, बढ़ई, कुम्हार, लोहार, चमार, भंगी, शिकारी आदि जातियाँ विकसित हो चली थीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के लिए वर्ण के साथ जाति एवं कुल का भी प्रयोग होने लगा था। यह व्यवस्था कर्म के अनुसार न होकर जन्म के अनुसार स्वीकृत हो गयी थी। इनमें जातीय प्रवृत्तियों का मोह कम होने लगा था तथापि रक्त की शुद्धता के प्रति समादर विद्यमान था।

जातक में कुल की श्रेष्ठता पर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है। सत्कुलोत्पन्न व्यक्ति के समक्ष हीनकुल में उत्पन्न व्यक्ति को अपमानित भी होना पड़ता था। सिगाल जातक में सिंहकिशोरी अपने पर आसक्त शृगाल को देखकर सोचती है-''यह चौपायों में सबसे निम्न स्तर का प्राणी है जैसे मानवों में चाण्डाल। हम उत्तम राजकुल के हैं।'' यहां उपमा बहुत गहराई लिये हुए है और कुलीनता के महत्त्व की उद्‌धाटक है। उच्च्व व्यक्तियों की समता करने पर अपमानित होना पड़ता था। सहिकात्थुकजातक में हीनकुल में उत्पन्न कोकालिक को अन्य कुलीन एवं बहुश्रुत भिक्षुओं के साथ धर्मग्रन्थ का पाठ करने से न केवल रोका जाता है, बल्कि तिरस्कृत भी किया जाता है। तात्पर्य यह है कि जातक में कुल की श्रेष्ठता पर बहुत बल दिया गया है।

जातक में विवाह समान कुल, शील एवं जाति वालों में ही श्रेष्ठ माना जाता था। विवाह भिन्न गोत्र वालों में ही होता था, सगोत्रीय परस्पर भाई-बहिन समझे जाते थे। विवाह के लिए कन्या की कम आयु ही उचित मानी जाती थी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अम्बजातक में कन्या का बीस-पच्चीस वर्ष की आयु में विवाह घृणा की दृष्टि से देखा गया है। विवाह के समय कन्या को वर-चयन की स्वतन्त्रता भी दी जाती थी लेकिन यह उच्च वर्ग के लोगों में ही प्रचलित था। विवाहपूर्व यौन-सम्बन्ध अच्छे नहीं माने जाते थे। पिता भी पुत्री का कौमार्य-परीक्षण कर लिया करते थे। कन्या का धन से विक्रय भी होता था, उसे अनेक स्थलों पर धनक्रीता कहा गया है। सम्भवतः निर्धन माता-पिता ऐसा करते थे। गरहित जातक तथा सुजाता जातक से नारी के कारण होने वाले गृहकलह की भी सूचना मिलती है। जनसाधारण एक पत्नी वाले होते थे, लेकिन धनी एवं प्रभुत्वसम्पन्न व्यक्ति इसके अपवाद थे। वे किसी के पसन्द आ जाने पर उसे पत्नी बना लेना चाहते थे। कभी-कभी माली आदि निम्न जाति की लड़की पर आसक्त होकर उसे महारानी पर दे देते थे। कभी-कभी तो विवाहिता के पति को मरवाकर भी उसे प्राप्त करना चाहते थे। मणिचोर जातक में राजा एक विवाहिता पर मुग्ध होकर उसके पति को मणिचोरी के अभियोग में मरवाकर उसे प्राप्त करना चाहता है।

विवाहमोक्ष (तलाक) समाज में प्रचलित नहीं था। विवाहित पत्नी का आजीवन निर्वाह ही अच्छा माना जाता था, लेकिन अपराधयुक्त नारी को घर से निकाल देने का भी प्रचलन था। रुहकजातक में ब्राह्मण ने अपनी व्यभिचारिणी पत्नी को घर से निकाल दिया। कभी-कभी अवैध सम्बन्ध होने पर उसे क्षमा कर दिया जाता था।

जातककालीन समाज में यौन स्वच्छन्दता कुछ अधिक थी। उच्च वर्णों की स्त्रियों में यह रोग बहुत अधिक प्रचलित था। रानियाँ तक अमात्यों द्वारा दूषित की जाती थीं। राधजातक में ब्राह्मणी पति की अनुपस्थिति में जमकर व्यभिचार करती है। सुसीमजातक में राजमाता अपने पुराहित से अवैध सम्बन्ध बनाये हुए है। बन्धनमोक्ख जातक में रानी चौंसठ राजपुरुषों से सहवास करती है और पुरोहित द्वारा इच्छापूर्ति न करने पर, उसे उसका कोपभाजन बनना पड़ता है। विमाता अपने पुत्र तक से रमण-प्रस्ताव रखती है और स्वीकार न करने पर उसे मरवा डालती है। अतः स्पष्ट है कि जातककालीन समाज यौन-सम्बन्धों में आज की अपेक्षा बहुत स्वच्छन्द था।

जातककालीन समाज का मुख्य भोजन यवागू तथा भात था। यवागू द्रव रूप

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होता था जबकि भात कुछ गाढ़ा होता था। यवागू को आज 'पनिऔटा भात' कहा जाता है। रात को भात बनाकर उसमें पानी डाल दिया जाता है और नमक, मिर्च, आम या इमली की खटाई, मट्ठा आदि से खाया जाता है। यवागू और भात दोनों ही चावल तथा जौ से बनते थे। इनके अतिरिक्त खाजा और पूआ का भी प्रयोग किया जाता था। ये दोनों ही जातक-युग के प्रिय मिष्ठान थे। गरीब लोग कुम्माष (कुल्माष) का भी प्रयोग करते थे, जो बिना घी-गुड़ के चलता था। सत्तू भी प्रयुक्त होता था। चावल और तिल को मिलाकर तिलोदन भी बनाया जाता था। तेल, नमक-मिर्च, हल्दी तथा पिप्पली नामक मसालों का प्रयोग अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है। पके आम का रस निकालकर, उसमें दूध मिलाकर अमरस तैयार किया जाता था। जातक में रोटी या आटे से बने भोज्य पदार्थों का वर्णन बहुत कम मिलता है। फलों में जामुन, आम तथा केले का नाम बहुत मिलता है। शकरकन्द का भी नाम आता है। दूध, दही, घी तथा मधु का बहुत उपयोग होता था। मत्स्य-मांस को बुरा नहीं माना जाता था। ब्राह्मण एवं बौद्धभिक्षु भी इसे वर्जित नहीं मानते थे। एक जातक में एक गृहस्थ के निमन्त्रण पर मत्स्य-मांस खाते हुए तपस्वी 'मांसभक्षण तपस्वी के लिए उपयुक्त नहीं है' ऐसी शंका होने पर यहां तक कह देता है-"पुत्तदाराम्पि चे हन्त्वा देति दानं असञ्ञतो। भुञ्जमानो पि सप्पञ्ञो न पापेन उपलिप्पति।।" अर्थात् साधारण मांस की तो बात ही क्या, यदि असंयमी व्यक्ति पुत्र और पत्नी को मारकर भी किसी को खिलाता है तो भी बुद्धिमान खाने वाले को पाप नहीं लगता। मछली, कबूतर, गोह, हिरण, भेड़, बकरी ही नहीं, घोड़ा और गाय का मांस भी प्रयोग किया जाता था। मोर का भी शिकार किया जाता था। सूअर-मांस अतिप्रचलित था। विवाह के अवसरों के लिए प्रायः सूअर पाले जाते थे जिनका प्रयोग मुख्य भोज में होता था। मुनिक जातक में पुत्री के विवाह के लिए गृहपति द्वारा सूअर पाले जाने का उल्लेख मिलता है। इस युग में मांसाहार इतना बढ़ गया था कि सुतसोम राजा नरभक्षी ही बन गया था। वह अपनी प्रजा को मार-मारकर खा जाता था। चुल्लपदुम जातक में क्षुधापीड़ित राजकुमारों द्वारा एक-एक कर अपनी पत्नियों को मारकर खा जाने का उल्लेख है। ब्राह्मणों एवं भिक्षुओं द्वारा स्वीकृत होने पर भी उपासक मांस को त्याज्य ही मानते थे। समाज में सुरापान का भी प्रचलन था। राष्ट्रीय या सामाजिक उत्सवों पर यह चौराहों पर भी रखवा दी जाती थी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जातककाल में अनेक उत्सव मनाये जाते थे। शुभ नक्षत्रों के उदय को समस्त जनता उत्सव के रूप में मानती थी। इन दिनों यक्ष-यक्षणियों को प्रसन्न करने के लिए नगर के सभी चौराहों पर मत्स्य-मांस तथा मदिरा रखवा दी जाती थी। हस्तिमंगल उस समय का राजकीय उत्सव था जो मन्त्रोच्चारण से प्रारम्भ होता था और राजपुरोहित को काफी स्वर्ण, रत्न, अन्नधन प्राप्त होता था, परिणामतः पौराहित्य के लिए संघर्ष होते थे। पशुओं की दौड़ भी होती थी। व्रत-उपवासों की समाप्ति पर भी उत्सवों का आयोजन किया जाता था।

जातकयुग में समाज में शिक्षा को महत्त्वपूर्ण माना जाता था। वह मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास का लक्ष्य मानी जाती थी। कुछ सुयोग्य ब्राह्मण अपने निवास पर ही शिक्षा दिया करते थे। यह शिक्षा वेद, चिकित्सा तथा शिल्पविषयक होती थी। शिष्य दो प्रकार के होते थे-प्रथम, जो कुछ धन लेकर आचार्य को शुल्क रूप में देते थे। तिलमुट्ठिजातक में इसे 'आचार्यभाग' कहा गया है। यह शुल्क पहले भी दिया जा सकता था और विद्याप्राप्ति के बाद भी। द्वितीय, जो शुल्क न देकर गुरु की सेवा-शुश्रुषा के बल पर ही शिक्षा प्राप्त करते थे। ये धर्मशिष्य कहलाते थे। ये दिन में सेवा करते और रात्रि को शिक्षा प्राप्त करते थे। जबकि आचार्यभाग देने वाले दिन में शिक्षार्जन करते थे। विद्यार्थी को गुरु के घरेलू कार्यों में भी सहायता करनी होती थी। आचार्य उपास्य माने जाते थे और वे शिष्य को पुत्रवत् रखते थे। शिष्यों के शील एवं चरित्र का पूरा ध्यान रखा जाता था। कुलीनता और ब्रह्मचर्य, शिक्षाप्राप्ति की आवश्यक शर्तें थीं। सुयोग्य ब्राह्मणों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा के अतिक्ति कुछ विशाल विद्यामंदिर भी थे जहा सभी विषयों एवं शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी। गान्धार देश का तक्षशिला उस समय सर्वाधिक प्रतिष्ठित शिक्षाकेन्द्र था। इसके अन्तर्गत कई विद्यालय थे-वैदिक विद्यालय, अष्टादश विद्यालय, शिल्पविज्ञान विद्यालय, सैनिक विद्यालय, ज्योतिष तथा आयुर्वेद विद्यालय आदि। प्रत्येक विद्यालय में पांच-पांच सौ छात्र शिक्षा पाते थे। इस काल में स्त्री-शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाता था। उन्हें शास्त्रीय ज्ञान के साथ-साथ गार्हस्थिक विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। सम्भवतः 'स्त्रीचरित्र' नामक भी कोई अध्ययन था। चुल्लकालिंग जातक से स्पष्ट होता है कि धर्मसेनापति सारिपुत्र को श्रावस्ती में चार विदुषियों ने शास्त्रार्थ के लिए ललकारा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

था। विहार के द्वार पर जाकर स्त्रियों का बौद्धचार्य को शास्त्रार्थ की चुनौती देना साहस एवं महत्त्व का कार्य है जो उस काल की स्त्रीशिक्षा को स्पष्ट करता है। शूद्रों के लिए शिक्षा का विधान नहीं था इसलिए कुछ जागरूक शूद्र एवं चाण्डाल ब्राह्मण वेश बनाकर शिक्षा प्राप्त करने पहुँच जाते थे।

समाज में दासप्रथा प्रचलित थी। दास धन से भी खरीदे जाते थे और वंशपरम्परागत भी होते थे। इन्हें सुख-सुविधाओं से वंचित रखा जाता था। इनका जीवन अत्यन्त नारकीय एवं परिश्रमपूर्ण होता था दास-दासी स्वामी की सम्पत्ति माने जाते थे। इन्हें शिक्षाप्राप्ति और प्रेम या विवाह का अधिकार भी नहीं था, स्वामी की अनुमति से ही यह सम्भव होता था। इन्हें हस्तान्तरित भी कर दिया जाता था और बेचा भी जा सकता था। कभी-कभी दासियों को स्वामी की कामुकता का शिकार भी होना पड़ता था। परिणामतः अवैध सन्तान सामने आती थी जो स्वामी की सम्पदा से वंचित रहती थी। कुछ व्यक्ति दास-दासियों से अच्छा व्यवहार भी करते थे। वे उनकी सन्तान की शिक्षा की भी व्यवस्था करते थे और अपने वैयक्तिक कार्यों में उनसे परामर्श भी करते थे। स्वामी के प्रसन्न होने पर वे दासत्व से मुक्ति भी पा जाते थे। कभी-कभी दासपुत्र अपने को सम्भ्रान्त बताकर उच्च वर्ग के लोगों से सामाजिक एवं वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लेते थे।

समाज नाना प्रकार के अन्धविश्वासों से ग्रस्त था। जनसाधारण भाग्यवाद में बहुत विश्वास करता था। मांगलिक कार्यों के लिए शुभ नक्षत्रों की प्रतीक्षा की जाती थी। नक्खत्तजातक में नक्षत्रों के विश्वासी एक ग्रामीण के विवाह तय होने पर भी शुभ नक्षत्र देखकर विलम्ब से आने के कारण उसे लड़की से वंचित होना पड़ा। समाज शकुन-अपशकुनों में बहुत विश्वास करता था। शुभकार्य के लिए जाते समय छींक को बुरा माना जाता था। सम्भवतः उसका कुप्रभाव दूर करने के लिए ही 'जीवें-जीवें' कहने की परम्परा प्रचलित थी। अन्धविश्वासी लोग जला कपड़ा धारण नहीं करते थे। उसे या तो फेंक दिया जाता था या संन्यासियों को दे दिया जाता था। अन्धविश्वासों का लाभ उठाने वालों की कमी नहीं थी। कुछ ढोंगी व्यक्ति इसीलिए संन्यासी बन जाते थे।

जातककालीन समाज में परिवार संयुक्त ही होते थे, एकाकी नहीं। परिवार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के वृद्ध व्यक्ति पारिवारिक सदस्यों के कार्यकलाप एवं सदाचार की जानकारी रखते थे और अनेक प्रकार के आवश्यक निर्देश देते थे। माता, पिता एवं पुत्र में प्रायः प्रेम एवं सद्भाव रहता था लेकिन वधू के कारण घर में कलह-प्रवेश हो जाता था क्योंकि वे सास के अनुशासन को स्वीकार नहीं करती थीं। धनी एवं उच्च घरों की कन्याएँ अपने श्वसुर के घर कठिनता से निभ पाती थीं। सुजाता जातक में धनी घर से लायी गयी झगड़ालू वधू का उल्लेख है जो न सास-ससुर का सम्मान करती है और न पति का, न अतिथियों का स्वागत करती है और न सन्त-महापुरुषों का। गरहित जातक में वानर मानवों के कार्यों की मीमांसा करते हुए करता है कि स्त्रियां सम्पूर्ण परिवार को परेशान करती हैं। स्त्रियों के कारण संयुक्त परिवारों की सत्ता डगमगाती थी लेकिन येन-केन-प्रकारेण वे अंकुश रखते थे।

जातककालीन समाज अनेक दुर्व्यसनों से परिपूर्ण था। वेश्यावृत्ति उन दिनों बहुत अधिक प्रचलित थी। राजा, सामन्त, पुरोहित, अमात्य-सम्पूर्ण उच्च वर्ग इसमें लिप्त था। कणवेर जातक में कोतवाल को वेश्यावृत्ति में लिप्त दिखाया गया है। वस्तुतः सम्पूर्ण समाज में कामासक्ति की प्रचुरता थी जो अवैध सम्बन्धों का कारण होती थी। वेश्यावृत्ति इसी का एक रूप है। समाज में रिश्वत काफी चलती थी। राजा, न्यायाधीश, कोतवाल तक इससे ग्रस्त रहते थे। भरूजातक में राजा, धम्मद्धजातक में न्यायाधीश तथा कणवेरजातक में कोतवाल द्वारा रिश्वत लेकर अनुचित कार्य करने का उल्लेख है। द्यूत-क्रीडा भी समाज में प्रचलित थी। विधुर-पण्डितजातक में धनञ्जय को द्यूतक्रीडा में आसक्त दिखाया गया है। जातकों में चोरी एवं डकैतियों का वर्णन बहुत अधिक मिलता है। पांचालनरेश के विषय में कहा गया है कि वहां दिन में राजपुरुष लूटते हैं और रात्रि में चोर-डाकू। प्रजा इन दोनों से ही पीड़ित है।

समाज में सत्यक्रिया का बहुत सम्मान था। इससे असम्भव कार्य भी सम्पन्न होते थे और अनिर्णीत अवस्था में निर्णय भी लिये जाते थे। इस क्रिया का स्पष्ट स्वरूप तो कहीं भी जातक में उपलब्ध नहीं होता, केवल इससे कार्य सम्पन्नता दिखायी गयी है। मगपक्खजातक में काशिराज की रानी ने सत्यक्रिया के बल पर सन्तान प्राप्त की। वट्टकजातक में वटेरशावक ने सत्यक्रिया के बल पर वृक्ष में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लगी आग बुझा दी। कट्ठहारिजातक में लकड़हारी से उत्पन्न राजा की सन्तान का निर्णय भी सत्यक्रिया से ही होता है। जातक में इसके प्रयोग से पता चलता है कि इससे उच्च वर्ग के लोग अपने कुकृत्यों को भी ढंक लिया करते थे। इसके बल पर कहीं अवैध सन्तानों या अमान्य सम्बन्धों को स्वीकृति दिलायी जाती थी तो कहीं पुत्र-प्राप्ति भी की जाती थी। यह अकाट्य प्रमाण समझी जाती थी।

जातक कालीन समाज में ऐसे अनेक व्यक्तियों का भी उल्लेख मिलता है जो राग-द्वेष से परिपूर्ण संसार से दूर रहकर संन्यास ग्रहण कर लिया करते थे। कभी-कभी राजा-महाराजा भी अपने वियोगविजड़ित परिवार को छोड़कर संन्यास ले लेते थे। वैराग्य के लिए हृदय टूटना ही आवश्यक नहीं था, बल्कि सहज वैराग्य भी समाज में दिखता था।

जातककालीन समाज में यातायात का प्रमुख साधन घोड़ा था। रथों का भी प्रचलन था। दोनों ही वस्तुएँ धनी लोग रखते थे। निर्धन व्यक्ति पैदल ही यात्राएँ करते थे। वे अपने साथ पाथेय लेकर चलते थे और मार्ग में धर्मशालाा, प्याऊ, उद्यान आदि पर विश्राम करते चलते थे। मालवाहन के लिए गाड़ियों का प्रयोग होता था। छोटे-छोटे लोग गधों पर भी बोझा ढोते थे। सम्पन्न वर्ग में हाथी रखने का भी उल्लेख मिलता है।

जातक में स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनके चरित्र को सन्दिग्ध माना जाता था और उन्हें अविश्वसनीय। अनभिरतजातक में स्वयं बोधिसत्त्व ने उन्हें नदी, मद्यालय, विश्रामघर के समान सार्वजनिक उपभोग की वस्तु घोषित किया है। समुग्गजातक में बोधिसत्त्व कहते हैं, 'स्त्री असभ्य एवं अकृतज्ञ होती है। पूर्वसमय में दानव-राक्षस द्वारा निगलकर अपनी कोख में छिपाने पर भी स्त्री को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता।' जातक में यहां तक कहा गया है कि संसार में कोई भी स्त्री एकपति वाली नहीं होती। 'सब्बिथियो करे पापं लभमाना निवातके' अर्थात् अवसर मिलने पर सभी स्त्रियाँ पापकर्म करती हैं। वस्तुतः यह विकृत दृष्टि का ही परिणाम है। समाज की बढ़ती हुई कामासक्ति से संघ की रक्षा के निमित्त नारीदूषण को ही भिक्षुओं ने शस्त्ररूप में अपनाया। यद्यपि सभी धर्माचार्य नारी को इस रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं लेकिन जातक ने नारी की प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुंचाया है। जातक में न उसका आदर वर्णित है और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न विश्वास ही। पं० मोहनलाल महतो वियोगी ने चुटकी लेते हुए कहा है-"बिना स्त्रियों के भी यदि प्रजा-रक्षा का कोई उपाय निकल जाता तो जातक युग स्त्री-जाति को जड़ से ही समाप्त कर डालता। पुरुष के लिए स्त्री अनिवार्य है और इसी अनिवार्यता ने स्त्री-जाति को वचा रखा।"(१) आचार्य वलदेव उपाध्याय भी यह स्वीकारने में संकोच नहीं करते : 'स्त्रीत्व को बौद्धलोग हीनत्व का सूचक मानते थे।'(२)

जातक में ब्राह्मणों पर भी आक्रोशवर्षा कम नहीं हुई है। प्रायः ब्राह्मणों का उपहास किया गया है, सर्वत्र ब्राह्मणियों को दुश्शीला एवं व्यभिचरिणी दिखाया गया है, उनके याग-यज्ञों का महत्त्व गिराया गया है। चारों वर्णों में ब्राह्मण के स्थान पर क्षत्रियों को श्रेष्ठ माना गया है। जातक में एक भी क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या चाण्डाल गाय या बैल का वध, पूजा या भोजन के लिए नहीं करता, केवल ब्राह्मण ही गोहत्या करते दिखाया गया है। वस्तुतः उस काल के ब्राह्मण इतने पतित नहीं थे जितने जातक में दिखाये गये हैं। अनादि काल से ब्राह्मण ही वैदिक या हिन्दूधर्म के संरक्षक रहे हैं। अतः उनसे लोहा लिये बिना या उन्हें हतप्रभ किये बिना अन्य धर्म का प्रबल प्रचार सम्भव ही नहीं था। जातक का ब्राह्मण विरोध इसी संकल्प को लेकर चला है। ब्राह्मणों पर जितने भी दोषारोपण किये गये हैं वे अपने धर्मप्रचार के मार्ग को निष्कण्टक बनाने के लिए ही हैं। इस निराधार दोषारोपण से जनसाधारण की श्रद्धा समाप्त नहीं हुई और ब्राह्मणवृन्द ने ही कालान्तर में भारतभूमि से बौद्धों को निर्मूल कर वैदिक धर्म का पुनः प्रचार किया।

(ख) राजनीतिक जीवन

जातकों में प्रायः मिलता है कि प्राचीन काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय अमुक घटना घटी। यह ब्रह्मदत्त राजा किस वंश के थे, कौन थे, कब हुए-इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है। समस्त जातकीय घटनांए एक ही राजा के राज्य में घटित हुईं-इसमें सन्देह ही है। महाभारत के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि ब्रह्मदत्त नाम के सौ राजा हुए। अतः यही कहना अधिक उपयुक्त होगा कि ब्रह्मदत्त व्यक्तिविशेष का नाम नहीं था, बल्कि उपाधि थी, ठीक वैसे ही जैसे मिथिलाधिपति की जनक उपाधि

(१) पं० मोहन लाल महता वियोगी : जातककालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ १६६।
(२) आचार्य वलदेव उपाध्याय : बौद्धदर्शनमीमांसा, पृष्ठ १८-१६।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

थी। इन सौ राजाओं ने हजारों वर्ष राज्य किया होगा। अतः उन वर्षों में बोधिसत्त्व ने अनेक जन्म ग्रहण किये हों-यह असम्भव भी नहीं कहा जा सकता, तथापि इसे एक ऐतिहासिक तथ्य न मानकर कथा की भूमिका मात्र मानना चाहिए।

जातककाल में भारतवर्ष छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। मध्यभारत के सोलह राज्यों का उल्लेख त्रिपिटक में किया गया है। ये राज्य थे-काशी, कोसल, अंग, मगध, विज्जिसंघ मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पंचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ति, गान्धार और कम्बोज। इनमें कोसल, मगध, काशी और अंग राजनीतिक दृष्टि से विशेष प्रसिद्ध रहे हैं। इनमें कोसल और वज्जिसंघ में गणतन्त्रीय पद्धति थी। वत्स, अवन्ति, कोसल और मगध-ये चार महत्त्वपूर्ण राजतन्त्रीय व्यवस्था वाले राज्य थे।

इन विभिन्न राज्यों में प्रजा सुखी एवं सम्पन्न थी। यद्यपि राजकीय कर्मचारी प्रजा पर अत्याचार भी करते थे और रिश्वत लेकर अनुचित कार्य भी कर देते थे, तथापि प्रजा में व्यापक असन्तोष नहीं था। वह कभी भी राजद्रोह नहीं करती थी। राजा की स्थिति अनिवार्य मानी जाती थी, उसके अभाव में निवास की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी-'अपतिस्स वासो नाम न वट्टति।' यद्यपि अधिकांश राज्यों में एकतन्त्रीय व्यवस्था लागू थी और राजा वंश-परम्परा से निश्चित होता था लेकिन गणतन्त्रीय तत्त्व भी जातक में स्थल-स्थल पर उपलब्ध होते हैं। उलूक जातक में राजा के चुनाव का उल्लेख हुआ है जो गणतन्त्रीय व्यवस्था को सूचित करता है। तेलपत्त जातक से पता चलता है कि कभी-कभी अमात्य और नगरनिवासी किसी चरित्रवान् एवं न्यायप्रिय व्यक्ति को राजा चुन लिया करते थे।

चरित्र की दृष्टि से जातक में सभी प्रकार के राजाओं का वर्णन आता है। बाहिय जातक में राजा ने मल-विर्सजन करती हुई महिला को देखकर, उसके ढंग पर आसक्त होकर उसे पटरानी पद प्रदान कर दिया था। अपने पिता के साथ क्षत्रिय कन्या के स्थान पर दासी पुत्री ब्याह देने के कारण विडूडभ ने शाक्य जनपद में अनेक निर्दोषों की जानें लीं। चुल्लधम्मपाद जातक में राजा ने रानियों का सम्पूर्ण प्यार पाने के लिए नशे में अपने एकमात्र शिशु को भी मरवा दिया था। अन्तपुर में रानियां अनेक होती थी। परिणामतः वे परपुरुषों पर आसक्त रहती थी। पब्बत्-पत्थर जातक में रानी की विलासिता एवं व्यभिचार का पूरा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चित्र अंकित किया गया है।

जातक से तत्कालीन राजनीति की अनेक घटनाएं स्पष्ट हो जाती हैं। हरितमात तथा बड्ढकिसूकर जातक की प्रत्युत्पन्नवस्तु से मगध एवं कोसल का संघर्ष तथा अन्त में एकता की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है। कोसलनरेश महाकोशल ने अपनी लड़की कोसला देवी का विवाह बिम्बसार के साथ किया था और स्नानचूर्ण (दहेज) के रूप में काशी गांव दिया था, जिससे प्रतिवर्ष एक लाख रुपये की आय होती थी। अजातशत्रु द्वारा पिता की हत्या कर देने पर कोसला देवी पतिशोक से अभिभूत हो शीघ्र ही परलोक सिधार गयीं। महाकोसल के पुत्र प्रसेनजित को भागिनेय अजातशत्रु का यह कृत्य बुरा लगा। परिणामतः उसने युद्ध का आह्वान किया। बूढ़ा प्रसेनजित कभी जीतता और कभी हारता। अन्त में वह जीत गया और अजातशत्रु को बन्दी बना लिया। अन्त में उसने अपनी पुत्री वजिरा देवी का विवाह अजातशत्रु के साथ करके काशी को स्नानचूंर्ण के रूप में अर्पित किया। इस विवाह के साथ ही मगध और कोसल का संघर्ष समाप्त हुआ। रुक्खधम्म तथा कुणाल जातक की प्रत्युत्पन्नवस्तु में रोहिणी नदी के पानी को लेकर शाक्य तथा कोलियों के पारस्परिक संघर्ष का वर्णन है। कहा गया है कि यह संघर्ष बुद्धदेव के हस्तक्षेप से समाप्त हुआ था। चम्पेय्य जातक से पतां चलता है कि उत्तर पंचाल के कुरु और पञ्चाल वंशों में संघर्ष रहता था। यह प्रदेश कभी कुरुवंशियों के हाथ में आ जाता था और कभी पंचालवंशियों के। वत्सराज उदयन और आम्रपाली की कथाएं भी जातक से स्पष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार जातक में तत्कालीन प्रमुख राजनीतिक घटनाओं पर काफी प्रकाश पड़ता है।

जातक में नगरों एवं नदियों का भी महत्त्वपूर्ण वर्णन आया है। महाजनक जातक में मिथिला का सुन्दर वर्णन किया गया है। तण्डुलनालि जातक में वाराणसी के प्राकार का वर्णन हुआ है। कुसजातक में मल्लराष्ट्र की राजधानी कुसावती (कुशीनारा, वर्तमान कसया) का वर्णन मिलता है। कुरुधम्मजातक से पता चलता है कि अचिरवती नदी श्रावस्ती में होकर बहती थी। चम्पेय्य जातक में सूचना मिलती है कि चम्पा नदी मगध और अंग राज्यों की सीमा पर बहती थी। इस प्रकार जातक से अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं जो राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ग) आर्थिक जीवन

इस काल में उत्तरभारत का सम्पर्क दक्षिण भारत तथा संसार के अन्य देशों से होने लगा था जिससे यहां के जन-जीवन में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। मुद्रा के चलन से व्यापार में क्रान्तिकारी प्रगति आयी, लेकिन इसका लाभ कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रहा, परिणामतः धनी एवं निर्धन दो वर्ग बन गये। साथ ही वैदिकयुगीन ग्रामीण भारत दो भागों में विभक्त हो गया-शहर एवं देहात। देहात में कृषि तथा उस पर आधारित व्यवसाय पनपने लगे और शहरों में उद्योग-धन्धे।

ग्रामों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। कृषक लोग जौ, चावल, मूंग, तिल आदि की खेती करते थे। फसल की रक्षा के लिए अनेक उपाय किये जाते थे। फसल पकने पर चोरों तथा जंगली पशुओं से रक्षा के निमित्त पहरा भी दिया जाता था। ये लोग खेती के साथ पशुपालन भी करते थे। गौ, बैल, भेड़, बकरी, घोड़े आदि पाले जाते थे। घरों में तोता और मुर्गा भी पालते थे। ये फलवाले वृक्ष भी लगाते थे और मधुमक्खी आदि की भी रक्षा करते थे।

कृषक छोटे-छोटे ग्रामों में रहते थे। इन ग्रामों में प्रायः सभी जातियों के लोग रहते थे, किन्तु कुछ गांव ऐसे भी होते थे जिनमें प्रायः एक ही जाति वाले निवास करते थे। जातक में एक ऐसे ग्राम का भी उल्लेख़ मिलता है जहां सभी डाकू थे। गांवों में कृषि पर आधारित जीविका वाले व्यक्ति, जैसे लोहार, कुम्हार, नाई, तेली आदि भी निवास करते थे। ये फसल आने पर अन्नादि के रूप में अपना पारिश्रमिक लेते थे, नकद नहीं। ये सहायक भी पशुपालन करते थे। जातकयुगीन ग्राम प्रायः सम्पूर्ण थे, वे अपनी आवश्यकरता की प्रायः सभी वस्तुएं वहीं उत्पन्न करते थे। बहुत कम सामान शहर से लाना पड़ता था।

नगरों की आर्थिक स्थिति ग्रामों की अपेक्षा अच्छी थी, लेकिन वहां सभी व्यक्ति धनी हों-ऐसा नहीं था। जो लोग व्यापार करते थे वे बहुत सम्पन्न थे, शेष साधारण स्थिति वाले ही थे।

नगर में सभी प्रकार के व्यक्ति रहने से, उनका रहन-सहन एवं सामाजिक स्तर भी भिन्न होता था। धनी वर्ग के व्यक्ति पत्थर के आलीशान मकान बनाकर रहते थे। मध्यमवर्गीय व्यक्ति मिट्टी-पत्थर के मकानों पर लकड़ी या पत्थर की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection.

छत बनाकर रहते थे। निर्धन व्यक्तियों के मकानों पर घास-फूंस का छप्पर ही शोभता था। कहीं-कहीं एक मौहल्ले में एक ही वर्ग के लोग निवास करते थे और कहीं मिश्रित रूप में भी। शूद्र, चाण्डाल ओर पुक्कस प्रायः बस्ती से बाहर रहते थे। इनकी झौंपड़ियां छप्पर और लकड़ियों की बनी होती थीं। ये पशुपालन करते थे और छुट-पुट शिकार भी कर लाया करते थे।

नगरों में कुटीर-उद्योग विकसित हो चले थे। वस्त्र उद्योग इनमें प्रमुख था। सूती, ऊनी और रेशमी तीनों ही प्रकार के वस्त्र बनाये जाते थे। परुष्णी नदी का तटवर्ती प्रदेश श्रेष्ठ ऊनी कपड़े के लिए प्रसिद्ध था। गान्धार के चिकने एवं नरम ऊनी वस्त्र चारों ओर प्रसिद्ध थे। सिन्धुप्रदेश ऊनी वस्त्रों के अतिरिक्त, सुन्दर घोड़े तथा मजबूत रथों के लिए भी विख्यात था। महीन रेशमी वस्त्र के लिए वाराणसी प्रसिद्ध हो चला था। भिक्षुओं के लिए पृथक् वस्त्रनिर्माण भी होने लगा था। शिल्प में विशेष प्रगति का एक कारण शिल्पशिक्षा का नियोजित अध्ययन भी था।

व्यापार की दृष्टि से यह काल भारतवर्ष का स्वर्णयुग था। उत्तरभारत से माल लदकर न केवल भारत के सुदूर कोनों में जाता था, बल्कि जलमार्ग से विश्व के दूरस्थ देशों में भी जाता था। वैश्य लोग देश के दूरस्थ भागों को गाड़ियों से माल भेजते थे। ये कई-कई गाड़ियों का सार्थ लेकर चलते थे। गर्मी से बचने के लिए सार्थ रात्रि को यात्रा करते थे और ग्रह-नक्षत्रों से दिशा-निर्देश प्राप्त करते थे। मार्गदर्शन के लिए अगली गाड़ी पर अनुभवी व्यक्ति बैठता था जिसे देशकाल एवं नक्षत्रविज्ञान का अच्छा ज्ञान होता था। सेठ अनाथपिण्डिक के शकटसार्थ श्रावस्ती से राजगृह तक लगभग तीन सौ मील का मार्ग तय करते थे। इसी प्रकार कुशीनारा और प्रतिष्ठान तक शकट-सार्थ आते-जाते रहते थे। ये बीच-बीच में पड़ाव भी डालते थे जिनका स्थान सुनिश्चित होता था।

समुद्र-मार्ग से दूरस्थ देशों से व्यापार होता था। बावेरुजातक और सुसन्धिजातक से पता चलता है कि उन दिनों भारतीय व्यापारी बर्मा, मलाया (स्वर्णभूमि), बावेरु (बैवीलोन, वर्तमान इराक) तक व्यापार करते थे। भरुकच्छ (वर्तमान भडौंच, गुजरात) और शूर्पारक (वर्तमान सोपारा) कोंकण के दो प्रसिद्ध पत्तन थे जो समस्त समुद्रमार्गीय व्यापार ले जाते थे और उधर से सोना, चांदी,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हीरा मूंगा नीलम, मणि, मोती आदि लेकर लौटते थे। भरुकच्छ जातकयुग का प्रसिद्धतम बन्दरगाह था।

छोटे-छोटे व्यापारी गधे एवं घोड़ों पर माल लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान बेचते फिरते थे। इनकी स्थिति आजकल के फेरीवाले व्यापारियों जैसी थी। ये छोटी पूंजी से व्यापार प्रारम्भ करते और लखपति हो जाते थे। जातक में मृत चूहे से व्यापार करके लखपति हो जाने का उल्लेख है जो छोटी पूंजी के व्यापार की ओर ही इंगित करता है। ये आवश्यकतानुसार घोड़े, बैल, कुत्ते, गाड़ियां आदि भी खरीद लिया करते थे।

मुद्रा के प्रचलन से व्यापार का क्षेत्र तो बढ़ ही गया था, लाभ भी बढ़ गया था। २००% से ४००% लाभ प्राप्त करने वाले व्यापारी भी जातक में मिल जाते हैं और राजा के मूल्यनिर्धारण अधिकारी को रिश्वत देने वाले भी। परिणामतः एक ओर व्यापारी वर्ग लखपति और करोड़पति बन गया और विलासिता से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगा तो दूसरी ओर उत्पादक वर्ग को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। जातक में चोरी-डकैतियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ने का कदाचित् यही रहस्य है। धन की अधिकता ने व्यापारी वर्ग का जीवन कामुकता एवं विलासिता से परिपूर्ण कर दिया। बालाहस्स जातक में नाव टूट जाने पर व्यापारियों को यक्षिणियों के साथ विलासमग्न दिखाया गया है। अनाथपिण्डिक ने जेतवन को स्वर्णमुद्राएं बिछवाकर खरीदा था जो उसके मुद्राधिक्य को सूचित करता है और परोक्षतः व्यापार-लाभ को भी।

जातक में भारत की समृद्धि के ही नहीं, अभाव के भी चित्र हैं। कुछ व्यक्ति अति निर्धन थे। ऐसे व्यक्ति अपनी स्त्री एवं बच्चों को धरोहर रूप में रखकर महाजन से ऋण प्राप्त करते थे। कभी-कभी धन लेकर व्याज के रूप में लड़कों को चाकरी के लिए सौंप देते थे। यहीं से बन्धक मजदूरों की प्रारम्भ हो जाता है जो आज तक न्यूनाधिक किसी न किसी रूप में मिल जाते हैं।

(घ) धार्मिक जीवन

बौद्धयुग से पूर्व भारत में तीन प्रकार के धर्मानुयायी विद्यमान थे-प्रथम मोक्षमार्गी थे जो गृह त्यागकर वन में रहते थे और ज्ञान की साधना करते थे। उपनिषद् और आरण्यक ग्रन्थ इनके स्वाध्याय के विषय थे। यह परम्परा ऋग्वेद

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

तक से जुड़ी हुई है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' यह पंक्ति इसी पथ के पथिकों की दिशा स्पष्ट करती है। द्वितीय वर्ग कर्मकाण्ड में विश्वास रखता था। ये यज्ञादि करते थे। ब्राह्मण इस वर्ग के नेता थे। यहां यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बुद्ध से बहुत पहले भागवद्धर्म का प्रारम्भ हो चुका था जिसका नेतृत्व भगवान् कृष्ण ने किया। भागवद्धर्म के प्रभाव से पशु-बलियाँ प्रायः बन्द ही हो चुकी थीं। कृष्ण ने पशुबलियों को रोककर पशुपालन की ओर जनता को प्रवृत्त किया। कर्मकाण्ड का स्थान सत्कर्म तथा निष्काम कर्म ने लिया। फिर भी बुद्धदेव ने समाज से ब्राह्मणों का वर्चस्व समाप्त करने के लिए यज्ञों का खण्डन किया, द्विजों में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के स्थान पर क्षत्रियों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। इससे बौद्धधर्म को तो समस्त जनता अंगीकार नहीं कर पायी लेकिन भागवद्धर्म को क्षति अवश्य पहुंची। जातक में इस भागवद्धर्म का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यही है कि ये बौद्धों के प्रतिद्वन्दी थे और आगे चलकर इस वर्ग के विप्रवृन्द से टकराकर ही बौद्धधर्म भारत से समाप्त हो गया। तृतीय वर्ग के व्यक्ति यक्ष, नाग, किन्नर आदि उपदेवताओं, भूत पिशाच, राक्षस आदि अपदेवताओं एवं वृक्षदेवताओं की पूजा करते थे। बौद्धधर्म के प्रभाव से जातक में केवल प्रथम एवं तृतीय वर्ग के अनुयायियों का ही उल्लेख मिलता है।

मोक्षमार्गियों में जैन एवं बौद्ध भिक्षुओं का उल्लेख मिलता है। ये गृह त्यागकर भिक्षु बन जाते थे और भिक्षा द्वारा जीवनयापन करते थे। जैन एवं बौद्ध भिक्षु सत्कर्म एवं सदाचार को ही प्रमुखता देते थे, किन्तु शास्त्रीय ज्ञान का उनमें प्रायः अभाव रहता था। निग्गंठनाथपुत्त जैनधर्म के संस्थापक महावीर स्वामी भी इसी वर्ग में थे। चुल्लवग्ग के प्रमाण पर कहा जा सकता है कि ब्राह्मण परिव्राजक बड़े विद्वान् एवं वाद-विवाद में अजेय होते थे। पूरण कस्सप, मंखलिगोसाल, अजितकैस कम्बलि, पकुध कच्चायन, संजय बेलट्ठपुत्त आदि प्रभावशाली आचार्य थे। इनके दार्शनिक मतों का खण्डन जातक में यत्र-तत्र मिल जाता है, लेकिन यह साम्प्रदायिक भाव से परिपूर्ण है। जनसाधारण में इनका पर्याप्त प्रभाव था। पूरणकस्सप के तो अस्सी हजार अनुयायी थे। भरद्वाज, पोक्खसाति, वासेट्ठ, जाणुस्सोयि, तोदेय्य आदि वेदों के पारंगत विद्वान् थे। इनके आज उल्लेखमात्र मिलते हैं, विशेष विवरण नहीं। ब्राह्मणों का खुलकर विरोध करने पर भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उनका वर्चस्व बना हुआ था जिनके समक्ष स्वयं बुद्धदेव भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नतशिर होते थे। उच्चशिक्षा में बुद्ध के पास उनका कोई स्थानापन्न ही नहीं था। अतः विद्वानों एवं दार्शनिकों में ब्राह्मणों की संख्या बहुत अधिक थी।

जातक-कथाओं से स्पष्ट होता है कि उस युग का समाज उपदेवताओं, अपदेवताओं एवं वृक्षदेवताओं की पूजा-अर्चना में लगा हुआ था। जनसाधारण प्रेतों एवं यक्षों से आतंकित था। चमत्कार-प्रदर्शन को व्यापक महत्त्व प्राप्त था। प्रेतों एवं यक्षों की पूजा की जाती थी। नगर में उत्सव मनाया जाता था और चौराहों पर मत्स्यमांस और मदिरा रखवा दी जाती थी जिससे यक्ष एवं प्रेत उनकी पूजा को ग्रहण कर सकें। ये यक्ष बहुत भयंकर एवं शक्तिशाली होते थे। ये मानवों को मारकर खा जाते थे। कहीं-कहीं यक्षों को प्रसन्न रखने के लिए प्रतिदिन एक व्यक्ति भक्षणार्थ भेजा जाता था। यक्षिणियां भी अपने रूपजाल में पुरुषों को फंसा लेती थीं और मारकर खा जाती थीं। वालाहस्सजातक से यक्षनगर का भी पता चलता है। राक्षसों एवं नागों का भी भयंकर वर्णन मिलता है। ये स्त्रियों पर मोहित होकर उन्हें पत्नी भी बना लेते थे और मारकर भी खा जाते थे। किन्नर प्रेमी स्वभाव के होते थे। ये सुन्दर पत्नियों के साथ नृत्य-गान में रत और प्रेमान्मत्त रहते थे। किसी का अहित करना या मांस-भक्षण इनके स्वभाव के विपरीत था। गरुड़, नाग और शक्र (इन्द्र) भी जातक में उपलब्ध होते हैं। जनसाधारण नागों एवं यक्षों से केवल आतंकित ही नहीं था, बल्कि रचनात्मक कार्यों में सहयोग की भी अपेक्षा रखता था। पशु-बलि या सुगन्धित पुष्पों से उनकी पूजा करके, उनसे पुत्र-पुत्री, धन, यश, आदि की कामना करते थे। यक्षों एवं भूतों को अनायास धन-प्राप्ति का भी साधन माना जाता था।

उपदेवताओं एवं अपदेवताओं के अतिरिक्त वृक्षों को भी पूजा की जाती थी। पीपल और वट को व्यापक गौरव प्राप्त था। इन्हें काटना अपकार्य माना जाता था। लोग इनकी पूजाकर, इनसे कामनाएं भी करते थे। दुम्मेधजातक में वृक्षपूजा, बलिकर्म, मनोकामना आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है।

जातक में तैर्थिक शब्द का अनेक बार उल्लेख हुआ है। इससे स्पष्ट है कि उस समय भी तीर्थाटन को विशेष महत्त्व दिया जाता था और धार्मिक व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर तीर्थयात्राओं के कार्यक्रम बनते रहते थे। कुछ व्यक्ति साधु-सन्तों में भी अगाध श्रद्धा रखते थे और कष्टों के निवारण के लिए उनकी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शरण लेते थे। सुप्रवासा ने प्रसवपीडा से मुक्ति पाने के निमित्त अपने पति को गौतमबुद्ध की शरण में भेजा था। सुजाता का खीर खिलाना भी इसी दृष्टि का परिणाम कहा जा सकता है। लेकिन बौद्धभिक्षुओं की भीड़ बढ़ने से सन्तों का सम्मान समाप्त हो गया था और उनका प्रातःदर्शन अशुभ माना जाने लगा था।

रचनाकार एवं रचनाकाल

जातकट्ठकथा का रचयिता, संग्रहकर्ता व अनुवादक कौन है-यह अभी रहस्य बना हुआ है। 'महावंस' में लिखा है कि अभिधम्म के प्रथम ग्रन्थ 'धम्मसंगणि' पर 'अत्थसालिनी' टीका लिख चुकने के उपरान्त आचार्य बुद्धघोष भारत से लंका गये। उनके लंका-गमन का उद्देश्य था-सिंहलभाषा में लिपिबद्ध अट्ठकथाओं का पालि रूपान्तर करना। 'विसुद्धिमग्ग' ग्रन्थ की रचना द्वारा अपनी योग्यता प्रमाणित कर देने पर अनुराधपुर के महाविहार के भिक्षुओं ने उन्हें अट्ठकथाओं के पालि-रूपान्तरण की अनुमति दे दी। ग्रन्थ के अनुसार सारी अट्ठकथाओं का उन्होंने ही अनुवाद किया। यहां 'सारी अट्ठकथाओं' के अनुवाद की बात भ्रमोत्पादक है क्योंकि खुद्दकनिकाय के कई ग्रन्थों-थेरीगाथा, थेरीगाथा, उदान, विमानवत्थु, पेतवत्थु, इतिवुत्तक और चारियापिटक-पर जो अट्ठकथाएं उपलब्ध होती हैं, वे आचार्य बुद्धघोष की न होकर, महास्थविर धम्मपाल की हैं, जो निश्चय ही उनसे परवर्ती थे। यद्यपि 'महावंस' जातकट्ठकथा का रचनाकार आचार्य बुद्धघोष को ही स्वीकारता है लेकिन यह सन्दिग्ध ही है। डा० (श्रीमती) रीज़ डेविड्स भाषा शैलीविषयक विभिन्नता तथा कुछ अन्य प्रमाण देते हुए जातकट्ठकथा के रचनाकार के रूप में आचार्य बुद्धघोष को असिद्ध करती हैं। उनके खण्डन को एक अन्तःसाक्ष्य भी प्राप्त है। स्वयं जातकट्ठकथा के उपोद्घात में लेखक ने अपना परिचय देते हुए कहा है-"x x x एकान्तप्रेमी शान्तचित्त पण्डित बुद्धिमित्त और महिंशासक वंश में उत्पन्न, शास्त्रज्ञ, शुद्धबुद्धि भिक्षु बुद्धदेव के कहने से महापुरुषों के चरित्र के अनन्यप्रभाव को प्रकट करने वाली जातकट्ठकथा की महाविहार के मत के अनुसार व्याख्या करूँगा।" महिंशासक सम्प्रदाय स्थविरवाद से निकाला हुआ एक सम्प्रदाय है जबकि महाविहार परम्परा शुद्ध स्थविरवाद को मानने वाली ही रही है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि जातकट्ठकथा के लेखक आचार्य बुद्धघोष न होकर, कोई अन्य सिंहली भिक्षु थे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

त्रिपिटक में जिस जातकग्रन्थ का समावेश है वह केवल गाथाओं का संग्रहमात्र है। जातक अर्थात् केवल गाथाओं से इस ग्रन्थ का प्रयोजन पूर्ण नहीं होता। यदि पाठक को कथाएं याद हैं तो वह जातकों (गाथाओं) का लाभ उठा सकता है, अन्यथा नहीं। परम्परा मानती है कि केवल गाथाएं ही बुद्धवचन हैं, शेष कथादि आवरण संगीतिकारों की रचना है, अतः परवर्ती सृष्टि है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि जातक (मात्र गाथाओं) से जातकट्ठवण्णना या जातकट्ठकथा (पांचों अंगों सहित) तक पहुंचने में शताब्दियों का समय अवश्य लगा होगा। इस प्रकार जातकट्ठकथा में जातक (गाथा भाग) सर्वाधिक प्राचीन सिद्ध होता है। लगभग यही समय गाथाओं के व्याख्या-भाग (अथवर्णना) का भी होना चाहिए। प्रत्युत्पन्नवस्तु तथा अतीतवस्तु की रचना बाद में हुई होगी।

सबसे पहले जातक की अनेक कथाओं को भरहुत के स्तूपों पर अंकित पाते हैं। चूंकि यह चित्रांकन गाथाओं के आधार पर सम्भव नहीं है, बल्कि अतीतवस्तु के आधार पर सम्भव है, इसलिए यह सिद्ध हो जाता है कि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक इन जातक-कथाओं को पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी थी। भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने भरहुत के स्तूपों में तीस से अधिक जातक-दृश्यों का चित्रांकन माना है। सांची के स्तूप भी लगभग इसी काल के हैं और उन पर भी जातक-कथाओं के दृश्य अंकित हैं। अतः स्पष्ट हो जाता है कि जातकों का रचनाकाल ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी से ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक माना जा सकता है। यहां यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सभी जातक-कथाएं एक समय की रचित नहीं हैं। दूसरी संगीति के अवसर पर अनेक जातक-कथाओं को अप्रामाणिक माना गया था। इससे स्पष्ट है कि जातक-कथाओं में परिवर्द्धन बुद्ध की मृत्यु के बहुत बाद तक चलता रहा था। त्रिपिटक के अंगभूत चुल्लनिद्देस में इनकी संख्या पांच सौ ही दी गयी है, जबकि वर्तमान जातक में इनकी संख्या ५४७ है।

उक्त विवेचन से यही सिद्ध होता है कि परम्पराप्राप्त तथ्य, कि जातक-कथाओं के लेखक आचार्य बुद्धघोष हैं, बहुत ग्राह्य नहीं है। वे किसी अन्यकृती की रचनाएँ हैं। उनका रचनाकाल रहस्य ही बना हुआ है। जहां तक रचनाकाल की बात है न तो सभी जातक एक ही काल में रचे गये हैं और न एक ही जातक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के सभी अंग एक काल में पूर्ण हुए हैं। इनका प्रणयन बुद्धदेव के समय से ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी तक चलता रहा। इन कथाओं में निश्चय ही कुछ बुद्धपूर्व समाज में प्रचलित अवश्य थीं और कुछ का परिवर्द्धन ईसा की शताब्दी के पश्चात् भी हुआ है। त्रिपिटक के विषय में कहा गया, भदन्त आनन्द कौसल्यायन का यह वाक्य जातक के विषय में भी सत्य सिद्ध होता है-"सारे त्रिपिटक में वा नौ अंगों वाले बुद्ध वचन में, कितना वास्तव में बुद्ध या उनके शिष्यों का उपदेश है और कितना पीछे का भर्ती, कहना कठिन है।"

जातक तथा अन्य भारतीय साहित्य

जातक में बुद्धेतर साहित्य के जो साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, वे काफी महत्त्वपूर्ण हैं। बौद्धधर्म के पक्षधरों का विचार है कि जातक, वैदिक साहित्य एवं महाकाव्यों के मध्यवर्ती काल की रचना है। उनका तर्क यह है कि जातक में राम एवं कृष्ण की कथाएं अपरिष्कृत रूप में उपलब्ध होती हैं जो सम्भवतः रामायण एवं महाभारत की रचना से पूर्ववर्ती हैं। यहां इन पर संक्षिप्त विचार कर लेना चाहिए।

रामायण की कथा कुछ जातकों में उपलब्ध होती है। देवधम्मजातक तथा दसरथजातक रामकथा की पूरी रूपरेख प्रस्तुत कर देते हैं। दसरथजातक में रामकथा इस प्रकार है-सोलह हजार रानियों के पति दशरथ की पट्टमहिषी से तीन सन्तानें थीं-राम, लक्ष्मण और सीता। उसकी मृत्यु के उपरान्त दशरथ ने भरत की माता को यह पद प्रदान किया। सौन्दर्याभिभूत होकर दशरथ ने भरतजननी को एक वर दिया जिससे कालान्तर में उसने भरत को राज्य मांग लिया। राजा ने अनिष्ट की आंशका से, ज्योतिषियों से अपनी बारह वर्ष आयु शेष जानकर, अपनी तीनों सन्तानों को वन भेंज दिया और मरणोपरान्त राज्य प्राप्त करने का आदेश दिया। दशरथ नौ वर्ष बाद ही काल-कवलित हो गये। भरतजननी अमात्यों के विघ्न के कारण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकी। भरत राम को लौटाने गये, लेकिन वे पिता की आज्ञावश तीन वर्ष और वनवास के पश्चात् ही लौटने को तैयार हुए। भरत पादुका लेकर लौट आये। तीन वर्ष पश्चात् राम का राज्याभिषेक हुआ और उनकी बहिन सीता को उनकी पटरानी बनाया गया। देवधम्मजातक और महाभारत के यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में बहुत

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

साम्य है। ऋषि शृंग की सम्पूर्ण कथा नलिनिकाजातक में आयी है। दसब्राह्मण जातक में युधिष्ठिर और विदुर का संवाद है। कुणालजातक में कृष्ण एवं द्रौपदी की कथा आयी है। घटजातक में कृष्ण-जन्म से लेकर कंस का वध तथा द्वारका बसाने का उल्लेख है, इसमें चाणूर और मुष्टिक पहलवानों के वध जैसी छोटी-छोटी घटनाओं का भी उल्लेख है। कट्ठहारिजातक की कथा अभिज्ञानशाकुन्तल से बहुत साम्य रखती है। महाकण्डजातक में कृष्ण, निमिजातक और महानारदकस्सप जातक में जनक की कथा वर्णित है, यहां भी जनक को वीतराग एवं निर्लिप्त दिखाया गया है। इसी प्रकार अन्य कथाएं भी ऐसी हैं जो आर्षग्रन्थों से साम्य रखती हैं लेकिन सबको यहां देना उपयुक्त न होगा। उल्लिखित कथाओं में भी केवल रामकथा का ही विवेचन करना है अतः उसी का संक्षिप्त सार दिया गया है।

बौद्ध विद्वान् भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने दसरथजातक की अनेक गाथाओं की रामायण के श्लोकों से तुलना की है और जातक की अपरिष्कृत कथा को रामायण की उपजीव्य सिद्ध करने का प्रयास किया है। डा० बेवर और दिनेशचन्द्र सेन ने भी दशरथजातक को रामकथा का आदिस्रोत माना है। यहां विचार करने की बात यह है कि वैदिककाल से लेकर आज तक सम्पूर्ण आर्य-साहित्य में कहीं भी सहोदरा बहिन के साथ विवाह की बात नहीं मिलती। निश्चय ही यह आर्य-मर्यादा के विपरीत बात है। फिर इस कथा में ऐसा कौन सा आकर्षण है जो आर्य-मर्यादा की विरुद्ध कथा को लेकर वाल्मीकि जी ने मर्यादा-पुरुषोत्तम का स्वरूप खड़ा किया? कल्पना का प्रयोग वे अन्य कथा लेकर भी कर सकते थे। जनसाधारण में चरित्रहीनता के लिए प्रसिद्ध पात्र को लेकर कोई भी कवि क्या महान् चारित्र्य की स्थापना कर सकता है? यदि वह इसका प्रयास भी करे तो कितनी जनता उस प्र विश्वास कर सकेगी? वस्तुतः बात ऐसी नहीं हे जैसी कि उक्त विद्वानों की धारणा है। वास्तविकता यह है कि अपने धर्मप्रचार के मार्ग को निष्कण्टक बनाने के लिए जिस प्रकार बौद्धमतावलम्बियों ने ब्राह्मणों को सुनियोजित ढंग से पतित दिखाने का प्रयास किया है, उसी प्रकार राम और कृष्ण के चरित्र को भी गिराया है जिससे हिन्दुओं की आस्था न ग्रन्थों पर रहे और न अपने धार्मिक नेताओं पर। जिस व्यक्ति का कोई धर्म न हो, उसे सरलतापूर्वक किसी भी धर्म में दीक्षित किया जा सकता है। राम और कृष्ण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के चरित्र-पतन में बौद्धों का यही षड्यन्त्र है। अन्य कथाओं को लेकर भी यह सिद्ध किया जा सकता है, लेकिन इतना ही पर्याप्त है।

बौद्धों के इस सुनियोजित षड्यन्त्र को एक अन्य प्रकार से भी समझा जा सकता है। आर्य-साहित्य से कथासाम्य रखने वाले प्रायः सभी जातक चार सौ से बाद वाले हैं। ये जटिल एवं व्यस्त कथानक से सम्पन्न तथा अनेक गाथाओं से समन्वित हैं। ये सभी परवर्ती भिक्षुओं की निर्मिति हैं। द्वितीय संगीति में संगीतिकारों ने जातक के अनेक अंशों को प्रामाणिक नहीं माना था। वे सम्भवतः यही जातक थे। वैसे भी लम्बे कथानक वाले जातक बुद्धदेव के मूल प्रयोजन को सिद्ध नहीं करते। बुद्धदेव अनेक उपमाओं और दृष्टान्तों को लेकर धर्म का उपदेश देते थे। धर्मोपदेश में लघु कथाएँ एवं उपमाएँ ही सहायक सिद्ध हो सकती हैं, विशाल कलेवर एवं जटिल कथानक वाले ये जातक नहीं। निश्चय ही ये परवर्ती भिक्षुओं की सृष्टि हैं जो हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा समाप्त करने के लिए उन्हीं की कथाओं पर आधारित हैं।

पालि-साहित्य एवं बौद्धधर्म के इन विचारकों ने केवल रामायण एवं महाभारत पर जातक-साहित्य के प्रभाव का ही विचार नहीं किया, बल्कि अनेक परम्परास्वीकृत तथ्यों को भी अमान्य घोषित किया है। स्वर्गीय धर्मानन्द कोसाम्बी महाभारत को रामायण से पहला मानते हैं और अपने मत के समर्थन में अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अयोध्या के भारतीय होने पर भी उन्हें प्रश्नचिह्न लगाना ही अधिक उचित प्रतीत होता है। खेदजनक तथ्य है कि ये बौद्धाचार्य जितनी सूक्ष्मता एवं तार्किकता अन्य धर्म से सम्बद्ध साहित्य के प्रसंग में दिखाते हैं उतनी अपने धार्मिक साहित्य के प्रसंग में नहीं। बौद्ध एवं जैनधर्म पुरातन ब्राह्मण धर्म या भागवद्धर्म, जिसे आज हिन्दू धर्म कहा जाता है, की ही विद्रोही शाखाएं हैं जो किसी एक तथ्य पर विशेष बल देती हैं। अतः उनके साहित्य का मूल्यांकन भी सहृदयता की अपेक्षा रखता है। जहाँ रामायण के पूर्ववर्ती या परवर्ती अथवा रामायण की अयोध्या का प्रश्न है, ये प्रश्न साहित्य के अन्तर्गत कम, इतिहास के अन्तर्गत अधिक आते हैं। अतः इनका निर्णय करना इतिहासकारों का दायित्व है। साहित्य अध्येता को अयोध्या की स्थिति की अपेक्षा रामायण को अधिक प्रामाणिक मानना चाहिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महत्त्व

जातक-साहित्य कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसकी अधिकांश कथाएँ मानव-बुद्धि को प्रखर बनाने वाली हैं। यदि मानव को लोकज्ञान करना है, यदि सरस कथाओं से बुद्धिकौशल अर्जित करना है, तो जातक बहुत उपयुक्त ग्रन्थ हैं। कृतज्ञता-कृतघ्नता, प्रत्युपकार-प्रत्यपकार, नारी-स्वभाव, शठ के साथ शठता, मित्र-लक्षण, मातृभूमिप्रेम, बुद्धिचातुर्य आदि से सम्बद्ध अनेक कथाएँ जातक में उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त दान की विशेषताएँ, भोजन की मात्रा, स्वास्थ्य की महत्ता, व्यूह-रचना आदि अनेक विषय बहुत ही सरल ढंग से समझाये गये हैं जो मानव को व्यवहार-कुशल एवं प्रखरबुद्धि बनाते हैं। किन परिस्थितियों में क्या निर्णय लेना चाहिए-यदि यह समझना है तो जातक के पारायण से सुन्दर उपाय नहीं। मानव-जीवन का कोई भी पहलू इन कथाओं से अछूता बचा नहीं प्रतीत होता।

देश की तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को समझने में भी जातक का महत्त्व असन्दिग्ध है। यहां ये सभी बातें प्रासंगिक रूप से आयी हैं, इसलिए इनकी सत्यता एवं महत्ता और भी बढ़ गयी है। समाज का जितना व्यापक चित्रण इस ग्रन्थ में हुआ है, उतना कदाचित् भारतीय साहित्य के किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं। बुद्धकालीन अनेक राजाओं के काल-निर्णय, घटना की सत्यता एवं देश-विदेश के सम्बन्धों का ज्ञान कराने में इस ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उस समय के विभिन्न मार्गों, यातायात के साधनों तथा देश-विदेश के व्यापार का ज्ञान कराने वाला यह गौरव ग्रन्थ है।

यदि मनोरंजन की दृष्टि से देखा जाये तो जातक अनुपम ग्रन्थ है। महाभारत-रामायण की कथाएँ लम्बी, जटिल एवं क्लिष्ट होने के कारण बालजगत् के लिए इतनी उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकतीं। इस दृष्टि से जातक की तुलना हितोपदेश एवं पंचतन्त्र की कथाओं से ही की जा सकती है। यदि बच्चों में इन कहानियों का व्यापक प्रचार किया जाये तो मनोरंजन तो होगा ही, साथ ही उनकी निर्मल बुद्धि नैतिक उपदेश भी ग्रहण करेगी। ये कथाएँ लघुकाय एवं सरल होने से उनके मस्तिष्क पर भार भी नहीं होंगी।

इस प्रकार बुद्धि को प्रखरता देने, मनोरंजन के साथ नैतिक उपदेश देने तथा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

तत्कालीन भारतीय समाज से परिचय कराने की दृष्टि से जातक का महत्त्व असन्दिग्ध है। भदन्त आनन्द ही कौसल्यायन ने 'जातक' प्रथम खण्ड की 'वस्तुकथा' में ठीक ही लिखा है--

"यदि मनोरंजन के साथ-साथ उपदेश ग्रहण करना हो, यदि हृदय को उदार और शुद्ध बनाने वाली कथाओं के साथ-साथ बुद्धि को प्रखर बनाने वाली कथाएँ पढ़नी हों, यदि अपने देश की प्राचीन आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था से परिचित होना हो, तो जातक-कथाओं से बढ़कर किसी दूसरे साहित्य की सिफारिश नहीं कर सकते।"[१]

***

(१) भदन्त आनन्द कौसल्यायन : जातक (प्रथमखण्ड) कथावस्तु पृष्ठ ६५।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय एकादश

धम्मपद

'धम्मपद' खुद्दकनिकाय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह बौद्धधर्म के सदाचार-मार्ग को स्पष्ट करने वाली अमर कृति है। यह धर्म के जटिल सिद्धान्तों एवं सूक्ष्म साधना मार्ग पर बल न देकर, आडम्बरशून्य नैतिक सदाचार पर बल देती है। धम्मपद ऐसी सरल एवं संक्षिप्त गाथाबद्ध रचना है जिसमें बौद्धधर्म की उन सभी सदाचारविषयक बातों को अभिव्यक्ति मिली है जिसके पालन से व्यक्ति अपने अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होता है।

'धम्मपद' दो शब्दों से मिलकर बना है-धम्म और पद। 'धम्म' शब्द संस्कृत के धर्म का पालि रूपान्तर है। विश्व में धर्म की कभी कोई निश्चित परिभाषा नहीं रही और न सम्भव ही है। भारतीय साहित्य में ही इसका अनेक रूपों में प्रयोग हुआ है। यहां विस्तृत चर्चा से बचकर केवल 'धम्मपद' के प्रसंग में ही विचारना उचित होगा। इस ग्रन्थ में इसका प्रयोग नैतिक सदाचार के अर्थ में हुआ है। दूसरा शब्द 'पद' है। यद्यपि 'पद' शब्द अनेकार्थक है, लेकिन इस ग्रन्थ में इसका प्रयोग मार्ग के अर्थ में हुआ है जैसा कि 'अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुना पदं' से स्पष्ट है। कहीं-कहीं यह वाणी या वचन के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार दोनों शब्दों का समन्वय करने पर 'धम्मपद' का अर्थ निकलता है-बौद्धधर्म का सदाचारविषयक मार्ग या गौतम बुद्ध के सदाचारविषयक वचन।

'धम्मपद' को प्रायः बौद्धों की गीता कहा जाता है। निश्चय ही, हिन्दुओं में 'गीता' को जो सम्मान प्राप्त है वही सम्मान बौद्धमतावलम्बियों में 'धम्मपद' को भी उपलब्ध है लेकिन दोनों की प्रकृति एवं क्षेत्र भिन्न है। जहां श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म की विवेचना की गयी है, वहां धम्मपद केवल सदाचार-विशेषतः सत्कर्म-का ही महत्त्व प्रतिपादित करता है। गीता का दर्शन भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अत्यन्त गहन एवं प्रौढ़ है जबकि धम्मपद बौद्धधर्म की प्रारम्भिक पुस्तक है। इस प्रकार गीता के समक्ष वह नितान्त एकांगी एवं अप्रौढ़ रचना सिद्ध होती है। यही कारण है कि विश्व साहित्य में गीता को जो सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है वह धम्मपद को कदापि प्राप्त नहीं हो सका है, भले ही उसका विश्व की सभी सभ्य भाषाओं में भाषान्तर हो गया है, तथापि बौद्ध धर्म में इसका सम्मान बहुत अधिक है।

धम्मपद भगवान् बुद्ध का सुभाषितरत्न माना जाता है। अतः स्पष्ट है कि इसके रचयिता भगवान् बुद्ध हैं। लेकिन इसमें सन्देह है कि भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश पद्य में दिये हों। जो महापुरुष परिनिष्ठित भाषा संस्कृत का मोह छोड़कर देशगत भाषा में उपदेश देता हो जिससे सभी नागरिक उसका लाभ प्राप्त कर सकें और जो शिष्यों द्वारा उन उपदेशों को संस्कृत रूप देने को भी दुक्कट (अल्प) दोष मानता हो, उसने अपने उपदेश पद्य में दिये होंगे-यह युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। स्वाभाविक यही लगता है कि भगवान् बुद्ध ने तो अपने उपदेश सरल गद्यमें ही दिये होंगे, लेकिन उनके बहुश्रुत एवं विवेकसम्पन्न भिक्षुओं ने स्मरण की सुविधा के लिए उन्हें पद्यबद्ध कर दिया होगा। धर्मसंगीतियों में संगीतिकारों ने उन्हें बुद्धवचन मानकर प्रामाणिकता की मुहर लगा दी होगी। यों तो स्वयं भगवान् बुद्ध द्वारा रचित कोई भी ग्रन्थ नहीं है, परवर्ती भिक्षुओं ने ही उनके वचनों का सम्पादन किया है, इसलिए त्रिपिटक को अक्षरशः बुद्धवचन मानने का दावा तो स्वयं बौद्धों का भी नहीं है।

रचनाकाल

'धम्मपद' के रचनाकाल के विषय में प्रायः दो प्रकार के मत प्रचलित हैं। प्रथम मत पाश्चात्य विचारकों का है जिनमें मैक्समूलर प्रमुख हैं। इनका मत है कि भगवान् बुद्ध प्रवचन मौखिक ही करते थे, उसका कोई लिखित विवरण नहीं रखते थे। उनकी मृत्यु के उपरान्त धर्मसंगीतियों में त्रिपिटक का स्वरूप निर्मित हुआ, लेकिन यह भी मौखिक ही चलता रहा। महावंस के अनुसार त्रिपिटक को लंका में राजा वट्टगामणि अभय के समय (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी) में लिपिबद्ध किया गया। अतः 'धम्मपद' का रचनाकाल ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी की मानना चाहिए।

दूसरा मत भारतीय विचारकों का है। इनका मत है कि गौतम बुद्ध के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिनिर्वाण के तीन मास पश्चात् राजगृह में प्रथम धर्मसंगीति आयोजित की गयी जिसमें धम्मपद का स्वरूप निश्चित हो गया था। द्वितीय एवं तृतीय संगीतियों में संशोधन-संवर्द्धन मात्र हुआ। अतः 'धम्मपद' का रचनाकाल ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी ही सिद्ध होता है।

उक्त दोनों मतों पर विचार करने से 'धम्मपद' का रचनाकाल ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी से ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक विस्तृत दिखता है। इस सुदीर्घ काल से बचने के लिए कुछ बहिःसाक्ष्यों पर विचार कर लेना युक्तिसंगत जान पड़ता है।

१. 'मिलिन्दपञ्ह' बौद्धधर्म की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका रचनाकाल ईस्वी सन् के आसपास है। इसमें 'भगवान् बुद्ध ने 'धम्मपद' में ऐसा कहा है' (भासितं पेतं भगवता देवातिदेवेन धम्मपदे) ऐसा कहकर दो विभिन्न स्थलों पर धम्मपद की दो गाथाएं (३२ तथा ३२७वीं) उद्धृत की हैं। अतः स्पष्ट है कि ईस्वी सन् के आसपास 'धम्मपद' बौद्धधर्म के एक ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था।

२. महानिद्देस 'सुत्तनिपात' की अत्यन्त प्रामाणिक व्याख्या है जिसका रचनाकाल प्रत्येक स्थिति में ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से पूर्ववर्ती है। इस ग्रन्थ में 'धम्मपद' की कई पंक्तियां विभिन्न स्थलों पर उद्धृत हैं। अतः स्पष्ट है कि 'धम्मपद' ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक बौद्ध धर्मग्रन्थ के रूप में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था।

३. संयुत्तनिकाय के पियंकर सुत्त में कहा गया है कि एक बार भिक्षु अनिरुद्ध श्रावस्ती के जेतवनाराम में कुछ धम्मपदों का पाठ कर रहे थे। उन्हें सुनने के लिए आतुर एक स्त्री अपने बच्चे को शान्त करती हुई कहती है-"मेरे प्रियंकर ! चुप हो जा। देख, यह भिक्षु धम्मपदों को पढ़ रहा है। यदि इन धम्मपदों को हम भी जानेंगे तो हमारा कल्याण होगा।" इसी निकाय के सज्झाय सुत्त में भी धम्मपदों के पाठ का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि बुद्धदेव के जीवनकाल में ही धम्मपदों का कोई संकलन अवश्य था जिसका भिक्षु लोग पाठ करते थे।

४. अनुश्रुति है कि अशोक ने 'धम्मपद' के अप्पमादवग्ग (अप्रमाद वर्ग) को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भिक्षुओं से सुना था। अशोक का समय ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी है। अतः स्पष्ट है कि 'धम्मपद' अशोक के समय तक एक धर्मग्रन्थ के रूप में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था।

अन्य भी कई साक्ष्य हैं जो विस्तारभय से छोड़े जा रहे हैं। उक्त सभी साक्ष्यों का सार यही ठहरता है कि बुद्धदेव के जीवनकाल में ही उनके बहुश्रुत एवं विवेकसम्पन्न भिक्षुओं ने उनकी वाणियों का एक ऐसा संकलन अवश्य तैयार कर लिया था जिससे प्रारम्भिक भिक्षु पाठ किया करते थे। धर्म के प्रति आस्था बढ़ने तथा वैराग्य उत्पन्न होने पर वे यह पाठ छोड़ दिया करते थे। संगीतिकारों ने इसे संशोधित-संवर्द्धित कर नवीन स्वरूप प्रदान किया। कम से कम ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी तक, जब अशोक ने तृतीय संगीति का आयोजन किया था, इसका वर्तमान स्वरूप अवश्य निर्धारित हो गया था। वट्टगामणि अभय के समय तक इसका प्रचलन मौखिक ही होने से न्यूनाधिक परिवर्तन की बात अस्वीकार नहीं की जा सकती, किन्तु यह परिवर्तन प्रायः नगण्य ही है। अतः यही कहा जा सकता है कि धम्मपद अपने वर्तमान रूप में महाराज अशोक द्वारा तृतीय संगीति के आयोजन के समय (ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी) तक अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण कर चुका था।

वर्ग-विभाजन

'धम्मपद' में कुल ४३२ गाथाएं हैं जो विषय के अनुसार २६ वर्गों में विभाजित की गयीं हैं। ये वर्ग तथा उनकी गाथाओं की संख्या निम्न प्रकार से है--

क्रम	वर्ग	गाथा-संख्या	क्रम	वर्ग	गाथा-संख्या
१.	यमकवग्ग	२०	२.	अप्पमादवग्ग	१२
३.	चित्तवग्ग	११	४.	पुप्फवग्ग	१६
५.	बालवग्ग	१६	६.	पंडितवग्ग	१४
७.	अरहन्तवग्ग	१०	८.	सहस्सवग्ग	१६
६.	पापवग्ग	१३	१०.	दंडवग्ग	१७
११.	जरावग्ग	११	१२.	अत्तवग्ग	१०
१३.	लोकवग्ग	१२	१४.	बुद्धवग्ग	१८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१५.	सुखवग्ग	१२	१६.	पियवग्ग	१२
१७.	कोधवग्ग	१४	१८.	मलवग्ग	२१
१९.	धम्मट्ठवग्ग	१७	२०.	मग्गवग्ग	१७
२१.	पकिण्णकवग्ग	१६	२२.	निरयवग्ग	१४
२३.	नागवग्ग	१४	२४.	तण्हावग्ग	२६
२५.	भिक्खुवग्ग	२२	२६.	ब्राह्मणवग्ग	४१

'धम्मपद' को उक्त वर्गों में विभाजित करने का प्रयास विद्वानों ने किया अवश्य है लेकिन यह विभाजन वैज्ञानिक नहीं है। वास्तव में शाक्य मुनि किसी विषय-विशेष पर बंधकर उपदेश नहीं देते थे बल्कि मानव-कल्याण के लिए सभी विषयों को अपनी वाणी का विषय बनाते थे, इसीलिए इन उपदेशों को कुछ निश्चित वर्गों में विभाजित कर देना न वैज्ञानिक ही है और न युक्तिसंगत ही, तथापि व्यावहारिकता को ध्यान में रखकर विचारकों ने विभाजन का यह प्रयास किया है। यद्यपि प्रत्येक वर्ग के नाम से उसका विषय स्पष्ट हो जाता है तथापि प्रत्येक वर्ग पर संक्षिप्त प्रकाश डालना युक्तिसंगत होगा--

यमकवग्ग में ऐसी गाथाएं संकलित हैं जो दो-दो के जोड़े के रूप में हैं। इस युगल में द्वितीय गाथा प्रायः पहली के विपरीत अर्थ वाली होती है। उदाहरणार्थ, पहली गाथा में कहा गया है कि यदि मनुष्य दुष्ट मन से कार्य करता है तो दुःख उसका उसी प्रकार पीछा करता है जैसे चक्र बैल के पैर का। इसके विपरीत दूसरी गाथा में कहा गया है कि यदि मनुष्य सुन्दर मन से कार्य करता है तो सुख उसी प्रकार उसका पीछा नहीं छोड़ता जैसे छाया मानव का साथ नहीं छोड़ती। इस प्रकार ये दोनों गाथाएं परस्पर विपरीत भाव की अभिव्यक्ति करती हुई एक ही सन्देश देती हैं। इस वर्ग के कुछ उपदेश अत्यन्त मार्मिक हैं जैसे 'वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता, अवैर से वैर शान्त होता है-यह सनातन नियम है।', 'जो मलविहीन तथा शील में रत हैं और जो जितेन्द्रिय तथा सत्यसम्पन्न हैं, वे ही काषाय धारण करने योग्य हैं।' एक गाथा में शास्त्रविद् किन्तु तदनुरूप आचरण न करने वाले को, अन्य की गायें गिनने वाले ग्वाले के समान कहा गया है।

अप्पमादवग्ग में अनेक प्रकार से अप्रमाद की प्रशंसा तथा प्रमाद की निन्दा की गयी है। अप्रमाद को अमृत का मार्ग कहा गया है। इस अप्रमाद से ही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

देवताओं में श्रेष्ठता को प्राप्त हुए हैं। अप्रमाद में रत तथा प्रमाद से भयभीत होने वाले भिक्षु को सभी बन्धनों से शून्य तथा निर्वाण के समीप कहा गया है।

चित्तवग्ग में चित्त को कठिनता से निग्रह योग्य, स्वच्छन्द तथा चंचल बताया गया है तथा उसके संयम का उपदेश दिया गया है। 'शत्रु के प्रति शत्रु तथा वैरी के प्रति वैरी जो अनर्थ करता है, कुमार्गगामी चित्त उससे अधिक अनर्थ करता है।' 'माता-पिता तथा अन्य सम्वन्धी जितना अच्छा कर सकते हैं सन्मार्गगामी चित्त उससे अधिक भला कर सकता है।'

पुप्फवग्ग में पुष्प को उपमान वनाकर नैतिक उपदेश दिया गया है। कामभोगों में लिप्त तथा उससे अतृप्त रहने वाले आसक्तचित्त व्यक्तियों को मृत्यु अपने वशमें कर लेती है। आचरण में प्रयोग करने पर ही सुभाषित वाणी सफल होती है। यहीं शील की गन्ध को चन्दन, कमल, जुही से उत्कृष्ट कहा गया है।

बालवग्ग में मूर्खों की विशेषता बताते हुए कहा गया है कि वे आजीवन साधुओं के साथ रहकर भी कुछ नहीं सीख सकते। वे चाहते हैं कि गृहस्थ एवं श्रमण उनके कार्यों का अनुमोदन करें तथा उन्हें अन्य कुलों में सम्मान, निवासस्थल में ऐश्वर्य एवं भिक्षुओं में अग्रणी माना जाये। यहीं कहा गया है कि कार्य वही उत्तम है जिसे करके पश्चात्ताप न करना पड़े। अशुभ कर्म तुरन्त परिणाम नहीं देता, किन्तु कर्ता के पीछे लगा रहता है।

पंडितवग्ग में पण्डित के लक्षण बताये गये हैं। वे दूसरों को उपदेश देकर धर्ममार्ग में नियोजित करते हैं, अपनी इन्द्रियों का दमन करते हैं तथा निज-पर के लिए धन नहीं चाहते। वे निन्दा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते। ऐसे सत्पुरुषों का साथ उपयुक्त माना गया है, क्योंकि वे कल्याण में लगाते हैं, अनर्थ में नहीं।

अरहन्तवग्ग में काव्यात्मक भाषा में अर्हतों के लक्षण कहे गये हैं। वे शोक और सन्ताप से विमुक्त हैं, उनकी सम्पूर्ण ग्रन्थियां नष्ट हो चुकी हैं, वे गृहत्यागी होते हैं, वे आहार में अनासक्त तथा असंचयी प्रवृत्ति वाले होते हैं। वे पृथ्वी के समान अक्षुब्ध, इन्द्रस्तम्भ के समान दृढ़व्रती तथा जलाशय के समान निर्मल होते हैं। वे जहां भी विचरते हैं, वही भूमि रमणीय है।

सहस्सवग्ग में निकृष्ट की अपेक्षा उत्कृष्ट का महत्त्व बताया गया है। सहस्र निरर्थक पदों की अपेक्षा एक सार्थक पद, अनेक निरर्थक गाथाओं की अपेक्षा एक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सार्थक गाथा तथा अनेक अधर्मपदों की अपेक्षा एक धर्मपद श्रेष्ठ है। अन्य की अपेक्षा अपने को जीतना श्रेष्ठ है। दुराचारी, दुर्बुद्धि, अकर्मण्य तथा पराक्रमविहीन सौ वर्ष की आयु की अपेक्षा सदाचारी, सुबुद्धि कर्मरत तथा पराक्रमी व्यक्ति की एक दिन की आयु अधिक अच्छी है।

पापवग्ग में पाप से बचने तथा पुण्यरत रहने का उपदेश दिया गया है क्योंकि पाप का संचय दुःखद होता है। मानव स्वेच्छा से पापकर्म में लीन न हो। संसार में कोई ऐसा स्थान नहीं, जहां रहकर मानव पापकर्म और मृत्यु से बच सके।

दण्डवग्ग में किसी भी जीवधारी को पीड़ित न करने का उपदेश दिया गया है। जो अपने सुख के लिए अन्य को कष्ट देते हैं, वे कभी सुखी नहीं हो सकते। परुषवचन कहना एवं पीड़ित करना जीव के लिए दुःखद है। यहीं कहा गया है कि जब तक मनुष्य के हृदय की सभी आकांक्षाएँ शान्त नहीं हो जातीं, उसके शान्ति या मोक्ष के प्राप्ति की सभी उपाय निष्फल रहते हैं।

जरावग्ग में शरीर की जराजीर्णता, रोगग्रस्तता तथा क्षणभंगुरता का उल्लेख करके मानव में वैराग्य उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। जन्म को दुःखद तथा शरीर के प्रति वैराग्य उत्पन्न करने का उद्देश्य मानव को निर्वाण-पथ पर अग्रसर करना ही है। जिस प्रकार राजाओं के चित्रित रथ जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं उसी प्रकार जरावस्था में शरीर, लेकिन धर्म कभी वृद्धत्व को नहीं प्राप्त होता।

अत्तवग्ग में मानव को स्वयं ही अपने भविष्य का निर्माता कहा गया है। वह अपने कर्मों से ही शुद्ध या अशुद्ध होता है। पहले मानव सत्य का साक्षात्कार करें, तदुपरान्त स्वयं आचरण में लाये, तभी अन्य को उपदेश दे। मानव अपना स्वामी स्वयं ही है, उसका स्वामी अन्य नहीं हो सकता। इन्द्रियों को दमन करने पर मानव दुर्लभ स्वामित्व को प्राप्त करता है। कहा गया है :

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना हि सुदंतेन नाथं लभति दुल्लभं।।

लोकवग्ग में लोक के लिए सदाचार, धर्म, अप्रमाद आदि के उपदेश दिये गये हैं। मानव को प्रमाद से अप्रमाद, पापकर्म से कुशल कर्म, दुराचार से सदाचार की ओर चलना चाहिए। मानव को उदार हृदय से दान देना चाहिए। असत्य भाषण तथा धर्म का उल्लंघन महापाप है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection.

बुद्धवग्ग में बौद्धधर्म के सिद्धांतों, उपदेशों तथा अनुशासन का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। पापकर्म से विरति, पुण्यार्जन तथा चित्त की परिशुद्धि-यही बुद्धों का उपदेश है। क्षमाशीलता ही परम तप तथा तितिक्षा ही परम निर्वाण है। किसी को कष्ट या पीड़ा देने वाला श्रमण नहीं हो सकता।

सुखवग्ग में उस सुख का माहात्म्य बताया गया है जो सभी सुखोपभोग के उपकरणों से शून्य, सदाचार एवं मैत्रीपूर्ण अवस्था में प्राप्त होता है। इसके लिए वैर, आतुरता एवं उत्सुकता का परित्याग आवश्यक है। मानव को रागद्वेष, संग्रह-वृत्ति, दुर्जनसंगति त्यागकर, संयमपूर्वक जीवनयापन करना चाहिए।

पियवग्ग में कहा गया है कि प्रिय की अप्राप्ति तथा अप्रिय की प्राप्ति दोनों ही दुःखद हैं; इसलिए न किसी को प्रिय बनाओं, न अप्रिय। प्रेम, आसक्ति, काम तथा तृष्णा से शोक एवं भय उत्पन्न होता है, अतः इनका परित्याग ही उचित है। इनके परित्याग से मानव शोक एवं भय से मुक्त हो जाता है।

कोधवग्ग में क्रोध को महापातक मानते हुए उसके त्याग पर बल दिया गया है। अक्रोध से क्रोध, साधुता से असाधुता, दान से कार्पण्य, तथा सत्य से असत्य को जीतना चाहिए। जो धीर शरीर, वाणी और मन से संयत है वही वास्तव में सुसंयत है, वही महान है।

मलवग्ग में अविद्या को सबसे बड़ा मल मानते हुए सभी मलों (पापों) से मुक्ति का उपदेश दिया गया है। जो जीवों की हिंसा करता है, अदत्तवस्तु को ग्रहण करता है, परतल्पगमन करता है तथा मद्यपान में संलग्न है, वह लोक में अपनी जड़ें खोदता है। कहा गया है :

यो पाणमति पातेति मुसावादं च भासति।
लोके अदिन्नं आदियति परदारं च गच्छति।।
सुरामेरयपानं न यो नरो अनुयुञ्जति।
इधवमेसो लोकस्मिं मूलं खणति अत्तनो।।

धम्मट्ठवग्ग में धर्मिष्ठ पण्डित, धर्मधर, स्थविर, साधु, श्रमण, भिक्षु, मुनि और आर्य के भावात्मक एवं अभावात्मक लक्षणों की विस्तृत मीमांसा की गयी है। यहां बाह्याडम्बरों एवं मिथ्याप्रदर्शनों की अपेक्षा सदाचार एवं संयम को अधिक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महत्त्व दिया गया है।

मग्गवग्ग में निर्वाणगामी मार्ग का वर्णन किया गया है। विभिन्न मार्गों में अष्टांगिक मार्ग को श्रेष्ठ माना गया है और दुःखों से मुक्ति के लिए उस पर चलने का निर्देश दिया गया है। सभी वस्तुओं को अनित्य एवं दुःखद मानकर, उनसे विरक्ति को ही विशुद्धि का मार्ग कहा गया है। इसके लिए योगाभ्यास, तृष्णाक्षय, व्यक्ति तथा स्थानप्रेम से मुक्ति आदि आवश्यक हैं।

पकिण्णकवग्ग में अहिंसा और शरीर के दोषों का चिन्तन वर्णित है। जो अकर्तव्य एवं प्रमाद का पत्यिाग कर, कर्तव्य एवं अप्रमादपूर्वक विचरण करते हैं ऐसे स्मृतिमान् एवं सचेत भिक्षुओं के आसव अस्त हो जाते हैं। जिनकी बुद्ध, धर्म एवं संघविषयक स्मृति जागृत रहती है, वे सदैव प्रबुद्ध रहते हैं।

निरयवग्ग में उन पापकर्मों का उल्लेख किया गया है जिनसे जीव नरक को प्राप्त होता है। असत्यभाषण, परतल्पगमन, दुराचार आदि ऐसे ही कर्म हैं। मिथ्यादृष्टि रखने वाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं तथा गुण-दोष विषयक यथार्थ धारणा रखने वाले सद्गति प्राप्त करते हैं।

नागवग्ग में हाथी के समान कष्टसहिष्णुता और इन्द्रियदमन का उपदेश दिया गया है। यदि परिपक्व बुद्धिवाला, धैर्यशाली, सुसंयत एवं सदाचारी साथी मिले, तो सचेत एवं प्रसन्न मन से उसके साथ विचरण करे, अन्यथा जंगल में हाथी के समान अकेला ही विचरे और पापकर्म न करे।

तण्हावग्ग में मानव को तृष्णा के परित्याग का उपदेश दिया गया है। जब तक मानव-मन में राग का अस्तित्व है, वह बन्धनयुक्त है और सभी प्रकार के दुःखों को भोगने वाला है, क्योंकि राग से ही तृष्णा उत्पन्न होती है। जब तक राग या तृष्णा से तनिक भी सम्बन्ध है तब तक छिन्नाधार वृक्ष के समान, दुःख बार-बार सामने आयेंगे, अतः तृष्णा का परित्याग आवश्यक है।

भिक्खुवग्ग में भिक्षुओं के लिए सदाचारविषयक उपदेश हैं। भिक्षु को संयमित, रागद्वेषशून्य, अध्यात्मरत तथा धर्मपरायण होना चाहिए। अनासक्ति, मितभाषिता तथा विनयशीलता उसके व्यवहार के आवश्यक गुण हैं। आत्मा ही आत्मा का स्वामी है और आत्मा ही आत्मा की गति है। अतः उसे भली प्रकार संयत रखना चाहिए जैसे वैश्य अपने अश्व को संयत रखता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कहा गया है :

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्ता हि अत्तनो गति।।
तस्मा संयमयत्तानं अस्सं भद्देव वाणिजो।।

ब्राह्मणवग्ग में ब्राह्मणों के आदर्शों एवं सिद्धान्तों की सुन्दर मीमांसा की गयी है। इस वर्ग की अनेक गाथाएं न केवल सैद्धान्तिक, बल्कि काव्यात्मक दृष्टि से भी नितान्त महत्त्वपूर्ण हैं। 'न जटाओं से, न गोत्र से और न जन्म से मनुष्य ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य और धर्म है वही शुद्ध है, वही ब्राह्मण है।' 'सब बन्धनों को काटकर, जो कभी भी भयभीत नहीं होता, जो विषयों की संगति से मुक्त हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।' 'जिसे भूत, भविष्य और वर्तमान में आसक्ति नहीं है, जो अकिंचन और अपरिग्रही है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।'

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से 'धम्मपद' की विषय-वस्तु का परिचय प्राप्त हो जाता है। यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ में बौद्धधर्म के जटिल दार्शनिक सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति नहीं मिली है, बल्कि नीतिमार्ग के उन तथ्यों को वाणी दी गयी है जो साम्प्रदायिकता से बहुत ऊपर उठे हुए हैं और जिन्हें किसी धर्मविशेष की नहीं, बल्कि भारतीय समाज एवं संस्कृति की अक्षुण्ण धरोहर कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ की अनेक गाथाओं की आर्षश्लोकों के साथ तुलना की जा सकती है। वस्तुतः ये किसी धर्मविशेष की नहीं, बल्कि उस समाज की धरोहर थी जो परवर्ती काल में हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि अनेक रूपों में विभक्त हो गया, किन्तु पहले सागर के समान असीम, अनन्त एवं एकाकार था।

पुनरुक्तियाँ

त्रिपिटक के अन्य ग्रन्थों के समान, 'धम्मपद' में भी पुनरुक्तियों का बाहुल्य है। यहां केवल उपमान और प्रतीक ही नहीं, कहीं-कहीं तो सम्पूर्ण भाव एवं शैली भी यथावत् रूप में दुहरा दी गयी है। ऐसे स्थलों पर यदि एकाध शब्द का अन्तर भी मिलता है तो वह शब्दगत ही है, अर्थगत नहीं। उदाहरणार्थ के लिए, नीचे दो गाथाएं उद्धृत की जाती हैं जो क्रमशः पण्डितवग्ग की पांचवी तथा दण्डवग्ग की सत्रहवीं (धम्मपद की ८०वीं तथा १४५वीं) हैं--

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति पण्डिता।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति सुब्बता।।

उपरि-उद्धृत गाथाओं में यथावत् शब्दयोजना है। केवल एक शब्द का अन्तर है, प्रथम गाथा के अन्तिम चरण में 'पण्डिता' (पण्डिताः) शब्द का प्रयोग किया गया है जबकि द्वितीय में सुब्बताः (सुव्रताः) का। अर्थ की दृष्टि से दोनों शब्द अभिन्न हैं। इसी प्रकार--

पियतो जायती सोको पियतो जायती भयं।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं।।
पेमतो जायती सोको पेमतो जायती भयं।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं।।

इन दोनों गाथाओं में भी भाव एवं शैलीगत एकता है। अन्तर केवल एक शब्द में है। जहां पहली गाथा में शोक एवं भय का कारण 'प्रिय' माना गया है वहां दूसरी में 'प्रेम', जबकि दोनों एक-दूसरे से अभिन्न हैं। प्रेम होने पर ही व्यक्ति प्रिय होता है, यदि प्रेम समाप्त हो जाये तो प्रिय की प्रियदर्शिता भी अप्रियत्व में बदल जाती है। अतः साहित्यिक दृष्टि से दोनों गाथाओं को पुनरुक्तिदोष से युक्त ही मानना पड़ेगा।

वस्तुतः गौतम बुद्ध एक-एक दोष को लेकर प्रवचन करते थे। वे जिस दोष पर बोल रहे होते थे, उस समय वह दोष ही उन्हें शोक एवं भय का कारण ज्ञात होता था, इसलिए प्रिय एवं प्रेम ही नहीं, रति, काम, तृष्णा आदि के विषय में भी उन्होंने इसी भाषा में कहा है--

रतिया जायती सोको रतिया जायती भयं।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं।।
कामतो जायती सोको कामतो जायती भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं।।
तण्हाय जायती सोको तण्हाय जायती भयं।
तण्हाय विप्पुमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं।।

'धम्मपद' में अन्य अनेक ऐसी ही गाथाएं हैं जहां भाव एवं शैलीगत एकता, यथावत् शब्दयोजना एवं पुनरुक्ति भी दिखायी देती है। साहित्यिक दृष्टि से यह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं है, लेकिन 'धम्मपद' एक साहित्यिक नहीं, बल्कि धार्मिक कृति है, अतः उसे धार्मिक दृष्टि से ही देखना चाहिए। भगवान् बुद्ध ने एक ही विषय को अनेक अवसरों पर विभिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। वे प्रसंग एवं परिस्थिति के अनुसार अपना प्रवचन प्रारम्भ कर देते थे, अतः उनके वचनों में एकरूपता या पुनरुक्ति होना स्वाभाविक है। संगीतिकारों ने उन वचनों को श्रद्धाभिभूत होकर पद्यबद्ध कर दिया है। उसकी दृष्टि केवल धर्मिक रही है, साहित्यिक नहीं। धार्मिक दृष्टि से यह दोष नहीं कहा जा सकता।

महत्त्व

'धम्मपद' बौद्धधर्म के सिद्धान्तों एवं साधनामार्ग को अभिव्यक्त करने वाली अमर कृति है। यह न केवल बौद्धभिक्षुओं, प्रत्युत बौद्धमतावलम्बी गृहस्थों में भी अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है। इसके महत्त्व के कुछ विशेष कारण हैं।

'धम्मपद' बौद्धधर्म के जटिल दार्शनिक सिद्धान्तों एवं गूढ़ प्रतिपादन शैली से दूर, नैतिक उपदेशों की एक सरल एवं सरस रचना है। यद्यपि कहीं-कहीं सद्धर्म के सिद्धान्त भी अभिव्यक्ति पा गये हैं, उदाहरणार्थ, गाथा १९१-९२ में चार आर्यसत्यों का प्रतिपादन किया गया है, गाथा २७३ में आर्य अष्टांगिक मार्ग का महत्त्व वर्णित है आदि, तथापि ये सिद्धान्त सहज, सुबोध एवं व्यावहारिक रूप में ही प्रस्तुत किये गये हैं। कुल मिलाकर यह कृति बौद्धधर्म के नीतिमार्ग को ही अभिव्यक्त करती है, धार्मिक सिद्धान्तों या दार्शनिक जटिलताओं को नहीं। जीवन की दुःखमयता, निर्वाण की आवश्यकता, सदाचार का महत्त्व, स्वावलम्बन की महत्ता, पण्डित, भिक्षु तथा ब्राह्मण के लक्षण, पाप-निन्दा, पुण्य-प्रशंसा, अहिंसा, तृष्णा-परित्याग-यही 'धम्मपद' के प्रमुख विषय हैं। बौद्धधर्म अनात्मवाद एवं अनीश्वरवाद में विश्वास रखता है-यह एक सर्वमान्य तथ्य है। ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं है फिर उसकी भक्ति या स्तवन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इस भाव को 'अत्तवग्ग' की गाथाओं में उचित मार्गनिर्देश सहित व्यक्त किया गया है। कुछ गाथाएं इस प्रकार हैं--

अत्ता हि अत्तनोनाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अत्ता हि अत्तनोनाथो अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा संयमयत्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो।।

(आत्मा ही अपना स्वामी है। दूसरा स्वामी कौन हो सकता है? अपने स्वयं के दमन करने पर मनुष्य दुर्लभ स्वामीपद को प्राप्त कर लेता है। आत्मा ही आत्मा का स्वामी है और आत्मा ही आत्मा की गति है। अतः जिस प्रकार वैश्य अपने अच्छे अश्व को संयत रखता है उसी प्रकार आत्मा को संयत रखना चाहिए।)

यहां अनात्मवाद एवं अनीश्वरवाद की स्थापना ही नहीं की गयी, बल्कि मानव को आत्मनियन्त्रण (इन्द्रियदमन) का उपदेश भी दिया गया है और स्पष्ट किया है कि जितेन्द्रियता से ही मानव अपना स्वामी बनता है अन्यथा वह इन्द्रियों का दासमात्र है, किन्तु यह प्रतिपादना दार्शनिक जटिलता से दूर, अत्यन्त सहज एवं सरल शैली में की गयी है।

'धम्मपद' की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें अनेक नैतिक सिद्धान्तों को सूत्रबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। सुत्तपिटक के लम्बे दीर्घकाय सुत्तों के अध्ययन, चिन्तन एवं मनन से विचारशील मानव जिन निष्कर्षों पर पहुंचता है उनमें अत्यधिक बुद्धि खपानी पड़ती है जबकि उनके यहां सूत्ररूप में उपलब्ध हो जाते हैं। कुछ सूत्र इस प्रकार हैं--

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्डासमं नदी।।
आरोग्य परमा लाभा सन्तुट्ठि परमं धनं।
विस्सास परमा ञाति निब्बानं परमं सुखं।।

(राग के समान अग्नि नहीं है, द्वेष के समान ग्रह नहीं है, मोह के समान जाल नहीं है और तृष्णा के समान नदी नहीं है। आरोग्य परम लाभ है, सन्तुष्टि परम धन है, विश्वास परम जाति (बन्धु) है और निर्वाण परम सुख है।)

इन गाथाओं में भगवान् बुद्ध ने अनेक नैतिक निष्कर्षों को जनकल्याण के लिए प्रस्तुत कर दिया है। ये सूत्ररूप गाथाएं लोकोक्तियों का स्मरण करा देती हैं। 'धम्मपद' में ऐसी अनेक गाथाएं हैं स्थानाभाव के कारण सभी का विवेचन उपयुक्त न होगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'धम्मपद' बौद्धधर्म की रचना अवश्य है लेकिन यह साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से वहुत दूर है। वस्तुतः इसका प्रधान विषय बौद्धधर्म के सिद्धान्त नहीं, बल्कि नैतिक उपदेश हैं और यह नैतिकता भारतीय संस्कृति की अमर धरोहर है। यही कारण है कि इस कृति में प्रतिपादित विचार विभिन्न आर्षग्रन्थों से अद्भुत साम्य रखते हैं। कुछ गाथाएं तो आर्षश्लोकों का शब्दानुवाद जैसी प्रतीत होती हैं। डा० विमलाचरण लाहा ने अपने ग्रन्थ 'पालि साहित्य का इतिहास' (हिस्ट्री आफ पालि लिटरेचर) के प्रथम खण्ड में धम्मपद की गाथाओं के समानान्तर भाव वाले आर्षश्लोकों को चुना है और उनकी परस्पर तुलना की है। डा० व्ही० फजबोल ने भी अपने सम्पादित संस्करण में इनका यथास्थान उल्लेख करके वौद्धधर्म का आर्षग्रन्थों पर प्रभाव दिखाने का प्रयास किया है। यहां इस विवाद में पड़ना निरर्थक है कि किस पर किसका प्रभाव है। वास्तविकता यही है कि उस काल का नीतिमार्ग आज के समान बौद्ध, जैन या हिन्दू वर्गों में विभाजित नहीं था। यह अविभक्त भारतीय समाज एवं संस्कृति की थाती थी जो परवर्ती धर्मों ने अपने धार्मिक परिवर्तन-परिवर्द्धन के साथ स्वीकार की। यही कारण है कि 'धम्मपद' में प्रतिपादित नैतिक उपदेशों का जैन या हिन्दू ग्रन्थ बिल्कुल विरोध नहीं करते।

'धम्मपद' बौद्धधर्म की प्रारम्भिक पुस्तक अवश्य है लेकिन इसमें संक्षिप्त या विस्तृत रूप में, बौद्धधर्म के सभी सिद्धान्तों एवं नीतियों का सुन्दर समावेश हो गया है। एक ओर जहां चार आर्यसत्य, आर्य अष्टांगिक मार्ग, मध्यमा प्रतिपदा, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि का नामोल्लेख मिलता है, वहां सदाचार का महत्त्व, निर्वाण की आवश्यकता, दुराचारी की दुर्गति, स्वायत्तता, तृष्णा-परित्याग की अनिवार्यता, पाप-दुष्परिणाम, पुण्य-स्तवन, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि व्यावहारिक नीतिमार्ग का सरल एवं विशद व्याख्यान उपलब्ध होता है। सारतः, जहां दार्शनिक सिद्धांतों का मात्र नामोल्लेख है वहां नीतिमार्ग की विशद मीमांसा है जिससे यह कृति न केवल भिक्षुओं, बल्कि गृहस्थों के लिए भी नितान्त उपादेय एवं अनुकरणीय बन गयी है। बौद्धधर्म का सम्पूर्ण साधना-मार्ग, यदि किसी एक कृति से अभिव्यक्त होता है तो केवल 'धम्मपद' से ही।

'धम्मपद' की एक विशेषता उसकी प्रसादमयता भी है। इसकी भाषाशैली अत्यन्त सरल एवं सरस है। त्रिपिटक के अन्य ग्रन्थों की भाषा अपेक्षाकृत कठिन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। 'धम्मपद' की भाषा अत्यन्त सरल है और आद्योपान्त नैतिक उपदेश रहने से जिज्ञासु को कोई कठिनता नहीं होती। भाषा की सरलता के कारण ही पालि के प्रारम्भिक पाठकों को 'धम्मपद' पढ़ाया जाता है। इसकी सरल एवं सरस भाषा पाठक को प्रोत्साहित करने में पूर्ण समर्थ है।

उक्त कारणों से ही 'धम्मपद' को न केवल बौद्धजगत्, प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। बौद्ध जगत् का तो यह कण्ठहार है। लंका में 'धम्मपद' का पारायण किये बिना किसी भिक्षु की उपसम्पदा नहीं हो सकती। अन्य बौद्धदेशों में भी भिक्षु को 'धम्मपद' का कण्ठस्थ होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य माना जाता है।

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तृतीय खण्ड

बौद्धधर्म-सिद्धान्त और उपदेश

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय द्वादश

सिद्धान्त और उपदेश

यद्यपि गौतम बुद्ध के उपदेश या सद्धर्म के सिद्धान्त पालि भाषा या साहित्य से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध नहीं हैं तथापि पालि के अध्येता को इनका ज्ञान आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि इनको समझे बिना त्रिपिटक का मूल प्रतिपाद्य ही अज्ञात रह जायेगा। अतः पालि भाषा एवं साहित्य के साथ इनका ज्ञान अत्यावश्यक है। यहां गौतम बुद्ध की प्रमुख शिक्षाओं, उनके सिद्धान्तों तथा दिनचर्या से सम्बद्ध विशिष्ट पर्वों आदि पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

बुद्धदेव की प्रमुख शिक्षाएं

शाक्यमुनि गौतम बुद्ध की प्रमुख शिक्षाओं में चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग तथा मध्यमाप्रतिपदा का उल्लेख किया जाता है। वस्तुतः ये तीनों ही, कार्यकारणभाव से, परस्पर सम्बद्ध हैं। इनके स्वरूप-ज्ञान से सद्धर्म के ज्ञान में बहुत सहायता मिलती है। यहां एक-एक कर इनका संक्षिप्तस्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है।

आर्यसत्य

जिन्हें केवल अर्हत् ही यथार्थ रूप में समझते हैं, उन्हें 'आर्यसत्य' कहा जाता है। बौद्धाचार्य वसुभूति ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि अर्हत् तनिक से दुःख से उद्विग्न हो जाते हैं, इतर जन नहीं, अतः वे दुःख लेश को समझ सकते हैं। जिस प्रकार ऊन का रेशा जब हथेली पर रखा होता है तो प्राणी उसे अनुभव नहीं कर पाता, किन्तु जब वहीं रेशा आंख में गिर पड़ता है तो न केवल अरुचिकर, बल्कि पीड़ादायक भी प्रतीत होता है। सामान्य जन हथेली के समान अल्पसंवेदनसम्पन्न होते हैं जो दुःख रूपी रेशे को सहन करते हुए भी जान नहीं पाते। इसके विपरीत अर्हत् नेत्र के समान अतिसंवेदनशील होते हैं जो तनिक से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

दुःख रूपी रेशे से उद्विग्न हो उठते हैं। अतः अर्हत् ही जिन्हें आत्यन्तिक रूप में जानते हैं और जो मानवमात्र का कल्याण करने में पूर्णतः समर्थ हैं, उन्हें आर्यसत्य कहा जाता है।

धर्मचक्रप्रवर्तन के समय ऋषिपत्तन मृगदाव (सारनाथ) में भगवान् बुद्ध ने चार आर्यसत्यों का उपदेश दिया था। ये आर्यसत्य इस प्रकार हैं--

१. दुःख,
२. दुःख-समुदय,
३. दुःख निरोध और
४. दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा।

परम्परा से अध्यात्मशास्त्र की चिकित्साशास्त्र से तुलना की जाती है। जिस प्रकार कुशल चिकित्सक पहले रोगी की नाड़ी देखकर उसका रोग बताता है, तदुपरान्त उस रोग का कारण स्पष्ट करता है, फिर उसका निदान विचारता है और अन्त में निदान के उपाय से रोग का निवारण करता है, उसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति पहले दुःख के स्वरूप को समझता है, फिर उसके कारण को समझता है, तदुपरान्त दुःख-निरोध पर विचार करता है और अन्त में दुःखनिरोध के उपायों को बताता है जिससे व्यक्ति के सभी दुःख शान्त हो जाते हैं।

१. दुःख-दुःख प्रथम आर्यसत्य है। इसकी व्याख्या करते हुए स्वयं बुद्ध ने धर्मचक्रप्रवर्तन सुत्त में कहा है--

"इदं खो पन भिक्खवे दुक्खं अरिय सच्चं। जातिपि दुक्खा, जरापि दुक्खा, व्याधिपि दुक्खा, मरणम्पि दुक्खं, अप्पियेहि संपयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यं पिच्छन्तं न लभते तम्पि दुक्खं, संखित्तेन पंचोपादान क्खन्धापि दुक्खं।"

अर्थात् हे भिक्षुओ ! दुःख आर्यसत्य है। जन्म लेना भी दुःख है, जरा भी दुःख है, रोग भी दुःख है, मृत्यु भी दुःख है, अप्रिय वस्तु का संयोग भी दुःख है, प्रिय वस्तु का वियोग भी दुःख है, इच्छित पदार्थ की अप्राप्ति भी दुःख है। संक्षेप में, राग से उत्पन्न पंचोपादान स्कन्ध भी दुःख हैं।

जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सम्पूर्ण जीवन दुःखमय है। दुःख का अनुभव तो सभी प्राणी करते हैं लेकिन दुःखों का कारण न जानकर वे सुख के साधन जुटाने में लगे रहते हैं। सुख के कितने ही साधन जुटा लिये जायें, भोग और विलासिता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की सभी सामग्री एकत्रित कर ली जाये लेकिन दुःख की निवृत्ति सम्भव नहीं है। ये साधन ऐसे ही हैं जैसे दुःख से पीड़ित व्यक्ति का संगीत से मनोरंजन किया जाये अथवा इंजेक्शन से उसे सुला दिया जाये। यह तो दुःख की निवृत्ति नहीं हुई, बल्कि विस्मृति हुई। यह निवृत्ति तभी सम्भव है जब मानव दुःख के वास्तविक कारण को जानने की इच्छा करे।

संसार परिवर्तनशील है। वह एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं हो सकता। यह परिवर्तन संसार के प्रत्येक पदार्थ को विनाश की ओर ले जाता है। जो भी कारण से उत्पन्न हुआ है वह सभी नश्वर है, क्षणभंगुर है और जो नश्वर या क्षणभंगुर है, वह सभी दुःखमय है। इस प्रकार यह समस्त दृश्यात्मक जगत् जो नश्वर या क्षणभंगुर है, दुःखमय है। प्रत्येक वस्तु विनाश की ओर अग्रसर हो रही है। कवयित्री महादेवी वर्मा ने इस दुःखवाद को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है--

विकसते मुरझाने को फूल
उदित होता छिपने को चन्द।
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द।।

संसार को दुःखमय बताकर भी भगवान् बुद्ध हमें निराशा की ओर नहीं ले जाते। वे हमें दुःखों का वास्तविक कारण जानने के लिए व्यग्र बनाते हैं जिसके उच्छेद से अशेष दुःखों का उन्मूलन हो सके। अगले सत्यों में दुःख का कारण तथा उसके निवारण की सुन्दर विवेचना की गयी है।

२. दुखसमुदय-दूसराआर्यसत्य है-दुःखसममुदय। समुदय का अथ है कारण। भाव यह है कि दुःख कारणसम्भूत है। अनित्य वस्तुओं के अतिरिक्त कोई भी वस्तु बिना कारण के उत्पन्न नहीं होती। जब दुःख रूपी कार्य है तो उसका समुचित कारण भी होगा। भगवान् बुद्ध ने दुःख का कारण इस प्रकार बताया है--

"इदं खो पन भिक्खवे दुक्खसमुदयं अरिय सच्चं। यायं तण्हा पोनब्भविकोनंदिराग सहगता तत्र तत्रापि नन्दिनी सेय्यमीदं कामतण्हा भवतण्हा, विभवतण्हा।"

अर्थात्, हे भिक्षुओ ! यह दुःखसमुदय आर्यसत्य है। वास्तव में यह वह तृष्णा है जो पुनर्भव (पुनर्जन्म) और नंदिराग (विषयासक्ति) के साथ रहकर कभी यहां

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कभी वहां तृप्ति खोजती है। यह तीन प्रकार की होती है-कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा।

दुःख का कारण खोजने वाले विचारकों में बुद्धदेव अकेले ही नहीं हैं। सांख्य के प्रवर्तक कपिल मुनि की प्रथम कारिका ही इस अभियान को स्पष्ट करती है- 'दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा भवति तदपघातके' अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीन प्रकार के दुःखों को देखकर उसके निवारक साधनों के विषय में जिज्ञासा उत्पन्न होती हैं। अतः स्पष्ट हे कि दुःखों के निवारण की जययात्रा बहुत प्राचीन है। पूर्ववर्ती विचारकों ने भी दुःख और उसके कारणों का यथामति विवेचन किया है और परवर्ती विचारकों ने भी। कुछ विचारक मानते थे कि पूर्वजन्म में आत्मा के पापकर्म के परिणामस्वरूप दुःख उत्पन्न हुआ है। अतः उसके परिहार के लिए वे देहदण्डन करते थे। कुछ विचारक दुःख को जड़ प्रकृति के साथ उद्भूत मानते थे, अतः वे आत्मा को प्रकृतिपाश से छुड़ाने के लिए शास्त्रचर्चा का आश्रय लेते थे। कुछ विचारक आत्मा और प्रकृति के मिलन से दुःख की उत्पत्ति मानते थे। अतः उसके निवारणार्थ भयंकर तप का आचरण करते थे। कुछ दुःख को आकस्मिक मानकर अक्रियवाद की ओर झुक जाते थे। इन सभी विचारकों से समाज को चिन्तन की विभिन्न दिशाएं प्राप्त हुईं और समाज का ध्यान दुःखों के कारण की ओर जाने लगा।

बुद्धदेव ने स्पष्ट किया है कि दुःखों का कारण आत्मा या प्रकृति नहीं है, प्रत्युत मानव की तृष्णा है। तृष्णा से मानव-मन में आसक्ति का जन्म होता है और उससे वह पुनर्जन्म के बन्धन में बंध जाता है। इस प्रकार यह तृष्णा ही इस भवचक्र को चलाती है और विभिन्न इन्द्रियों के साथ कभी यहां और कभी वहां आनन्द खोजती रहती है।

यह तृष्णा तीन प्रकार की कही गयी है- कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा। नाना प्रकार की उपभोगविषयक कामनाएं उत्पन्न करने वाली तृष्णा कामतृष्णा कहलाती है। इसी से मानवों में रग-द्वेष उत्पन्न होते हैं और अन्ततः वे विनाश को प्राप्त होते हैं। संसार में अस्तित्व बनाये रखने या बार-बार जन्म लेने की तृष्णा भवतृष्णा कहलाती है। विभव का अर्थ है उच्छेद या विनाश। संसार के विनाश की तृष्णा विभवतृष्णा कहलाती है। जिस प्रकार संसार को शाश्वत बनाये रखने की इच्छा दुःख का कारण होती है उसी प्रकार उसे नष्ट करने की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

इच्छा भी। यह त्रिविध रूपात्मक तृष्णा ही दुःख का मूलहेतु है। इनके निरोध से ही दुःखनिरोध सम्भव है।

३. **दुःखनिरोध**-तृतीय आर्यसत्य है दुःखनिरोध। दुःख का मूल कारण है तृष्णा। जब तक तृष्णा किसी न किसी रूप में रहेगी, दुःख की स्थिति अवश्यम्भावी है। इस तृष्णा के पूर्ण निरोध पर ही दुःखनिरोध सम्भव है। स्वयं भगवान् बुद्ध ने दुःखनिरोध का स्वरूप इस प्रकार बताया है--

"इदं खो पन भिक्खवे दुक्खनिरोधं अरिय सच्चं। यो तस्सायेव तण्हाय असेस विरागनिरोधो चागो पटिनिस्सागो मुत्ति अनालयो।"

अर्थात्, हे भिक्षुओं ! यह दुःखनिरोध आर्यसत्य है। यह उस तृष्णा से पूर्ण वैराग्य है। उसका निरोध, त्याग, प्रतिनिःसर्ग, मुक्ति और अनालय (स्थानशून्यता) है।

यह स्पष्ट हो जाने पर कि तृष्णा ही सम्पूर्ण दुःख तथा पुनर्जन्म का मूल हेतु है, उससे कोई सम्बन्ध न रखना या उससे पूर्णतः मुक्त हो जाना ही दुःखनिरोध का मूल रहस्य सिद्ध होता है। जब तक तृष्णा का पूर्ण निरोध नहीं हो जाता, तब तक उसकी सम्भावना आंशिक रूप से बनी ही रहेगी और जव तक तृष्णा का लेश भी शेष है, तब तक दुःख का पूर्ण निरोध सम्भव नहीं है। ज्ञानमात्र से भी तृष्णा का विनाश सम्भव नहीं है, क्योंकि ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि से है और तृष्णा का हृदय से। इसके पूर्ण उच्छेद में वैराग्य और अभ्यास बहुत सहायक हैं। अतः साधक को ज्ञानप्राप्ति के उपरान्त विषयों से वैराग्य धारण कर, तृष्णाहनन का अभ्यास करना चाहिए। एकान्तसेवन भी इसमें लाभप्रद होता है।

४. **दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा**-यह चतुर्थ आर्यसत्य है। यह वह मार्ग है जिसका अवलम्बन कर साधक दुःखनिरोध में समर्थ होता है। इस मार्ग को स्वयं बुद्धदेव ने इस प्रकार बताया है--

"इदं खो भिक्खवे दुक्खनिरोध-गामिनी पटिपदा अरियसच्चं। अयमेव अरियो अट्ठङ्गको मग्गो। सेय्यपीदं सम्मादिट्ठो, सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा, सम्मा कम्मन्तो, सम्मा अजीवो, सम्मा वायामो, सम्मसति, सम्मासमाधि।"

अर्थात्, हे भिक्षुओं ! यह दुःखनिरोगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य है। इसी को आर्य अष्टांगिक मार्ग कहते हैं। ये आठ अंग इस प्रकार हैं-१. सम्यक् दृष्टि,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. सम्यक् संकल्प, ३. सम्यक् वाणी, ४. सम्यक् कर्मान्त, ५. सम्यक् आजीविका, ६. सम्यक् व्यायाम, ७. सम्यक् स्मृति और, ८. सम्यक् समाधि।

भगवान् बुद्ध ने दुःखनिरोध के लिए यह आठ अंगों वाला मार्ग बताया है जिसे आर्य अष्टांगिक मार्ग कहा जाता है। इस मार्ग पर चलकर प्राणी समस्त दुःखों का निरोध कर निर्वाण पद प्राप्त कर सकता है। बौद्ध साहित्य में इस मार्ग की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। 'धम्मपद' में कहा गया है कि मुमुक्षुओं के लिए आज तक जितने भी मार्ग बताये गये हैं उनमें आर्य अष्टांगिक मार्ग, सम्पूर्ण सत्यों में आर्यसत्य, धर्मों में वैराग्य और मनुष्यों में ज्ञानसम्पन्न श्रेष्ठ है--

मग्गानं ठङ्िगको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं दिपदानं च चक्खुमा।।

आर्य अष्टांगिक मार्ग

दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा के आठ अंग हैं, इसलिए इसे आर्य अष्टांगिक मार्ग भी कहा जाता है। यह मार्ग बौद्धधर्म का 'आचार-मार्ग' है। बुद्धदेव ने ऋषिपत्तन मृगदाव (सारनाथ) में धर्मचक्रप्रवर्तन के समय इसी मार्ग का उपदेश दिया था। 'धम्मपद' में 'मग्गानं टंगिको सेट्ठो' कहकर इस मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

इस मार्ग के आठ अंग निम्नलिखित हैं :

१. सम्यक् दृष्टि, २. सम्यक् संकल्प, ३. सम्यक् वाणी, ४. सम्यक् कर्मान्त ५. सम्यक् आजीविका, ६. सम्यक् व्यायाम, ७. सम्यक् स्मृति, और ८. सम्यक् समाधि।

उपर्युक्त आठों अंग शील, समाधि और प्रज्ञा में अन्तर्भूत हो जाते हैं जो बौद्ध धर्म की आधारशिला है। इन अंगों में सम्यक् दृष्टि और सम्यक् संकल्प का प्रज्ञा में, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त और सम्यक् आजीविका का शील में तथा सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि का समाधि में अन्तर्भाव हो जाता है। यहां इस मार्ग के अंगों का स्वरूप समझ लेना आवश्यक है।

१. **सम्यक् दृष्टि**-सम्यक् दृष्टि का अर्थ है आर्यसत्य तथा प्रतीत्यसमुत्पाद का सम्यक् ज्ञान। संसार दुःखमय है, यह दुःख अकारण नहीं, बल्कि तृष्णा से उद्भूत है, तृष्णा के निरोध से ही मानव को शान्ति प्राप्त हो सकती है, यदि ऐसा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न किया गया तो स्वार्थ और अहंकार विश्व मानवता को समाप्त कर देंगे, यह भवचक्र कैसे गतिशील होता है और कैसे गतिहीन-इन सबका यथार्थ ज्ञान ही सम्यक् दृष्टि कहलाता है। यह सम्यक् दृष्टि ही आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रथम सोपान है।

२. **सम्यक् संकल्प**-साधक को यथार्थ दृष्टि प्राप्त हो जाने पर शुभ कर्मों का संकल्प लेना पड़ता है। यह संकल्प त्याग, मैत्री और अहिंसा का है। तृष्णा ही दुःख का मूल कारण है और उसका विनाश तभी सम्भव है जब हम सभी मानवों के साथ मैत्री, त्याग और अहिंसा का व्यवहार करें। इस प्रकार सम्यक् संकल्प में साधक को राग-द्वेष और हिंसा के परित्याग का संकल्प लेना होता है।

३. **सम्यक् वाणी**-मिथ्या वचन से विरति ही सम्यक् वाणी कही गयी है। मिथ्या वचन चार प्रकार के हैं : असत्यभाषण, पिशुनता, कटुभाषण और अनर्थकर वचन। इस बात पर विश्व के सभी धर्म एकमत हैं कि असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है और सत्य से बढ़कर कोई पुण्य नहीं। यह सत्यभाषण प्रेम, विनम्रता और सम्मान से सम्पन्न हो-यही सम्यक् वाणी का यथार्थ स्वरूप है।

४. **सम्यक् कर्मान्त**-चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि कार्य समाज के लिए अनर्थकारी हैं। इनसे समाज में अशान्ति और अव्यवस्था उत्पन्न होती है। अतः इन बातों से विरत रहना ही सम्यक् कर्मान्त है जिससे मानव पापकर्म से ऊपर उठता है और सदाचारी बनता है।

५. **सम्यक् आजीविका**-प्रत्येक मानव को जीवनयापन के निमित्त कुछ न कुछ कर्म करना पड़ता है। यह कर्म या जीविका समाज के लिए अहितकर, उद्वेजक या अशोभनीय नहीं होने चाहिए, बल्कि सज्जनोचित एवं शोभनीय ही होने चाहिए। दूसरों को कष्ट देकर जीविकोपार्जन को भगवान् बुद्ध ने निन्द्य माना है। वे मद्य-विक्रय, शस्त्र-विक्रय, मांसविक्रय, आखेट, विषविक्रय, पशु या दास विक्रय, भविष्यकथन आदि को वर्ज्य मानते हैं। इन व्यावसायों का परित्याग कर, अन्य साधनों से सदाचारपूर्वक जीविका चलाना ही सम्यक् अजीविका कहलाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६. **सम्यक् व्यायाम**-यहां व्यायाम का अर्थ शारीरिक श्रम, कसरत या

आसन नहीं, बल्कि उद्योग या मानसिक प्रयत्न है। साधक को यथासम्भव अकुशल कर्मों से बचना चाहिए और कुशल कर्मों में प्रवृत्त होना चाहिए-यही सम्यक् व्यायाम का तात्पर्य है। इसके अन्तर्गत चार प्रकार के मानसिक प्रयास आते हैं :

(क) अवगुणों के नाश का प्रयास,

(ख) नये अवगुणों से बचने का प्रयास,

(ग) गुणों का अधिकाधिक विकास, और

(घ) गुणों की यथासम्भव अभिवृद्धि।

इस प्रकार अवगुणों का निराकरण कर गुणों की अभिवृद्धि का प्रयास ही सम्यक् व्यायाम का यथार्थ स्वरूप है।

७. सम्यक् स्मृति-स्मृति का अर्थ है जागरूकता। जिस प्रकार नगरद्वार पर स्थित द्वारपाल प्रत्येक आगन्तुक पर दृष्टि रखता है और अनर्थकारी तत्त्वों का निवारण करता है, उसी प्रकार स्मृति भी चित्त-द्वार पर स्थित होकर अकुशल कर्मों के प्रवेश का निवारण करती है। शरीर को अपवित्र पदार्थों का पुञ्जमात्र समझना, शारीरिक कष्टादि वेदनाओं का अवलोकन करना, अपने चित्त तथा इन्द्रियबन्धनों का अवलोकन करना तथा उनके विनाश का प्रयास करना, मन को ऊर्ध्वगति देना आदि प्रयास सम्यक् स्मृति के अन्तर्गत आते हैं।

८. सम्यक् समाधि-किसी जीवित या मृत शरीर पर, करुणा, मैत्री आदि मनोवृत्तियों पर अथवा पृथ्वी, जल आदि किसी महाभूत पर चित्त को एकाग्र करके ध्यान का सम्पादन करना ही समाधि है। कुशल चित्त की एकाग्रता को ही समाधि कहा जाता है। सत्कर्म के लिए समाधि आवश्यक है। समाधिस्थ भिक्षु को सांसारिक लोभ आदि विचलित नहीं कर पाते। सम्यक् समाधि में चारों प्रकार के योग आ जाते हैं।

उक्त आठ अंगों वाला यह मार्ग ही आर्य अष्टांगिक मार्ग कहलाता है। निर्वाण पद के इच्छुक व्यक्ति के लिए यह श्रेष्ठ मार्ग है। इस मार्ग के पथिक को न शरीर-शोषण में विश्वास रखना चाहिए और न ही भोग-विलासों में आस्था, बल्कि मध्यममार्ग का अवलम्बन आगे बढ़ना चाहिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मध्यमाप्रतिपदा

भगवान् बुद्ध ने जीवनविषयक जिस मार्ग का उपदेश दिया है वह मध्यम मार्ग या मध्यमा प्रतिपदा (मज्झिमा पटिपदा) कहालाता है। अतिविलास तथा शरीर-शोषण दोनों के मध्य रहने से ही इसे मध्यमा प्रतिपदा नाम दिया जाता है। इस मार्ग का स्वरूप स्वयं बुद्धदेव ने इस प्रकार बतलाया है-

''द्वे भिक्खवे अन्ता पब्बजितेन न सेबितब्बा। कतमे द्वे? यो चायं कामेसु कामसुखल्लिकानुपयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो। यो चायं अन्त किलमथानुपयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो, एते खो भिक्खवे उभे अन्ते अनुगम्य मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभसंवुद्धा चक्खुकरणी, जाणकरणी उपसमाय अभञ्जाय सम्बोधाय निब्बानं संवत्तति।''

अर्थात्, हे भिक्षुओं ! परिव्राजक को दो अन्तों का सेवन नहीं करना चाहिए। वे दो अन्त कौन से हैं? एक तो कामसुख की इच्छा में लगे रहना-यह अत्यन्त हीन, ग्राम्य, सामान्य जनसेवित, अनार्य और अनर्थकर है। दूसरा शरीर को क्लेश देना-यह दुःखमय, अनार्य और अनर्थकर है। हे भिक्षुओं ! इन दोनों अन्तों को छोड़कर तथागत ने मध्यमा प्रतिपदा का ज्ञान प्राप्त किया है। यह प्रतिपदा चक्षु देने वाली है, ज्ञान देने वाली है, चित्त को शान्ति प्रदान करती है, ज्ञान, सम्बोध तथा निर्वाण को प्राप्त कराती है।

बुद्धदेव का जन्म तथा लालन-पालन राजवंश में हुआ था, किन्तु उनका परवर्ती जीवन योगियों तथा संन्यासियों के मध्य व्यतीत हुआ था। इस प्रकार जन्म से लेकर बोधप्राप्ति तक उन्होंने दोनों अतिवादों का सम्यक् निरीक्षण-परीक्षण कर लिया था। प्रथम वर्ग था वैभव-सम्पन्न धनाढ्यों का जो सम्पदा-सम्पन्न होने से सुरा और सुन्दरी के साथ जीवनयापन कर रहा था। उनका न अध्यात्म से सम्बन्ध था और न यथार्थ जीवन से सम्पर्क ही। वे विलासितापूर्ण जीवन का भरपूर आनन्द ले रहे थे और इससे बाहर जाने को न बाध्य थे और न तैयार ही। बुद्ध ने भिक्षुओं के लिए इस विलासितायुक्त मार्ग का निषेध किया है और इसे हीन, ग्राम्य, सामान्यजन-सेवित, अनार्य और अनर्थकर माना है। वस्तुतः परिव्राजक इस मार्ग का आचरण कर ही नहीं सकता क्योंकि यह मार्ग तो घोर विलासी और कामुक व्यक्तियों का है। दूसरा वर्ग था योगियों और संन्यासियों का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जो देहदण्डन को ही पापनाशक तथा मोक्षमार्ग समझते थे। ये लोग अन्न छोड़ देते थे जिससे शरीर अत्यन्त कृश हो जाता था। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो काफी समय तक एक ही पैर पर खड़े रहना, भीषण ग्रीष्म में पंचाग्नि-तप, शीत में नदी में पड़े रहना आदि साधनों के द्वारा देह को दण्डित करते थे। बुद्धदेव ने भिक्षुओं को बताया कि देह को अत्यन्त कृश या रुग्ण बना देने या नानाविध उपायों से दण्डित करने से न पापों से मुक्ति मिलती है और न पुण्यों की प्राप्ति ही होती है। शरीर को नियन्त्रित करने से पूर्व मन को नियन्त्रित करना चाहिए क्योंकि सम्पूर्ण पापों को मूल मन ही है। शरीर को कृश करने या रुग्ण बना देने से किसी भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। अतः साधकों को इन दोनों अतिवादों से बचना चाहिए।

मध्यम मार्ग का यह उपदेश बुद्ध के अनेक प्रवचनों में विविध रूपों से उपलब्ध होता है। एक प्रवचन का सार यहां देना अप्रासंगिक न होगा। सोण कोळिविस ने, जो बहुत सम्पन्न परिवार में पले थे, भिक्षु होने पर कठिन तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी। नंगे पैर घूमने से उनके पैर फट गये और रक्त बहने लगा। उनकी दशा को देखकर बुद्धदेव को बहुत दुःख हुआ। वे समझाने के लिए उससे पूछने लगे--

'सोण ! गृहस्थ होते समय तुम वीणा बजाने बजाने में चतुर थे न।'

'हां भन्ते !'

'तो क्या सोण ! जब तुम्हारी वीणा के तार बहुत जोर से खिंचे होते थे उस समय तुम्हारी वीणा स्वरवाली होती थी।'

'नहीं भन्ते !'

'तो क्या सोण ! जब तुम्हारी वीणा के तार बहुत ढीले होते थे उस समय तुम्हारी वीणा बहुत स्वरवाली हाती थी।'

'नहीं भन्ते !'

'तो क्या सोण ! जब तुम्हारी वीणा के तार न बहुत जोर से खिंचे होते थे और न बहुत ढीले होते थे, उससमय तम्हारी वीणा स्वरवाली हाती थी।'

'हां भन्ते !'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'इसी प्रकार सोण ! अत्यधिक उद्योगपरायणता औद्धत्य को उत्पन्न करती है, अत्यधिक शिथिलता आलस्य को जन्म देती है। इसलिए सोण ! उद्योग करने में समता ग्रहण करो।'

यहां बुद्ध ने वीणा के माध्यम से स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार वीणा से मधुर स्वर तभी जिकलता है जब उसके तार न बहुत अधिक खिंचे हों और न बहुत ढीले हों, बल्कि मध्य में अवस्थित हों, इसी प्रकार आध्यात्मिक चिन्तन तभी सम्भव है जब साधक की इन्द्रियां न तो कामसुखों में लिप्त हों और न ही उसका शरीर नानाविध यातनाओं से पीड़ित हो। अतः उक्त दोनों मार्गों को साधक के लिए अनुपयुक्त मानकर मध्यम स्थिति का प्रतिपादन किया है जिसे मध्यमा प्रतिपदा नाम से अभिहित किया जाता है।

प्रतीत्यसमुत्पाद

शाक्य-सिंह गौतम ने बोधिप्राप्ति के समय जिन सत्यों का साक्षात्कार किया था, उनमें प्रतीत्यसमुत्पाद भी है। यह बौद्धधर्म का एक प्रमुख सिद्धान्त है। प्रारम्भ में यह अत्यन्त सरल सिद्धान्त था, लेकिन धीरे-धीरे इसे गहन दर्शन का स्वरूप प्राप्त होता गया और इस प्रर वाद-विवाद भी होने लगे। आचार्य बुद्धघोष ने 'विशुद्धिमार्ग' में इसका विस्तृत एंव गहन विवेचन किया है जिसे पढ़कर विद्वान् भी हतप्रभ हो उठता है, सामान्यजन की तो बात ही क्या है।

'प्रतीत्यसमुत्पाद' शब्द की व्युत्पत्ति 'अमिधम्मकोशभाव्य' में इस प्रकार की गयी है-प्रति का अर्थ है प्राप्ति। 'इण्' धातु गत्यर्थक है लेकिन उपसर्ग लगने से धातु का अर्थ परिवर्तित हो जाता है। अतः प्रति उपसर्ग पूर्वक इण् धातु का अर्थ प्राप्त करना होता है और 'प्रतीत्य' का अर्थ हुआ 'प्राप्तकर'। 'पद्' धातु सत्तार्थक है। सम् तथा उत् उपसर्गपूर्वक इसका अर्थ हुआ 'प्रादुर्भाव'। आचार्य अनिरुद्ध इस व्युत्पत्ति की व्याख्या इस प्रकार करते हैं-'जो प्रत्ययसमूह प्रत्ययसामग्री की अपेक्षा करके साथ-साथ प्रत्ययोत्पन्न धर्मों का उत्पाद करता है वह प्रत्ययसमूह ही प्रतीत्यसमुत्पाद है।' वस्तुतः प्रतीत्यसमुत्पाद में कार्यकारण के सिद्धांत के आधार पर सत्त्व के बन्धन एवं मोक्ष की विवेचना की गयी है। इस सिद्धान्त में यह बताया गया है कि किसके होने से क्या उत्पन्न होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसके न होने पर आगे का प्रत्यय न होगा और सम्पूर्ण भवचक्र रुक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जायेगा। यह कारण-सिद्धान्त इस प्रकार कहा गया है-'इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उपज्जति। इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोध इदं निरुज्झति।' अर्थात् इसके होने पर यह होता है, इसके उत्पन्न होने पर यह उत्पन्न होता है। इसके न होने पर यह नहीं होता, इसके रुक जाने से यह रुक जाता है।

यद्यपि बौद्धधर्म कार्यकारण की अविच्छिन्न परम्परा को स्वीकार नहीं करता तथापि यह अवश्य मानता है कि एक से दूसरे की उत्पत्ति होती है। बुद्धदेव ने प्रतीत्यसमुत्पाद में इस परम्परा को इस रूप में रखा है--

''अविज्जापच्चया संङ्खारा, सङ्खारपच्चया विञ्ञान, विञ्ञानपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनं, सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जातिः, जातिपच्चया जरामरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति, एवं एतस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होतीति।''

अर्थात्, अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान प्रत्यय से नामरूप, नामरूप प्रत्यय से छः आयतन, छः आयतनों के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श प्रत्यय से वेदना, वेदनाप्रत्यय से तृष्णा, तृष्णाप्रत्यय से उपादान, उपादानप्रत्यय से भव, भवप्रत्यय से जाति, जातिप्रत्यय से जरा, मरण, शोक, परिदेवना, दुःख, दौर्मनस्य एवं अशान्ति उत्पन्न होते है। इस प्रकार दुःखस्कन्ध का उदय होता है।

दुःखों के कारणों की खोज करते-करते तथागत अविद्या तक पहुंचते हैं। अविद्या इस शृंखला की प्रथम कड़ी है जो द्वितीय से जुड़कर इस भवचक्र को संचालित करती है। इस शृंखला में प्रत्येक कड़ी दूसरी का कारण तथा पहली का कार्य होती है। यदि प्रथम कड़ी अविद्या से अन्य की उत्पत्ति ही न हो तो सत्त्व दुःख की प्राप्ति से बच सकता है। इस शृंखला में अविद्या प्रथम कड़ी है जिसके कारण सत्त्व अशाश्वत को शाश्वत समझने लगता है और वह उसमें आसक्त होता है। इस आसक्ति के कारण ही वह कर्मजाल में बंधता है और कर्मों का एकत्रित रूप ही संस्कार कहलाता है। इन संस्कारों से विज्ञान की उत्पत्ति होता है और विज्ञान से नामरूप की। इस नामरूप से स्पर्श का जन्म होता है शब्द,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-ये सभी स्पर्श के विभिन्न रूप हैं। इस स्पर्श से वेदना (सुख-दुःख) की अनुभूति होती है। वेदना से तृष्णा उत्पन्न होती है और तृष्णा से उपादान। उपादान का शाब्दिक अर्थ सामग्री है, लेकिन यहां यह शब्द प्रवृत्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रवृत्ति से ही सत्त्व आगे जन्म लेता है। जन्म से जरा, मरण, शोक, परिदेवना, दुःख, दौर्मनस्य एवं अशान्ति की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण दुःखस्कन्ध का उदय अविद्या से ही होता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दुःखसंघात का मूल कारण अविद्या ही है। अविद्या अज्ञान को कहते हैं। इसकी उत्पत्ति आसव से मानी जाती है। आसव अर्थात् मदिरा, जगत् में चिरकाल से रखी मदिरा को ही आसव कहते हैं। यह आसव चार प्रकार का माना गया है-कामासव, भवासव, दृष्ट्यासव और अविद्यासव। राग-द्वेष को कामासव, जिजीविषा को भवासव, यथार्थदृष्टि के अभाव को दृष्ट्यासव तथा आर्यसत्यों का ज्ञान न होना अविद्यासव कहा जाता है। आसवों से ही अविद्या की उत्त्पत्ति होती है जो कार्यकारणसम्बन्ध से दुःख की जननी है। यदि आसवों को दूर कर दिया जाये तो अविद्या का विनाश हो जाता है। अविद्या के नष्ट हो जाने पर सम्पूर्ण भवचक्र नष्ट हो जाता है। भवचक्र के इस विनाश को प्रतिलोम प्रतीत्यसमुत्पाद में कहा गया है--

"अविज्जानिरोधा सङ्खानिरोधो, सङ्खानिरोधा विञ्ञाननिरोधो, विञ्ञाननिरोधा नामरूपनिरोधो, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो, फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो, उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा, जरामरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झति। एवमेतस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होतीति।"

अर्थात्, अविद्या के निरोध से संस्कारनिरोध, संस्कारनिरोध से विज्ञाननिरोध, विज्ञाननिरोध से नामरूपनिरोधो, नामरूपनिरोध से षड़ायतननिरोध, षड़ायतननिरोध से स्पर्शनिरोध, स्पर्शनिरोध से वेदनानिरोध, वेदनानिरोध से तृष्णानिरोध, तृष्णानिरोध से उपादाननिरोध, उपादाननिरोध से भवनिरोध, भवनिरोध से जातिनिरोध, जातिनिरोध से जरा, मरण शोक, परिदेवना, दौर्मनस्य एवं अशान्ति का नाश होता है। इस प्रकार दुःखस्कन्ध का निरोध (नाश) हो जाता है।

प्रतीत्यसमुत्पाद में बारह अंग हैं इसीलिए इसे द्वादशांग भी कहा जाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इन अंगों का निदान भी कहा जाता है। इनमें प्रत्येक अंग या निदान दूसरे का कारण (प्रत्यय) बनता है। इनकी उत्तरोत्तर उत्पत्ति से ही यह भवचक्र चलता है इसीलिए इसे भवचक्र नाम भी दिया जाता है।

द्वादश अंग

प्रतीत्यसमुत्पाद के प्रसंग में जिन अंगों या निदानों का उल्लेख हुआ है उनकी संख्या बारह है अतः वे द्वादश अंग कहे जाते हैं। ये अंग हैं-अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षड़ायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और जरा-मरण। इन अंगों की व्याख्या में तीन जन्मों का समावेश हो जाता हैं अविद्या और संस्कार विगत जन्म के द्योतक हैं, विज्ञान से लेकर भव तक आठ अंग वर्तमान जीवन से सम्बद्ध हैं तथा अन्तिम दो भावी जीवन का संकेत देते हैं। तात्पर्य यह है कि अतीत के कार्यों के फलस्वरूप वर्तमान जीवन की उत्पत्ति होती है और इसी से भावी जीवन का बीजवपन हो जाता है।

यहां इन अंगों के स्वरूप को संक्षेप में समझ लेना चाहिए--

१. **अविद्या**-अविद्या का अर्थ अज्ञान है। धर्म के स्वभाव को ढकने वाली शक्ति अविद्या कही जाती है। धर्म का यथार्थ ज्ञान न होने देना इसका कार्य है और मोह के रूप में प्रतिबिम्बित होना इसकी अभिव्यक्ति है। सामान्यतः आर्यसत्यों के अज्ञान को भी अविद्या कह दिया जाता है। आचार्य वसुबन्धु ने पूर्वजन्म की क्लेशावस्था को ही अविद्या कहा है। इसे अविद्या इसलिए भी कहा जाता है चूंकि यह विद्यमान पदार्थों को छोड़कर अविद्यमान विषयों की ओर दौड़ती है। अज्ञान, मोह, अदर्शन इसके पर्यायवाची हैं।

२. **संस्कार**-संस्कार का अर्थ है संगृहीत किया हुआ, किन्तु यहां इसका तात्पर्य शुभ-अशुभ कर्म लिया गया है। अविद्या के कारण जीव जो भी शुभाशुभ कर्म करता है वे सभी संस्कार कहलाते हैं। यह पूर्वजन्म की कर्मावस्था है जो वर्तमान का कारण होती है। जीव मन, वाणी और कर्म तीनों ही रूप में क्रियाशील रहता है। अतः संस्कारों के तीन भेद किये गये हैं : मनःसंस्कार, वाक्संस्कार और कायसंस्कार। इन सभी कर्म-बीजों की उत्पत्ति अविद्या के कारण ही होती है।

३. **विज्ञान**-विज्ञान से तात्पर्य गर्भ या प्रतिसन्धि से है। माँ के गर्भ में सत्त्व

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का प्रथम प्रवेश प्रतिसन्धि कहा जाता है अथवा एक भव से दूसरे भव के संयोग को प्रतिसन्धि नाम दिया जाता है। वस्तुतः यह वह अवस्था हे जिसमें सत्त्व मां के गर्भ में प्रवेश करके चेतनावस्था प्राप्त करता है।

४. **नामरूप**-इसमें दो स्वतन्त्र शब्दों का समास है। ये हैं नाम और रूप। नाम का अर्थ है चेतना जिसके अन्तर्गत संज्ञा, वेदना, संस्कार और विज्ञान ये चार स्कन्ध आते हैं। रूप से तात्पर्य भौतिक पदार्थों से लिया जाता है। इसके अन्तर्गत चार महाभूतों-पृथ्वी, जल, तेज और वायु-की गणना की जाती है। नाम और रूप मिलकर पंचस्कन्ध कहलाते हैं। नाम मानसिक धर्म कहे जाते हैं और रूप शारीरिक धर्म, क्योंकि इनसे ही जीव के क्रमशः मन तथा शरीर की संरचना होती हैं।

५. **षड़ायतन**-पांच ज्ञानेन्द्रिय-नेत्र, कान, नाक, जिस्वा और त्वचा तथा मन ये छः इन्द्रियां मिलकर षड़ायतन कहलाते हैं। यहां 'आयतन' शब्द इन्द्रियों का बोधक है। ये छः आयतन ही ज्ञानप्राप्ति के साधन हैं। षड़ायतन जीव की उस अवस्था का सूचक है जब वह माता के गर्भ से बाहर आता है। उस समय उसे ये आयतन प्राप्त तो होते हैं, किन्तु वह उनका प्रयोग नहीं कर पाता।

६. **स्पर्श**-विभिन्न इन्द्रियों के विषयों के साथ संसर्ग को स्पर्श कहा जाता है। यह वह अवस्था है जब जीव मां के गर्भ से बाहर आकर बाह्य जगत् के सम्पर्क में आता है और ज्ञान प्राप्त करता है। छः आयतनों के आधार पर स्पर्श को भी छः भागों में विभाजित किया गया है।

७. **वेदना**-वेदना का अर्थ है अनुभूति। इन्द्रियों का विषयों के साथ संसर्ग होने पर उसका मन पर जो सुख-दुःखात्मक प्रभाव पड़ता है, वेदना कहलाता है। यह तीन प्रकार का हो सकता है-सुखात्मक, दुःखात्मक और सुखदुःखात्मकता से शून्य। जब जीव को सुखात्मक वेदना होती है तो उसे पुनः-पुनः प्राप्ति की इच्छा होती है। इसी से तृष्णा की उत्पत्ति होती है।

८. **तृष्णा**-विषयों के प्रति जीव की लालसा तृष्णा कहलाती है। यह आसक्ति को जन्म देती है और पुनर्भव का कारण होती है। यह तीन प्रकार की मानी गयी है-कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा। विषयभोगों की तृष्णा कामतृष्णा कहलाती है, संसार में अस्तित्ववान् रहने या पुनः-पुनः जन्म लेने की तृष्णा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भवतृष्णा तथा जीवन एवं जगत् के विनाश की इच्छा विभवतृष्णा कहलाती है। यदि जीव तृष्णा के बन्धन से मुक्त हो जाये तो उसे पुनर्भव से मुक्ति मिल जाती है।

९. उपादान-उपादान का शाब्दिक अर्थ सामग्री है लेकिन यहां 'प्रवृत्ति' अर्थ लिया गया है। तृष्णा के कारण जीव नानाविध विषयों में प्रवृत्त होता है। इस प्रविृत्ति को ही उपादान कहा जाता है। उपादान का अर्थ है विषयों का दृढ़तापूर्वक ग्रहण। यह उपादान चार प्रकार का कहा गया है-वासनाओं से चिपटे रहना कामोपादान, मिथ्या सिद्धान्तों में आस्था दृष्ट्युपादान, निरर्थक आचरणों का परिपालन शीलव्रतोपादान तथा आत्मा के अस्तित्व में पड़ना आत्मवादोपादान कहलाता है।

१०. भव-भव का अर्थ है होना। वे कर्म जो पुनर्भव का कारण होते हैं भव कहलाते हैं। यह भव दो प्रकार का होता है-उपपत्ति भव और कर्म भव। जिस प्रवृत्ति से सत्त्व नानाविध लोकों में जन्म लेता है वह उपपत्ति भव कहलाता है। जिन कर्मों के कारण वह पुनर्भव को प्राप्त होता है वे कर्म भव कहलाते हैं।

११. जाति-जाति का अर्थ है जन्म लेना। पूर्वजन्म के अविद्या और संस्कारों के कारण जीव को जन्म लेना पड़ता है। यह जन्म लेना ही जाति है। नामरूप का स्फुरण ही जाति कहलाता है।

१२. जरा-मरण-जरा-मरण जीवन की अन्तिम अवस्था है। शरीर का जीर्ण-शीर्ण होना जरा तथा उसका अवसान, मरण या मृत्यु कहलाता है। जीव के जन्म लेते ही उसके विध्वंस के कार्य भी प्रारम्भ हो जाते हैं। जो भी जन्म लेता है वह अन्त में जरा और मृत्यु को प्राप्त अवश्य होता है। इस जरा और मरण से जीव शोक, परिदेवना, दुःख, दौर्मनस्य और अशान्ति को प्राप्त होता है।

उक्त द्वादश अंगों का यही क्रम है जिससे यह भवचक्र निरन्तर चल रहा है। इन अंगों में उत्तरोत्तर दुःख की मात्रा बढ़ती जाती है। यदि जीव जरा-मरण तथा तज्जन्य शोक, परिदेवना, दुःख, दौर्मनस्य और अशान्ति को रोकना चाहता है तो उसे उसके कारण जन्म और मूलकारण अविद्या को ही नष्ट करना होगा। जिस प्रकार फल चाहने वाला व्यक्ति वृक्ष की जड़ों की सिंचाई करता है फलों की नहीं, उसी प्रकार जरा-मरण से बचने वाले जीव के लिए उसके कारण जन्म और मूलकारण अविद्या को नष्ट करना ही उचित है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शिक्षात्रय (शील, समाधि और प्रज्ञा)

बौद्धधर्म में निर्वाण पद की प्राप्ति के लिए जिस साधना-मार्ग का उपदेश दिया गया है वह तीन पदों में समन्वित है। ये पद हैं-शील, समाधि और प्रज्ञा। इन तीनों को ही 'शिक्षात्रय' नाम भी दिया जाता है। संयुक्त निकाय में कहा गया है, "शील में स्थित होकर, समाधि और प्रज्ञा की भावना करते हुए उद्योगी और ज्ञानसम्पन्न भिक्षु ही इस संसार की उलझनों को सुलझा सकता है।" तात्पर्य यह है कि बौद्धधर्म का सम्पूर्ण साधनापथ शील, समाधि और प्रज्ञा इन तीन शिक्षापदों पर ही अवलम्बित है। वस्तुतः अष्टांगिक मार्ग आठों अंग इन्हीं तीनों में समाविष्ट हो जाते है।

शील-बौद्धधर्म में प्रतिपादित साधना-मार्ग का प्रथम चरण शील है। शील में प्रतिष्ठित होने पर ही समाधि की भावना सम्भव है। 'शील' शब्द सदाचार के नियमों के अर्थ में प्रचलित है और इसी अर्थ में यहां प्रयुक्त भी। यों तो विनयपिटक में भिक्षुओं के सदाचारविषयक नियमों की लम्बी सूची दी गयी है लेकिन शील के प्रसंग में पंचशील और दशशील की विवेचना की जाती है।

बौद्धधर्म में मतानुयायी दो प्रकार के माने जाते हैं-उपासक और भिक्षु। उपासक गृहस्थ में रहते हैं किन्तु बौद्धधर्म का अनुशासन स्वीकार करते हैं, जबकि भिक्षु गृहत्यागी होते हैं। उनका समस्त जीवन धर्म और संघ के लिए समर्पित होता है। बौद्धधर्म में दोनों के लिए पृथक्-पृथक् दृष्टि रखी गयी है। गृहस्थ उपासकों को पांच शिक्षापदों (सदाचारविषयक पांच नियमों) का पालन करना होता है जबकि भिक्षुओं को दस शिक्षापदों का। इन दस शिक्षापदों में पांच उपासकों वाले ही होते हैं तथा पांच उनके अतिरिक्त। इस प्रकार भिक्षुओं को अधिक धार्मिक नियन्त्रण सहन करना पड़ता है जो स्वाभाविक ही है। ये शिक्षापद इस प्रकार हैं--

पंचशील-उपासकों के लिए

१. जीवहिंसा से विरति (अहिंसा)
२. चोरी से विरति (अस्तेय)
३. व्यभिचार से विरति (ब्रह्मचर्य)
४. असत्यभाषण से विरति (सत्य)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५. मद्यपान से विरति (मद्यनिषेध)

दशशील-भिक्षुओं के लिए उक्त पांच नियमों के अतिरिक्त निम्न पांच नियमों का भी पालन करना आवश्यक है-

६. असमय भोजन से विरति,
७. नृत्यगीतादि से विरति,
८. माल्यगन्धविलेपन से विरति,
९. उच्चासन आरामदायक शैय्या से विरति, और
१०. सोना चांदी ग्रहण से विरति।

उक्त शिक्षापदों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् बुद्ध ने उपासकों के लिए उन्हीं शिक्षापदों का विधान किया है जो उन्हें एक सभ्य एवं सुसंस्कृत नागरिक बनाने में सक्षम हैं। आर्षग्रन्थों में उल्लिखित पांच यमों-सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह में प्रायः इन्हीं का वर्णन है। भिक्षुओं से अधिक अपेक्षा करना स्वाभाविक है। उनके लिए ऐसे शिक्षापदों का विधान किया गया है जो उन्हें साधना-मार्ग पर अग्रसर करने में सहायक है। इन नियमों के पालन के बिना साधक न निष्काम बन सकता है और न विरक्त ही। ये शिक्षापद भिक्षुत्व के उच्च जीवन के अनुरूप ही हैं।

समाधि-बौद्धधर्म द्वारा प्रतिपादित साधना-मार्ग का द्वितीय चरण समाधि है। शील से कायिक और वाचिक संयम का बोध होता है और समाधि से मानसिक संयम का। यद्यपि मन, शरीर और वाणी से नितान्त परे नहीं है किन्तु शील से मानसिक संयम की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती।

'समाधि' का शाब्दिक अर्थ है सम्यक् आधान। चित्त या मानसिक प्रवृत्तियों को किसी वस्तुविशेष पर अवस्थित कर देना ही समाधि या सम्यक् आधान है। चित्त स्वभाव से ही चंचल है। गीता में उसका निग्रह वायु के समान दुष्कर माना गया है लेकिन वैराग्य और अभ्यास से उसे सम्भव कहा गया है।[1] इस चंचल, यत्र-तत्र दौड़ने वाले, विषयानुरागी चित्त को किसी वस्तुविशेष पर अवस्थित कर देना ही समाधि है। इसे ही चित्त की एकाग्रता कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, चित्त का विक्षेपरहित लक्षणसम्पन्न होना ही समाधि है।

(१) गीता, ६/३४-३५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

समाधि मुख्यतः दो प्रकार की मानी जाती हैं : रूप समाधि और अरूप समाधि। इन्हें ही आर्षग्रन्थों में क्रमशः सम्प्रज्ञात या सविकल्प समाधि तथा असम्प्रज्ञात या निर्विकल्प समाधि कहा जाता है। यहां इनके स्वरूप को अत्यल्प शब्दों में स्पष्ट करना उचित ही होगा--

(क) **रूप समाधि**-जब चित्त बाह्यविषयों से हटकर एकाकार वृत्ति धारण करता है तो उसे एकाग्र या एकोन्मुखी कहा जाता है। इस अवस्था में चित्त प्रतिक्षण, यहां तक कि सोते-जगते भी, एक ही मूलभूत लक्ष्य पर केन्द्रित रहता है। दूसरे शब्दों में, एकाग्रता उसका स्वभाव बन जाता है। इसे ही रूप या सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है। इसमें चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध नहीं होता, बल्कि ध्येय रूप में अवलम्बित विषय को आश्रय करके चित्तवृत्ति उस समय भी वर्तमान रहती है और निरन्तर अपने अनुरूप वृत्तिप्रवाह को उत्पन्न करती रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस समाधि से चित्त पूर्णतः निरुद्ध नहीं होता, बल्कि विषय के साथ एकाकार हो जाता है। इस एकाग्रता में उसे इतर विषयों का ध्यान ही न रहता हो-ऐसा नहीं है, इसीलिए इसे रूप या सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है।

(ख) **अरूप समाधि**-जब चित्त की एकाकार वृत्ति भी अन्य संस्कारों में लीन हो जाती है तो उसे निरुद्धचित्त कहा जाता है। इस अवस्था में चित्त सदा-सर्वदा के लिए निरुद्ध तथा स्ववश हो जाता है, अतः साधक को इतर विषयों का ज्ञान ही नहीं रहता। इसीलिए इसे अरूप या असम्प्रज्ञान समाधि कहा जाता है। इसे 'संस्कारशेष' भी कहा जाता है क्योंकि इसमें चित्तवृत्ति के पूर्णतः निरुद्ध हो जाने पर भी संस्कार शेष रहता है जो वैराग्य के बार-बार के अभ्यास से समाप्त हो जाता है।

जिस प्रकार साधक शील से शारीरिक और वाचिक दोषों से मुक्ति पाता है, उसी प्रकार समाधि द्वारा मानसिक चांचल्य से मुक्त हो जाता है। सम्पूर्ण दोषों का कारण मानसिक चांचल्य ही है, अतः समाधि द्वारा साधक बहुत बड़ी उपलब्धि प्राप्त कर लेता है।

प्रज्ञा-बौद्धधर्म द्वारा प्रतिपादित साधना-मार्ग का तृतीय और अन्तिम चरण प्रज्ञा है। कायिक, वाचिक और मानसिक संयम के उपरान्त ही ज्ञानप्राप्ति की बात

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आती है। वस्तुतः चित्त का समाहित होता प्रज्ञा की पूर्वभूमि है, इसलिए शील एवं समाधि की प्रतिष्ठा के बाद ही प्रज्ञा की स्थापना उचित मानी जाती है।

प्रज्ञा का अर्थ है प्रकृष्ट ज्ञान, सांसारिक वस्तुओं और पदार्थों का वास्तविक स्वरूप-ज्ञान। चूंकि यह साधना-मार्ग निर्वाण को लक्ष्य बनाकर चलता है इसलिए बौद्ध धर्म में निर्वाण की ओर ले जाने वाला ज्ञान ही प्रज्ञा कहा जाता है। बौद्ध शब्दावली में कुशल चित्त से युक्त विपश्यना ज्ञान ही प्रज्ञा कहलाती है। डा० करुणेश शुक्ल के शब्दों में--

"जहां सभी लौकिक ज्ञान परावृत्त हो जाते हैं, धर्मों का उपशम हो जाता है, स्कन्ध, धातु और आयतन की भावना भी परिहृत हो जाती है, वही अद्वय ज्ञान प्रज्ञा है। प्रज्ञा सभी प्रकार के लौकिक द्वन्द्वों से शून्य है। वस्तुतः प्रज्ञा और शून्यता अभिन्न हैं। प्रज्ञा भी शून्यता की भांति समस्त विकल्पात्मक दृष्टियों का निरास है। वह परमार्थस्वरूप और तथागतरूपिणी है।"(१)

आचार्य बुद्धघोष ने प्रज्ञा के स्वरूप के पूर्ण उद्घाटन के लिए 'प्रज्ञावृक्ष' की कल्पना की है। वृक्ष में तीन बातें ज्ञातव्य होती हैं :

प्रथम, एक आधार भूमि की स्थिति आवश्यक है जिस पर वह अवलम्बित रहता है। द्वितीय, वृक्ष में मूल होता है जो उसे धारण करता है। तृतीय, वृक्ष का शरीर होता है जो मूल और आधारभूमि दोनों द्वारा धारण किया जाता है। इस दृष्टि से प्रज्ञावृक्ष में पंचस्कन्ध, षड़ायतन, आर्यसत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि धर्म आधारभूमि हैं, शीलविशुद्धि और चित्तविशुद्धि इसके दो मूल हैं तथा दृष्टिविशुद्धि, कांक्षावितरण विशुद्धि, मार्गामार्ग ज्ञानदर्शन विशुद्धि, प्रतिपत्ति ज्ञानदर्शन विशुद्धि और ज्ञानदर्शन विशुद्धि-यो पांचों विशुद्धियां इसके शरीर हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार वृक्ष को जानने के लिए आधारभूमि, मूल, शाखा-पत्रादि वृक्षशरीर को समझना आवश्यक है, उसी प्रकर प्रज्ञा का स्वरूप समझने के लिए पंचस्कन्ध, षड़ायतन, आर्यसत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद, सातों विशुद्धियां आदि को समझना आवश्यक है, तभी उसका पूर्ण स्वरूप उभकर सामने आता है।

निर्वाण

निर्वाण-प्राप्ति बौद्धधर्म का चरम लक्ष्य है। बौद्धसाधना की चरम परिणति

(१) हिन्दी साहित्य कोश (भाग १), पृष्ठ ६१२

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निर्वाण में ही होती है। बुद्धदेव ने अध्यात्मविषयक प्रश्नों को अव्याकृत (अनिर्वचनीय) माना था इसीलिए विस्तारपूर्वक उसकी चर्चा भी नहीं की। यही कारण है कि बौद्धधर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में निर्वाण पर काफी मतभेद है तथापि सभी सम्प्रदायों में इसकी विस्तृत चर्चा हुई है।

'निर्वाण' शब्द 'निर्' उपसर्गपूर्वक वन या वान शब्द से निष्पन्न हुआ है। बौद्धधर्म में 'वन' शब्द का अर्थ तृष्णा माना जाता है, अतः निर्वाण का अर्थ है तृष्णा की निवृत्ति, उसका निरोध या क्षय। कुछ विचारकों ने निर्वाण का अर्थ बुझना या शान्त हो जाना भी किया है। जिस प्रकार तेल एवं बत्ती के निश्शेष होने पर दीपक शान्त हो जाता है उसी प्रकार जीव के पंचस्कन्धों का शान्त हो जाना ही निर्वाण है।

यों तो निर्वाण का विवेचन बौद्धधर्म के सभी सम्प्रदायों में किया गया है और सभी में परस्पर वैभिन्र्य है तथापि निर्वाणविषयक दो विचारधाराएं मुख्य हैं। प्रथम का विकास स्थविरवाद में हुआ है और द्वितीय का महायान शाखा में। स्थविरवाद में निर्वाण का लक्षण दुःख का क्षय, रागक्षय, विराग आदि बताया गया है। दुःख का कारण है तृष्णा, तृष्णा से भव, भव से जाति और जाति से जरा-मरण-शोकादि की उत्पत्ति होती है। यदि तृष्णा का विनाश कर दिया जाये तो दुःख का पूर्ण निरोध हो सकता है। इस प्रकार तृष्णा के पूर्ण निरोध या अत्यय से भिक्षु जरा-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। 'मिलिन्दप्रश्न' में आचार्य नागसेन ने इसे विस्तारपूर्वक बताया है। उनका कहना है कि तृष्णा का पूर्णतः निरुद्ध हो जाना, पंचस्कन्धों का निश्शेषतः रुक जाना या सर्वथा लुप्त हो जाना ही निर्वाण है। जिस प्रकार जलती हुई अग्निशिखा बुझने पर दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार निर्वाणप्राप्त सत्त्व भी दिखाई नहीं देता। निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं रहता और पंचस्कन्ध भी विलीन हो जाते हैं। निर्वाण महासागर के समान शान्त है, सुखों का भण्डार है, दुःखों से रहित है। उसमें न नया है और न पुराना, न जीवन है और न मरण।

स्थविरवाद में ही कहीं-कहीं निर्वाण के दो रूप भी मिलते हैं : उपाधिशेष और अनुपाधिशेष। इन्हें ही क्रमशः निर्वाण और परिनिर्वाण नाम भी दिया जाता है। उपाधिशेष निर्वाण पूर्णताप्राप्त सन्तपुरुष को उपलक्षित करता है जिसमें पांचों स्कन्ध उपस्थित हैं लेकिन तृष्णा का अत्यय होने से पुनर्भव नहीं होता। ऐसे व्यक्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की स्थिति जीवन्मुक्त जैसी है। बुद्ध के अनेक वाक्यों से स्पष्ट होता है कि उनका उद्देश्य मिथ्या इच्छा का विनाश करना ही था जीवनमात्र का नहीं। तृष्णा, कामवासना, घृणा एवं अज्ञान का विनाश ही निर्वाण है। अनुपाधिशेष निर्वाण में क़ेवल तृष्णा का ही विनाश नहीं होता, बल्कि पञ्चस्कन्ध भी विलुप्त हो जाते हैं। इसे ही परिनिर्वाण भी कहा जाता है।

महायान सम्प्रदाय के परवर्ती साहित्य में निर्वाणविषयक अन्य धारण विकसित हुई है। वहां निर्वाण की तुलना प्रगाढ़ निद्रा से की जाती है जिसमें सत्त्व अपना व्यक्तित्व खोकर अनन्त यथार्थ सत्ता में विलीन हो जाता है। इस मत के अनुसार यह सम्पूर्ण भवांग है, सत्रूप का अनन्त प्रवाह है। अज्ञान की वायु ऊपर से गुजरती है और जीवन-सागर को चंचल बना देती है जिसके परिणामस्वरूप आत्मा का निर्माण होता है। यह आत्मा के जागरण की अवस्था कही जा सकती है। उसका प्रशान्त और अनन्त प्रवाह रुक जाता है, वह सत्प्रवाह से पृथक् हो जाती है। पुनः सत् के रूप में आने तथा अबाध प्रवाह में मिलने का नाम ही निर्वाण है। जिस प्रकार सुषुप्तिकाल में कोई भी विचार मानव को क्षुब्ध नहीं करता, बल्कि एक अपूर्व एवं अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार निर्वाण में सत्त्व को शान्तिमय विश्राम प्राप्त होता है। भिक्षुओं और भिक्षणियों ने अपने स्तोत्रों में निर्वाण के अनिर्वचनीय आनन्द का सुन्दर वर्णन किया है। 'धम्मपद' में उसे अमृतपद कहा गया है।

कुछ विचारकों ने निर्वाण का शून्यता के रूप में भी वर्णन किया है। पाश्चात्य विचारकों में अधिकांश का मत इसी प्रकार का है। प्रो० (श्रीमती) रीज़ डेविड्स के अनुसार, "बौद्धधर्म का निर्वाण केवल अभावात्मक विलोप है।" किशप विगान्डेट कहते हैं, "बौद्धधर्म का यह विधान एक अव्याख्येय एवं शोचनीय अव्यवस्थित चित्तता के साथ जनसाधारण को उसके नैतिक पुरुषार्थों के लिए पुरस्कारस्वरूप एक अगाध शून्यता की खाई की ओर निर्देश करता है।" ओल्डनवर्ग, दाहल आदि का झुकाव भी निषेधात्मक पक्ष की ओर ही है। बुद्धदेव के कथनों का इस प्रकार का अर्थ निकालना युक्तियुक्त नहीं है। स्वयं बुद्धदेव शून्यता के इस आक्षेप का खण्डन करते हुए कहते हैं-"इस प्रकार की व्याख्या करते समय कुछ व्यक्तियों ने मुझ पर भूल से, बिना किसी कारण के अनुचित और असत्य रूप से दोषारोपण किया है। [illegible] श्रमण गौतम एक नास्तिक है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वह उपदेश देता है कि यथार्य सत्ता का नाश हो जाता है, वह शून्यरूप में परिणत होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है आदि-आदि।" अतः स्पष्ट है कि बुद्ध का निर्वाण शून्यता का पर्याय नहीं है। वह आनन्दस्वरूप है लेकिन उसका आनन्द अनिर्वचनीय है। वहां चेतना एक अवस्थाविशेष में प्रवेश करती है जहां सापेक्ष जीवन समाप्त हो जाता है, देशकाल की सीमा नष्ट हो जाती है। संयुक्तनिकाय में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि यह सोचना कि निर्वाण शून्यता का नाम है, एक प्रकार का दूषित धर्मद्रोह है।

अतः स्पष्ट है कि बौद्धधर्म का निर्वाण तृष्णा के अप्यय एवं पंचस्कन्ध के विलय की अवस्था है जहां व्यक्तिगत चेतना यथार्थ सत्ता में विलीन हो जाती है।

बोधिसत्त्व

बौद्धधर्म के महायान सम्प्रदाय का नैतिक आदर्श बोधिसत्त्व है। 'बोधिसत्त्व' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है-'बोधौ सत्त्वं अभिप्रायोऽस्येति बोधिसत्त्वः' अर्थात् बोधि को प्राप्ति करने की इच्छा वाला व्यक्ति। यह वह व्यक्ति होता है जो पूर्ण ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर है और एक दिन बुद्ध होना है। इसे संक्षेप में 'भावी बुद्ध' कहा जा सकता है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग गौतम के उन पूर्ववर्ती जन्मों के लिए किया गया है जब वे निर्वाण की खोज में संलग्न थे। बोधिसत्त्व निर्वाण-प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है लेकिन आर्त्त और कातर मानवों के प्रति अगाध प्रेम उसे निर्वाण में विलम्बित होने को बाध्य करता है। वह केवल व्यक्तिगत निर्वाण के लिए ही प्रयत्नशील नहीं रहता, प्रत्युत मानव-मात्र के उन्नयन की भी कामना करता है। अवलोकितेश्वर ने संकल्प लिया था कि जब तक धूलि का अन्तिम कण तक निर्वाण प्राप्त न कर जाये, वह निर्वाण को स्वीकार नहीं करेगा। तात्पर्य यह हैं कि महायान का बोधिसत्त्व, हीनयान अर्हत् के समान वैयक्तिक निर्वाण में ही विश्वास नहीं करता, बल्कि वह मानव-मात्र के उद्धार के लिए प्रयत्न करता है। महायान सम्प्रदाय वैयक्तिक निर्वाण को मार (कामदेव) के द्वारा दिया गया प्रलोभन मात्र मानता है।

बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति को जिस मार्ग पर चलना होता है, उसे दस भागों में विभक्त किया गया है। इन्हें दस भूमि या श्रेणी कहा जाता है। ये दस भूमियां इस प्रकार हैं-प्रमुदिता, विमलता, प्रभाकारी, प्रकाशमयी, दुर्जय,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभिमुखी, दुरंगम, धर्म, साधुमती और तथागत। बोधिसत्त्व उक्त भूमियों पर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसका हृदय तथा आचरण शुद्ध होता जाता है तथा उसमें लोक-कल्याण भावना बढ़ती जाती है।

महायान सम्प्रदाय में बोधिसत्त्व और बुद्धत्व ये दो श्रेणियां हीनयान के अर्हत् पद से ऊंची हैं। बोधिसत्त्व को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है कि महायान सम्प्रदाय को ही बोधिसत्त्वायन नाम से अभिहित कर दिया जाता है।

ब्रह्मविहार

मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा-ये चार मानव-मन की उदात्त एवं दिव्य भावनाएं हैं। इन्हें ही 'ब्रह्मविहार' कहा जाता है। ये चित्त की परिशुद्धि के उत्तम उपाय हैं और भिक्षुजीवन का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करते हैं। जब भिक्षु सम्पूर्ण प्राणियों से वैरभाव से दूर रहकर, करुणभाव धारण कर, उल्लसित होता हुआ निर्विकार भाव से विचरण करता है तो उसे 'ब्रह्मप्राप्त' ही समझना चाहिए। भगवान् बुद्ध ने इन चारों भावनाओं का महत्त्व बताते हुए कहा है--

"मनुष्य यदि बचपन से ही मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा चित्तविमुक्ति की भावना करे तो उसके हाथ से पापकर्म होगा ही क्यों? और यदि वह पापकर्म नहीं करेगा तो फिर उसे दुःख ही क्यों भोगना पड़ेगा?"

यहां उक्त भावनाओं के स्वरूप पर संक्षिप्त विचार कर लेना युक्तिसंगत होगा। इसका स्वरूप इस प्रकार है--

१. मैत्री-जगत् के सम्पूर्ण प्राणियों से वैरविरहित हो, हिंसाभाव का परित्याग कर विचरण करना तथा हृदय में सदैव यह भावना करना कि जगत् के समस्त प्राणी सुखी, सक्षेम तथा सानन्द रहें, ही मैत्रीभावना है। मैत्रीभावसम्पन्न व्यक्ति न किसी को धोखा देता है, न किसी का अपमान करता है और न किसी के प्रति कुविचार ही रखता है। वह सभी प्राणियों से उसी प्रकार प्रेम रखता है जैसे माता कष्ट सहन करके भी उपने पुत्र का प्रेमपूर्वक लालन-पालन करती है। सम्पूर्ण जगत् के प्रति मैत्रीभाव वही रख सकता है जिसके हृदय से लोभ, मोह और द्वेष तीनों मनोवृत्तियां नष्ट हो गयी हों। अतः भिक्षु का पहले उक्त तीनों मनावृत्तियों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। जो मानव मैत्रीयुक्त चित्त से जगत् के सभी प्राणियों पर स्नेह की वर्षा करता है उसे ही करुणा, मुदिता और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपेक्षा का अनायास ही सुलाभ हो जाता है और वह आत्मकल्याण तथा लोककल्याण के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता रहता है। अंगुत्तर निकाय में मैत्रीयुक्त चित्त वाले व्यक्ति को ग्यारह लाभों की प्राप्ति स्वीकार की गयी है-"वह सुखपूर्वक सोता है, सुख से जागता है, बुरे स्वप्न नहीं देखता, सबका स्नेहभाजन होता है, उसे भूत-पिशाचों का भय नहीं होता, देवता उसकी रक्षा करते हैं, अग्नि, विष या अस्त्र उस पर कोई असर नहीं कर पाते, चित्त तुरन्त एकाग्र हो जाता है, मुख की कान्ति अम्लान रहती है, शान्ति से मरता है और निर्वाण न भी मिले तो भी मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मलोक को तो जाता ही है।"

२. **करुणा**-किसी व्यक्ति को विपन्नावस्था में देखकर सज्जन व्यक्ति के हृदय में जो विक्षोभ उत्पन्न होता है, वही करुणा कहा जाता है। विभंग में कहा गया है कि किसी दुर्गतिप्राप्त पुरुष को देखकर उस पर करुणा करना ही करुणा की भावना है। करुणा की भावना से सम्पन्न मानव दूसरे के दुःखों को दूर करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। परदुःखकातर स्वयं किसी को कष्ट देगा-ऐसी तो सम्भावना ही नहीं की जा सकती। इस प्रकार करुणा के मूल में परदुःखनिवारण की भावना सोयी रहती है जो परोक्ष रूप से लोककल्याण का निमित्त बनती है। करुणा की सम्यक् निष्पत्ति से हिंसा का उपशम होता है।

३. **मुदिता**-मुदिता का अर्थ है प्रसन्नता। जीवन-मार्ग में किसी की भौतिक या आध्यात्मिक उपलब्धियों को देखकर प्रसन्न होना ही मुदिता है। मुदिता की भावना करने वाले व्यक्ति को किसी भी व्यक्ति से ईर्ष्या-द्वेष नहीं होता, बल्कि सभी प्राणियों के उत्कर्ष से उसे उसी प्रकार प्रसन्नता होती है जैसे सांसारिकों को अपने प्रिय व्यक्ति का उत्कर्ष देखकर। विभंग में कहा गया है कि एक प्रिय एवं अनुकूल व्यक्ति को देखकर जिस प्रकार प्रसन्नता होती है उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति उत्पन्न आह्लाद का नाम ही मुदिता भावना है। तात्पर्य यह है कि मुदिता में निज-पर की भावना समाप्त हो जाती है और साधक को सभी अपने और प्रिय दिखायी देते हैं जिससे सभी के उत्कर्ष को देखकर उसे हार्दिक प्रसन्नता होती है। साधक की यह प्रसन्नता सामाजिक व्यक्ति की प्रसन्नता से भिन्न होती है क्योंकि सामाजिक व्यक्ति को प्रसन्नता प्रिय के स्नेह के कारण होती है जबकि मुदिता भावना करने वाले व्यक्ति की प्रसन्नता सर्वजनस्नेह से निष्पन्न होती है। मुदिता-भावना की सम्यक् निष्पत्ति से अरति का उपशम होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४. **उपेक्षा**-उपेक्षा का अर्थ है उदासीनता की भावना। अज्ञान के कारण सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त मानवों के प्रति तुच्छता या घृणा की भावना न रखकर उदासीनता रखना ही उपेक्षा है। अज्ञान के कारण किसी के दोषों से उदासीन होना तथा दोषों के निवारण के लिए यथासम्भव प्रयास करना ही उपेक्षा है। इससे सांसारिक वस्तुओं और व्यक्तियों की अनुकूलता या प्रतिकूलता का भाव ही समाप्त हो जाता है जिससे इस ज्ञान का उदय होता है कि मानव अपने कर्मों के बन्धन में बंधा है, कर्मों के अनुसार ही वह सुख या दुःख प्राप्त करता है। उपेक्षा की सम्यक् निष्पत्ति से हिंसा और अनुनय दोनों का उपशम होता है और योगी का हृदय धीरे-धीरे शान्त होने लगता है।

मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा-इन चारों भावनाओं से युक्त योगी निर्वाण के निकट ही पहुंच जाता है। अंगुत्तरनिकाय में शाक्यमुनि गौतम कहते हैं- "मैत्रीयुक्त चित्त से, करुणापूर्ण चित्त से, मुदितापूर्ण चित्त से और उपेक्षापूर्ण चित्त से जो भिक्षु चारों दिशाओं का व्याप्त कर देता है, समस्त जगत् को अवैर और अद्वेषमय चित्त से भर देता है, उसे मैं 'ब्रह्मप्राप्त' भिक्षु कहता हूं।"

स्मृति-उपस्थान

स्मृति-उपस्थान का अर्थ है जागृति के साधन। बौद्धधर्म में आत्मज्ञान (आत्मनिरीक्षण) पर विशेष बल दिया गया है और योगी को सतत जागरूक रहने का उपदेश दिया गया है। जागृति के ये साधन ही स्मृति-उपस्थान कहलाती हैं। इसके महत्त्व के विषय में मंज्झिमनिकाय में कहा गया है-"इन चार स्मृति-उपस्थानों का मार्ग शोक और कष्ट के उपशमन, दुःख और दौर्मनस्य के अतिक्रमण, ज्ञान की प्राप्ति और निर्वाण के साक्षात्कार के लिए एकमात्र मार्ग है।"

ये चार स्मृति-उपस्थान निम्नलिखित हैं--

(क) अपनी देह का यथार्थ रीति से अवलोकन करना,

(ख) वेदना का यथार्थ रींति से अवलोकन करना,

(ग) चित्त का यथार्थ रीति से अवलोकन करना, और

(घ) मनोवृत्तियों का यथार्थ रीति से अवलोकन करना।

इनके स्वरूप का संक्षिप्त विश्लेषण प्रसंग प्राप्त है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(क) प्रथम-स्मृति-उपस्थान है : **अपनी देह का यथार्थ रीति से अवलोकन।** जिस प्रकार मानव चलते-फिरते, पढ़ते-लिखते, सोते-जागते यह स्मरण रखता है कि वह चल-फिर रहा है, पढ़-लिख रहा है, सो-जाग रहा है, उसी प्रकार उसे शरीर का भी यथार्थ रूप में अवलोकन करना चाहिए। उसे समझना चाहिए कि सुन्दर दिखने वाला यह शरीर केश, नख, रोम, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा, विष्टा, मूत्र, पित्त, रक्त, पीब, थूक, लार आदि अपवित्र वस्तुओं से संयुक्त है। उसे इन सबका इस प्रकार ज्ञान होना चाहिए जैसे गृहस्थी को अपने घर में विद्यमान दाल, चावल, उड़द, तिल आदि का होता है। उसे इससे भी अवगत होना चाहिए कि यह शरीर क्षणभंगुर है और किसी भी प्रकार नश्वरता से मुक्त नहीं हो सकता। इन सबके ज्ञान तथा बार-बार चिन्तन-मनन से कायानुपश्यी भिक्षु के हृदय में शरीर के प्रति अनासक्ति उत्पन्न होती है और वह जगत् की किसी भी वस्तु में आसक्ति नहीं रखता। इस प्रकार वह अपनी देह का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

(ख) द्वितीय स्मृति-उपस्थान है : **वेदना का यथार्थ रीति से अवलोकन।** बौद्धदर्शन में वेदना से तात्पर्य इन्द्रिय और विषयों के मिलन से उत्पन्न सुख-दुःख आदि के अनुभव से है। वेदना का यथार्थ रीति से अवलोकन करने वाला भिक्षु देखता है कि वेदना सुखद, दुःखद तथा सुखदुःखातीत है। आन्तरिक एवं बाह्य वेदना का यथार्थ रीति से निरीक्षण-परीक्षण करता हुआ वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि शरीर में वेदना है और वह नश्वर भी है क्योंकि वह विषयों के संयोग से ही उत्पन्न होती है। इस प्रकार स्मृति और ज्ञान प्राप्त करने से वह वेदनानुपश्यी योगी वेदना के प्रति अनासक्त हो जाता है और फिर सांसारिक विष्यों में उसकी आसक्ति नहीं रहती।

(ग) तृतीय स्मृति-उपस्थान है : **चित का यथार्थ रीति से अवलोकन।** जिस प्रकार मानव अपने शरीर का आपादमस्तक अवलोकन करता है उसी प्रकार उसे चित्त का भी अवलोकन करना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि उसका चित्त सकाम है या निष्काम, सद्वेष है या विगतद्वेष, समोह है या निर्मोह, समाहित है या असमाहित, वियुक्त है या रागबद्ध आदि। इस प्रकार वह अपने तथा पराये चित्त का निरीक्षण करता है और इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि चित्त का स्वभाव चंचल है तथा वैराग्य एवं अभ्यास से उसे नियन्त्रित किया जा सकता है। अन्ततः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चित्तानुपश्यी भिक्षु चित्त का यथार्थ रीति से अवलोकन करता हुआ चित्त के प्रति अनासक्त हो जाता है, फिर धीरे-धीरे लोक के प्रति उसकी आसक्ति समाप्त हो जाती है।

(घ) चतुर्थ तथा अन्तिम स्मृति-उपस्थान है : **मनावृत्तियों का यथार्थ रूप में अवलोकन**। योगी को अपने मन में उत्पन्न होने वाले विकारों को यथार्थरूप में समझना चाहिए। उसे इसका सम्यक् अन्वेषण करना चाहिए कि उसके अन्तःकरण में कामभाव, द्वेषवृद्धि, आलस्य, अस्वस्थता, और इन्द्रियनिग्रह-ये ज्ञान के पांच आवरण हैं या नहीं। इन आवरणों के ज्ञान तथा चिन्तन-मनन से योगी यह समझता है कि इन आवरणों की उत्पत्ति कैसे होती है, उत्पन्न होने पर इनका विनाश कैसे किया जा सकता है और इन्हें फिर उत्पन्न न होने देने का उपाय क्या है। इस प्रकार वह इन पांच आवरणों या मनावृत्तियों का यथार्थ रूप में अवलोकन करता है।

उक्त चार स्मृक्ति-उपस्थान अर्थात् जागृति के साधन हैं। इनकी कुछ समय तक विधिवत् भावना करने से योगी जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। उसे इस लोक में पुनः जन्म नहीं लेना होता। इस प्रकार वह दुःख से सदा-सर्वदा को मुक्त हो जाता है।

पंचस्कन्ध

बौद्धधर्म में रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पांचों पदार्थों को पंचस्कन्ध कहा जाता है। जब ये पंचस्कन्ध वासना से युक्त होते हैं तो उपादान स्कन्ध कहलाते हैं और पुनर्जन्म का कारण होते हैं। वासना के निर्मूल हो जाने पर उपादान स्कन्ध न कहलाकर, केवल स्कन्ध कहलाते हैं क्योंकि पुनर्जन्म की सम्भावना नहीं रहती। इन पंचस्कन्धों का स्वरूप इस प्रकार है--

पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार महाभूतों तथा उनसे उत्पन्न पदार्थों को रूपस्कन्ध कहते हैं। वेदना तीन प्रकार की होती है : सुखकारक वेदना, दुःखकारक वेदना तथा अपेक्षा वेदना। इन तीनों प्रकार की वेदना को वेदनास्कन्ध कहते हैं। नगर, पशु-पक्षी, प्रकृतिविषयक कल्पनाओं को संज्ञा स्कन्ध कहा जाता है। संस्कार से तात्पर्य है-मानसिक संस्कार। ये तीन प्रकार के हैं-कुशल, अकुशल और अव्याकृत। ये संस्कारस्कन्ध कहे जाते हैं। विज्ञान का अर्थ है ज्ञान

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

या जानना। यह विज्ञान छः प्रकार का माना गया है : नेत्रविज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान कायविज्ञान और मनोविज्ञान। ज्ञानप्राप्ति के इन छहों साधनों को विज्ञान स्कन्ध कहा जाता है। इस प्रकार रूपस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध और विज्ञानस्कन्ध पांचों मिलकर पंचस्कन्ध कहलाते हैं जो वासनायुक्त होने पर उपादान स्कन्ध के प्रादुर्भाव का कारण होते हैं और वासनारहित होने पर निर्वाण में विलीन हो जाते हैं।

श्रावक

बौद्ध मतावलम्बियों को श्रावक नाम दिया जाता है। इन्हें उपासक, उपासिका, भिक्षु, भिक्षुणी आदि विभागों में रखा जाता है। ये श्रावक निरन्तर निर्वाण-मार्ग पर अग्रसर रहते हैं। निर्वाण-मार्ग पर बढ़ने की दृष्टि से इनकी चार श्रेणियां मानी गयी हैं : स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्। यहा इनके स्वरूप पर संक्षिप्त प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा--

(क) **स्रोतापन्न**-शील और सदाचार का निर्वाह करने वाला साधक स्रोतापन्न (स्रोतापन्न= धार में प्रवेश किया हुआ) कहलाता है। आत्मा को पृथक् वस्तु मानकर नित्य मानने वाली दृष्टि (सत्काय दृष्टि), बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति शंका या अविश्वास (विचिकित्सा) तथा स्नानादि व्रतों तथा उपोषणों द्वारा मोक्षप्राप्ति में विश्वास (शीलव्रत परामर्श) इन तीन बन्धनों का नाश हो जाने पर श्रावक स्रोतापन्न कहलाता है। जब वह इस मार्ग में स्थिर हो जाता है तो स्रोतापन्न-फलस्थ कहलाता है।

(ख)**सकृदागामी**-काम, वासना और क्रोध के नष्ट हो जाने पर श्रावक का अज्ञान कम हो जाता है। उसके सभी संस्कार नष्ट हो जाते हैं क़िन्तु उसको एक बार जन्म लेने की आवश्यकता रह जाती है, इसीलिए उसे सकृदागामी (सकृदागामी= एक बार जन्म लेने वाला) कहा जाता है। इस अवस्थ में काम, वासना एवं क्रोध का पूर्णतः विनाश नहीं होता, इसीलिए उसे मोक्ष से पूर्व एक बार जन्म लेना पड़ता है। इस मार्ग में स्थिरता प्राप्त कर लेने पर श्रावक सकृदागमी-फलस्थ कहलाता है।

(ग) **अनागामी**-काम, वासना एवं क्रोध के पूर्णतः परिश्रान्त होने पर श्रावक को एक बार भी जन्म लेने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह जीवनमुक्त के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

समान हो जाता है। इस अवस्था में वह अनागामी (अनागामी= पुनर्जन्म न लेने वाला) कहलाता है। इस मार्ग में स्थिरता प्राप्त कर लेने पर श्रावक अनागामी-फलस्थ कहा जाता है।

(घ) **अर्हत्-** ब्रह्मलोक की इच्छा, देवलोक-प्राप्ति की इच्छा, अहंकार, अविद्या और चित्त की भ्रान्तता-इन पांच बन्धनों के नष्ट हो जाने पर श्रावक अर्हत् कहलाता है। उसके दुःख के सम्पूर्ण कारण समाप्त हो जाते हैं और चित्त की अशुद्धता धुल जाती है। अर्हत् की अवस्था आनन्द से परिपूर्ण पवित्रीकरण की अवस्था है जो निर्वाण पर पहुंचती है। जब साधक इस मार्ग पर स्थिर हो जाता है तो अर्हत्-फलस्थ कहा जाता है।

इस निर्वाण-मार्ग पर अग्रसर होने में न गार्हस्थ्य बाधक है और न स्त्रीत्व ही। यह सम्पूर्ण प्रगति व्यक्तिगत साधना पर अवलम्बित है। चित्र और विशाख गृहस्थ (उपासक) होने पर भी अनागामी थे जबकि आनन्द भिक्षु होने पर भी बुद्ध के जीवनकाल में केवल स्रोतापन्न ही रहे। उन्हें अर्हत् पद बाद में प्राप्त हुआ। क्षेमा स्त्री होने पर भी अर्हत् पद प्राप्त कर गयी थीं।

त्रिशरण

बौद्ध धर्म में प्रवेश प्राप्त करने के लिए प्रथम धार्मिक कृत्य त्रिशरण है। इसमें प्रवेशार्थी महात्मा बुद्ध, उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म तथा धर्म के प्रचारक संघ के प्रति अपनी दृढ़ निष्ठा प्रकट करता है। उक्त तीनों घटकों में भगवान् बुद्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि ज्ञान के प्रकाशक वहीं हैं जो 'त्रिपिटक' में संकलित है। भगवान बुद्ध के पश्चात् यह धर्म ही नियामक तथा पथप्रदर्शक है, अतः बुद्धदेव के पश्चात् धर्म को सम्मान मिला है। संघ उन भिक्षुओं का समुदाय है जिन्होंने बुद्धोपदेशों को सुनकर सद्धर्म का अनुगमन किया तथा लोककल्याण के लिए उसे प्रकाशित तथा वितरित कर रहे हैं। यह संघ ही बुद्ध के पश्चात् धर्म का रक्षक तथा प्रचारक है, अतः उसकी शरण में जाना नैतिक अनिवार्यता है।

प्रव्रज्या से पूर्व, त्रिशरणगमन के समय प्रवेशार्थी मुण्डन कराकर, काषायवस्त्र धारणकर, उकड़ू बैठकर निम्न तीन वाक्यों को तीन-तीन बार दोहराता है--

बुद्धं सरणं गच्छामि।

धम्मं सरण गच्छामि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संघं सरणं गच्छामि।

यहां बुद्ध, धर्म तथा संघ के स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है--

(क) बुद्ध-जिसने सम्बोधि (बोध= ज्ञान) को प्राप्त कर लिया है वही बुद्ध है। उसके लिए देशकाल का बन्धन नहीं रहता। वह जीवन-मरण से मुक्त हो जाता है और दूसरों की मुक्ति के लिए प्रयास करता है। वे भगवान्, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध तथा सुगत हैं, लोकविख्यात और अलौकिक पुरुष हैं, दम्भी व्यक्तियों के सारथी और देवताओं एवं मनुष्यों के शास्ता हैं-यही बुद्ध का स्वरूप है। इस स्वरूप के प्रति दृढ़ निष्ठा प्रवेशार्थी के लिए आवश्यक है।

(ख) धर्म-बुद्धत्वप्राप्ति से परिनिर्वाणपर्यन्त लगभग पैंतालीस वर्ष शाक्यमुनि गौतम मध्य भारत में घूम-घूमकर सत्य का उपदेश करते रहे-यह बुद्धोपदेश ही धर्म कहलाता है और यही त्रिपिटक में संकलित है। इस धर्म के विषय में कहा जाता है कि यह सु-आख्यात है, सद्यः फलदाता है, इसमें प्रवेश कर शीघ्र ही इसके फलों को देखा जा सकता है, वह सम्मार्ग पर ले जाने वाला तथा विज्ञों द्वारा वेद्य है। धर्म के इस सत्य-स्वरूप के प्रति दृढ़ निष्ठा प्रवेशार्थी के लिए आवश्यक है।

(ग) संघ-बुद्ध के उपदेशों के सुनकर जिन्होंने सद्धर्म का अनुगमन किया है तथा जो लोककल्याण के लिए उसका प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, वे भिक्षु ही संघ कहलाते हैं। धर्मचक्रप्रवर्तन के समय तथागत का भिक्षुओं को यह सन्देश संघ के स्वरूप तथा प्रयोजन को स्पष्ट कर देता है--

''भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिए, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं तथा मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, हित एवं सुख के लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। भिक्षुओं ! आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अन्त में कल्याणकारी धर्म का उसके पूरे शब्दों तथा अर्थों के साथ उपदेश करते हुए सम्पूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।''

इस प्रकार बुद्ध, धर्म तथा संघ के यथार्थ स्वरूप को समझकर, उनके प्रति दृढ़ निष्ठा रखना प्रत्येक प्रवेशार्थी के लिए आवश्यक है। तीनों के प्रति अगाध आस्था व्यक्त करना ही त्रिशरण है और यही प्रव्रज्या या उपसम्पदा का प्रथम सोपान है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गुरुधर्म

अंगुत्तर निकाय के अट्ठक निपात के गौतमी सुत्त तथा विनयपिटक के चुल्लवग्ग में महाप्रजावती गौतमी की प्रव्रज्या के प्रसंग में आठ गुरुधर्मों का वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में, तदुपरान्त वैशाली में महाप्रजावती गौतमी प्रव्रज्या के लिए आज्ञा चाहती हैं। तब तक बौद्धधर्म में भिक्षुओं की ही प्रव्रज्या का विधान था, भिक्षुणियों की नहीं। वैशाली में आनन्द के समर्थन पर गौतमी को आठ गुरुधर्मों के निरन्तर पालन की शर्त पर प्रव्रज्या दे दी जाती है, लेकिन गौतम बुद्ध यह चेतावनी भी दे देते हैं-"आनन्द ! यदि तथागत प्रवेदित धर्म-विनय में स्त्रियां प्रव्रज्या न पातीं, तो यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता, सद्धर्म सहस्त्रवर्ष ठहरता, लेकिन आनन्द ! चूँकि स्त्रियाँ प्रव्रजित हुई हैं, अब सद्धर्म चिरस्थायी न होगा। अब सद्धर्म पांच सौ वर्ष ही ठहरेगा। ...आनन्द ! जैसे मनुष्य पानी की रोकथाम के लिए, बड़े तालाब को रोकने के लिए मेंड़ बांधे, उसी प्रकार आनन्द ! मैंने रोकथाम के लिए भिक्षुणियों को जीवनभर अनुल्लंघनीय आठ गुरुधर्मों में प्रतिष्ठापित किया है।"

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि आठ गुरुधर्म भिक्षुणियों की मर्यादा की रक्षा के लिए निर्मित नियम हैं। यद्यपि भिक्षुओं के आचरणविषयक नियम भी उन पर प्रभावी होते थे लेकिन यह गुरु नियम केवल भिक्षुणियों पर ही लागू होते हैं भिक्षुओं पर नहीं।

भिक्षुणियों के लिए सर्वदा अनुल्लंघनीय ये आठ गुरुधर्म निम्नलिखित हैं--

(१) सौ वर्ष की उपसम्पदा पायी हुई भिक्षुणी को भी, उसी दिन के उपसम्पन्न भिक्षु को अभिवादन, प्रत्युत्थान, करबन्धन, सामीची कर्म आदि करना चाहिए।

(२) भिक्षुणियों को ऐसे स्थान पर, जहां भिक्षु विद्यमान न हों, वर्षावास कभी नहीं करना चाहिए।

(३) भिक्षुणियों को प्रतिपक्ष भिक्षुसंघ से पर्येषण करना चाहिए।

(४) वर्षावास के उपरान्त भिक्षुणियों को पहले भिक्षुणीसंघ में, तदुपरान्त भिक्षु-संघ में प्रवारणा करनी चाहिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(५) प्रत्येक भिक्षुणी को दोनों संघों-भिक्षुसंघ और भिक्षुणीसंघ को मानना चाहिए।

(६) किसी भी भिक्षुणी को, भिक्षु को अपशब्द कहने का कदापि अधिकार नहीं है।

(७) भिक्षुणियों का भिक्षुओं को कहने का मार्ग बन्द है अर्थात् पुरातन से पुरातन भिक्षुणी को भी नवीनतम भिक्षु को उपदेश देने का अधिकार नहीं है।

(८) भिक्षुओं को, भिक्षुणियों को कहने का मार्ग खुला है अर्थात् भिक्षुओं को भिक्षुणियों के लिए उपदेश देने का अधिकार है।

इन आठ गुरुधर्मों को स्वीकारने पर ही किसी स्त्री को प्रव्रजित कर भिक्षुणी संघ में प्रवेश दिया जाता था। उक्त गुरुधर्मों में कुछ भिक्षुणियों की रक्षा के निमित्त निर्मित हैं किन्तु कुछ से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि शाक्यमुनि धर्म एवं संन्यास के क्षेत्र में स्त्री जाति की उपेक्षा पुरुष को ही अधिक समर्थ एवं योग्य मानते थे। आनन्द के समर्थन पर उन्होंने स्त्रियों को प्रव्रज्या दे दी थी-यह उनके विवेक का सूचक है, साम्य का नहीं।

चारिका

चारिका का अर्थ है यात्रा या भ्रमण। ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को उपदेश दिया था कि वे इस ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचने के लिए निरन्तर भ्रमण करते रहें। इस यात्रा या भ्रमण में वे स्थल-स्थल पर उपदेश करते रहते थे और वर्षाकाल के अतिरिक्त कभी भी एक स्थान पर एक रात से अधिक नहीं ठहरते थे। यह यात्रा चारिका कहलाती है।

यह चारिका दो प्रकार की होती है-शीघ्र चारिका और मन्द चारिका। जब भिक्षु तीव्र गति से यात्रा करता हुआ धर्म का उपदेश करता है तो उसे शीघ्र चारिका कहते हैं। जब भिक्षु मन्द गति से यात्रा करता हुआ धर्मोपदेश देता है तो उसे मन्द चारिका कहा जाता है।

बुद्धदेव ने इन चारिकाओं के हानि-लाभ पर भी विचार किया है। अंगुत्तर निकाय के पंचक निपात के तीसरे वग्ग के प्रारम्भ में एक सुत्त में इनका महत्त्व स्पष्ट किया गया है। बुद्धदेव कहते हैं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"हे भिक्षुओं ! शीघ्र चारिका में पांच दोष हैं। ये कौन से हैं? जो धर्मवाक्य पहले नहीं सुना जा सका हो, वह नहीं सुना जा सकता। जो सुन लिया है, उसमें संशोधन नहीं हो सकता है। कुछ बातों का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता। कभी-कभी भयंकर रोग लग जाते हैं और मित्र भी नहीं मिल पाते। हे भिक्षुओं ! शीघ्र चारिका में ये पांच दोष हैं।"

"हे भिक्षुओं ! मन्द चारिका में पांच गुण हैं। ये कौन से हैं? जो धर्मवाक्य पहले नहीं सुना जा सका हो, वह सुना जा सकता है। जो सुन लिया है, उसमें संशोधन हो सकता है। कुछ बातों का पूर्ण ज्ञान मिल जाता है। कोई भयंकर रोग भी नहीं लगता और मित्र भी मिल जाते हैं। भिक्षुओं ! मन्द चारिका में ये पांच गुण हैं।"

यहां भगवान् बुद्ध ने अपने पूर्वार्जित अनुभवों को ही वाणी दी है। उनका अनुभव था कि शीघ्र नहीं, अपितु मन्द गति से यात्रा करने से ही लाभ होता है। स्वयं उन्होंने मन्द गति से भ्रमण करते हुए अनेक श्रमणों से ज्ञान प्राप्त किया था और उसी की प्रतिक्रियास्वरूप मध्यम मार्ग को खोज निकाला था। मन्द चारिका को विशेष उपादेय मानते हुए उन्होंने भिक्षुओं को उसे ही अपनाने का सुझाव दिया था जिससे वे सत्य का अन्वेषण कर सके और अन्वेषित सत्य को जनसाधारण तक पहुंचा सकें।

वर्षावास

बौद्ध-भिक्षु वर्षा के तीन मास एक स्थान पर रहकर ही व्यतीत करते हैं- यह धार्मिक संवास ही वार्षावास कहलाता है। प्रारम्भिक बौद्धमत में इसका विधान नहीं था। उस समय भिक्षु वर्षाकाल में भी चारिका करते हुए धर्म का प्रचार-प्रसार करते थे। इससे छोटे-छोटे जीवों को बहुत कष्ट होता था और प्रजावर्ग में भिक्षुओं की निन्दा भी होती थी। अतः बुद्धदेव ने भिक्षुओं को वर्षा के तीन मास एक ही स्थल पर व्यतीत करने का आज्ञा दी।

वर्षावास बुद्धकाल से पूर्व जैनधर्म में तथा वैदिक शिक्षापद्धति में चातुर्मास्य के रूप में विद्यमान था। 'अहिंसा परमो धर्मः' के मानने वाले जैन श्रमण वर्षाकाल में आवागमन बन्द रखते हैं। वैदिक काल में कुछ उपाध्यायों के पास विद्यार्थियों के आवास की समुचित व्यवस्था नहीं होती थी, अतः वे उन्हें चातुर्मास्य व्यतीत

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

करने समीपवर्ती बस्तियों में भेज देते थे। सम्भवतः इन्हीं स्रोतों से इस वास-प्रथा को लेकर गौतम बुद्ध ने उसे धर्मानुकूल स्वरूप प्रदान किया।

वर्षावास के विधान के मूल में कई कारण जान पड़ते हैं-प्रथम, वर्षाकाल में जलप्लावन से मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, अतः भिक्षुओं का आवागमन सुरक्षित न रहता होगा। द्वितीय, भिक्षुओं के आवागमन से क्षुद्र कीटों की प्राण-हानि की भी सम्भावना रहती है और तृण-वीरुध के विनाश की भी। तृतीय, अन्य मतावलम्बियों के सबल तर्कों का खण्डन, सद्धर्म के प्रचार-प्रसार के नये साधनों के अन्वेषण, परिशुद्धि आदि के लिए भी समाहित होने की आवश्यकता थी। अतः इस सापद काल का इस रूप में प्रयोग शाक्यमुनि को उचित जान पड़ा होगा। सम्भवतः उक्त तीनों ही कारणों ने मिलकर वर्षावास को जन्म दिया।

वर्षावास के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए जो बस्ती से न बहुत दूर हो और न बहुत निकट ही, क्योंकि दूर होने से भिक्षा प्राप्ति में कठिनाई आयेगी और निकट होने से भिक्षु को सांसारिकता का स्पर्श होगा। इसके साथ ही वासस्थल का मार्ग निरापद होना चाहिए तथा वह स्थान सुरक्षित होना चाहिए जिससे भिक्षु के तीन मास के ध्यान में किसी प्रकार का विघ्न न हो।

वर्षावास में भिक्षु को तीन मास एक ही स्थान पर रहकर ध्यानाभ्यास तथा चिन्तन करना होता है लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में भिक्षु एक सप्ताह के लिए स्थान छोड़ सकता है अथवा वर्षावास का स्थान ही परिवर्तित कर सकता है। 'महावग्ग' में इन सभी परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। ये परिस्थितियां निम्नलिखित हैं--

(१) यदि भिक्षु को वर्षावास में माता, पिता या आचार्य की अस्वस्थता की सूचना मिलती है, भले ही उसे बुलाया न गया हो, वह एक सप्ताह के लिए स्थान का परित्याग कर सकता है।

(२) यदि भिक्षु को वर्षावास में भाई, बहिन या अन्य सम्बन्धी के अस्वस्थ होने की सूचना मिलती है जिसमें उसे बुलाया गया हो, वह एक सप्ताह के लिए स्थान का परित्याग कर सकता है।

(३) यदि को गृहस्थ भिक्षुओं या उपासकों के लिए विहार, प्रासाद, गुफा, आराम आदि बनवाना चाहता है और इस प्रसंग में दानार्थ या दर्शनार्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भिक्षु को आमन्त्रित किया जाता है तो वह एक सप्ताह के लिए स्थान का परित्याग कर सकता है।

(४) यदि भिक्षु को वर्षावास के समय प्राकृतिक प्रकोप से विनाश का भय हो या प्राणहानि की आशंका हो तो वह वर्षावास का स्थान बदल सकता है।

(५) यदि भिक्षु को वर्षावास के समय ध्यानाभ्यास या चिन्तन में विघ्न प्रतीत हो तो वह वर्षावास का स्थान बदल सकता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध ने चातुर्मास्य की प्राचीन प्रथा को ग्रहण कर उसे धर्मानुरूप स्वरूप प्रदान किया है। वर्षावास में एक स्थान पर रहने से जहां स्वयं भिक्षु की या अन्य जीवों की प्राणहानि की आशंका समाप्त हो जाती है, वहीं सतत यायावर भिक्षु को समाहित होकर चिन्तन-मनन का भी समय उपलब्ध हो जाता है। इससे जहां सामाजिक दुर्मुखों को सन्तोष दिया जा सका है वहीं संघ को भी सुयोग्य एवं कर्मठ बनाने में सहायता मिली है।

प्रवारणा

प्रवारणा वर्षाकाल की समाप्ति पर सम्पन्न होने वाला एक धार्मिक उत्सव है। वर्षाकाल में श्रुत, दृष्ट या परिशंकित दोषों के समाधान के लिए इस उत्सव का आयोजन होता है। इसके आयोजन के विषय में स्वयं बुद्धदेव ने इस प्रकार बताया है--

वर्षाकाल की समाप्ति पर वृद्ध एवं समर्थ भिक्षु संघ से विज्ञप्ति करे-"भदन्त संघ मेरी बात पर ध्यान दे। आज प्रवारणा का दिन है। यदि संघ उचित समझे तो आज प्रवारणा करे।" संघ द्वारा स्वीकार कर लेने पर सबसे पहले वृद्ध भिक्षु कन्धे पर उत्तरासंग डालकर, घुटने टेककर बैठे और कहे-"आयुष्मान् संघ को मेरे जो दोष दिखाई दिये हों, सुनायी पड़े हों या उनके सम्बन्ध में शंका हुई हो, उन्हें बताने के लिए मैं प्रवारणा करता हूं। मुझ पर कृपा करके संघ वे दोष मुझे बताये। यदि वे मुझे उचित जान पड़ेंगे तो में यथोचित प्रायश्चित करूंगा।" भिक्षु ये वाक्य तीन बार कहे। तरुण भिक्षु 'आयुष्मान् संघ' के स्थान पर 'भदन्त संघ' कहें। उस समय यदि कोई भिक्षु किसी के दोषों का उल्लेख करे तो उसे सहजता से स्वीकार करना चाहिए और उस अपकार्य के लिए आलोचना करनी चाहिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

वस्तुतः भगवान् बुद्ध ने प्रवारणा का विधान इसीलिए रखा है जिससे संघ सदैव दोषों से दूर रहे। यदि किसी भिक्षु को वर्षावास में असंगति या अन्य किसी कारण से कोई दोष ग्रस्त कर लेता है तो प्रवारणा में उसका मार्जन हो सकता है। यह संघ में निर्दोषता एवं एकता स्थापित करने का सबल एवं सशक्त साधन है।

उपोसथ

प्राग्बुद्ध काल में अन्य धर्मों के संन्यासी प्रत्येक पक्ष में एक दिन अष्टमी, एकादशी, पूर्णिमा या अमावस्या को एकत्र होकर परिशुद्धि के निमित्त धार्मिक चर्चा किया करते थे। राजा बिम्बिसार के अनुरोध पर शाक्य मुनि गौतम ने इसे अपने शासन में स्थान दिया, किन्तु एक विशेष नैतिक अभिप्राय से अनुप्राणित कर दिया। यह धार्मिक पर्व ही **उपोसथ** कहलाता है।

'उपोसथ का अर्थ है उपवसथ अर्थात् एक स्थान पर एकत्रित होना। प्रत्येक पक्ष में एक दिन, अष्टमी, पूर्णिमा या अमावस्या को आस-पास के सभी भिक्षु निश्चित उपोसथागार में एकत्रित होकर प्रातिमोक्ष का संगायन करते हैं। प्रातिमोक्ष में उन दो सौ सत्ताइस नियमों का संकलन है जिनका पालन प्रत्येक भिक्षु और भिक्षुणी के लिए आवश्यक है। इन नियमों में चार पाराजिक, तेरह संघादिसेस, दो अनियत धर्म, तीस निस्सग्ग पाचित्तिय, बानवें पाचित्तिय, चार प्रतिदेशनीय, पिछत्तर शैक्ष्यधर्म तथा सात अधिकरण शमथ हैं। इनका इसी क्रम से संगायन किया जाता है।

उपोसथ से पूर्व कुछ प्रारम्भिक कार्यों का सम्पादन होता है जो पूर्वकरण और पूर्वकृत्य कहलाते हैं। उपोसथागार की सफाई, जलपरिपूर्ण कलशों का स्थापना, आसनों की व्यवस्था तथा दीप-प्रज्वलन-ये उपोसथ के पूर्वकरण कहलाते हैं। अस्वस्थ भिक्षुओं द्वारा शुद्धि नियमों का वर्णन, ऋतु-वर्णन, भिक्षुओं की गणना तथा पृथक्-पृथक् उपदेश-ये चार नियम पूर्वकृत्य कहलाते हैं।

पूर्वकृत्यों के पश्चात् प्रातिमोक्ष का संगायन होता है। प्रतिमोक्ष का जैसे-जैसे पाठ होता है, सभा में सम्मिलित प्रत्येक भिक्षु से यह अपेक्षा की जाती है कि यदि उससे कोई पाप हुआ है तो वह उसी प्रसंग पर उठकर उसे स्वीकार कर ले जिससे भविष्य में उसका संयमन किया जा सके। ऐसा करने से भिक्षुओं के पापों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का परिमार्जन होता जायेगा और संघ परिशुद्ध होता जायेगा। पाप की स्वीकृति, क्षमायाचना और भविष्य में न करने का दृढ़संकल्प-यही उपोसथ का मूल उद्देश्य है। उपोसथ पूर्ण होने पर भिक्षु अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं और उपवास का समापन करते हैं।

उपोसथ के समय प्रायः प्रातिमोक्ष के सभी नियमों का संगायन किया जाता है, लेकिन असाधारण परिस्थितियों-राजभय, चोरभय, अग्निभय, उदकभय आदि में समयानुसार अधिकाधिक का संगायन करके पर्व सम्पन्न कर दिया जाता है। प्रातिमोक्ष का जितना अंश असंगायित रह जाता है, उसके लिए 'जैसा पहले सुना है उसी रूप में धारण करें' ऐसा आदेश दे दिया जाता है। संगायन पीछे वर्णित क्रम से ही किया जाता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

उपोसथ में साधारणतः सभी उपलब्ध भिक्षुओं की उपस्थिति आवश्यक होती है, किन्तु परिस्थितिवश कुछ भिक्षुओं की अनुपस्थिति में भी संगायन प्रारम्भ हो जाता है और वे बाद में आ जाते हैं। बाद में आने वाले भिक्षुओं की संख्या पहले से उपस्थित भिक्षुओं से कम ही रहनी चाहिए, अन्यथा सम्पूर्ण संगायन पुनः कराया जायेगा-ऐसा नियम है। यह उपोसथ सुयोग्य एवं निर्दोष भिक्षु के नेतृत्व में ही सम्पन्न होता है।

तात्पर्य यह है कि पूर्व की प्रचलित धर्म-चर्चाओं की परम्परा को भगवान् बुद्ध ने एक नैतिक स्वरूप प्रदानकर उपोसथ पर्व का रूप दिया जो संघ की निर्दोषता की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। भिक्षुओं द्वारा किये गये पापों की स्वीकृति, क्षमायाचना तथा भविष्य में न करने का संकल्प-यही उपोसथ के मूल प्रयोजन हैं।

अठारह सम्प्रदाय

महात्मा बुद्ध के जीवनकाल में ही संघ में मतभेद उभरने लगे थे। ये मतभेद इतने गहरे थे कि कुछ भिक्षुओं को बुद्ध के परिनिर्वाण पर भी गहन दुःख नहीं हुआ। विभिन्न संगीतियों में इन्हीं मतभेदों को दूर करने तथा मूल बुद्धवचनों को निश्चित करने का प्रयास किया गया, लेकिन ये बढ़ते ही गये। अशोक के समय तक संघ अठारह भागों में विभक्त हो गया था, जो अठारह सम्प्रदाय या निकाय कहलाते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वितीय संगीति के समय (बुद्धपरिनिर्वाण के सौ वर्ष बाद) बज्जिपुत्तक भिक्षुओं ने संघ का अनुशासन भंग करके 'महासंघिक' नामक सम्प्रदाय की स्थापना की। अशोक के समय तक इस 'महासंघिक' के छः सम्प्रदाय हो गये- महासंघिक, एकव्यावहारिक, गोकुलिक, प्रज्ञाप्तिवादी, बाहुश्रुतिक और चैत्यवादी। प्रथम संगीति के समय स्थविरों ने जिस धर्म-स्वरूप को चुना, उसका नाम थेरवाद या स्थविरवाद पड़ गया। अशोक के समय तक यह स्थविरवाद भी बारह शाखाओं में विभक्त हो गया। ये हैं-स्थविरवादी, महिशासक, वज्जिपुत्तक, सर्वास्तिवादी, धर्मगुप्तिक, धर्मोत्तरीय, छन्नगारिक, भद्रयानिक, सम्मितिय, काश्यपीय, सांक्रान्तिक और सौत्रान्तिक। ये सभी शाखाएं मिलकर अठारह सम्प्रदाय कहलाते हैं।

बौद्धचार्य मोग्गलिपुत्त तिस्स ने, जो अशोक के धर्मगुरु तथा तृतीय संगीति के अध्यक्ष थे, अपनी रचना 'कथावत्थु' में केवल स्थविरवाद को मूल बुद्धमत मानकर शेष सत्रह सम्प्रदायों के दार्शनिक मतों का खण्डन किया है, लेकिन उक्त पुस्तक में मात्र दार्शनिक खण्डन है। इन सम्प्रदायों के स्वरूप तथा अनुयायियों के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा गया है जबकि वसुमित्र के 'अष्टादशनिकाय शास्त्र' में इनका विशद वर्णन मिलता है। वस्तुतः दोनों ग्रन्थकारों का दृष्टिकोण अलग-अलग हैं क्योंकि तिस्स स्थविरवादी हैं जबकि वसुमित्र सर्वास्तिवादी। जो भी हो, इन सिद्धान्तों का महत्त्व मात्र ऐतिहासिक हैं।

बौद्धधर्म के ये अठारह सम्प्रदाय आज केवल इतिहास की वस्तु हैं। आज उसके दो ही रूप उपलब्ध होते हैं : हीनयान और महायान। हीनयान को स्थविरवाद का संशोधित-सम्वर्द्धित रूप कहा जा सकता है। इस मत के अनुसार महात्मा बुद्ध एक उपदेशक थे, पथ-प्रदर्शक थे जैसा कि उन्होंने अपने उपदेशों में कहा है। आज उनके अवशेषों की पूजा निरर्थक है। उनके उपदेशों का पारायण करना चाहिए जिनमें नैतिकता, विवेक की बातें हैं। ये केवल व्यावहारिक सत्यों का विश्लेषण करते हैं, आध्यात्मिक का नहीं। महायान उदारवादी सम्प्रदाय है जिसने हिन्दुओं के अनेक धार्मिक तत्त्वों को ग्रहण कर लिया है। इसके मतानुसार महात्मा बुद्ध सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिसम्पन्न दिव्यशक्ति हैं। उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति एवं आराधना से मानव अपने दुःखों से छुटकारा पा सकता है। ये बोधिसत्त्व, करुणभावना, अवतारवाद आदि में विश्वास रखते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बौद्धधर्म (अठारह निकाय) वस्तुकट्ठकथा के आधार पर

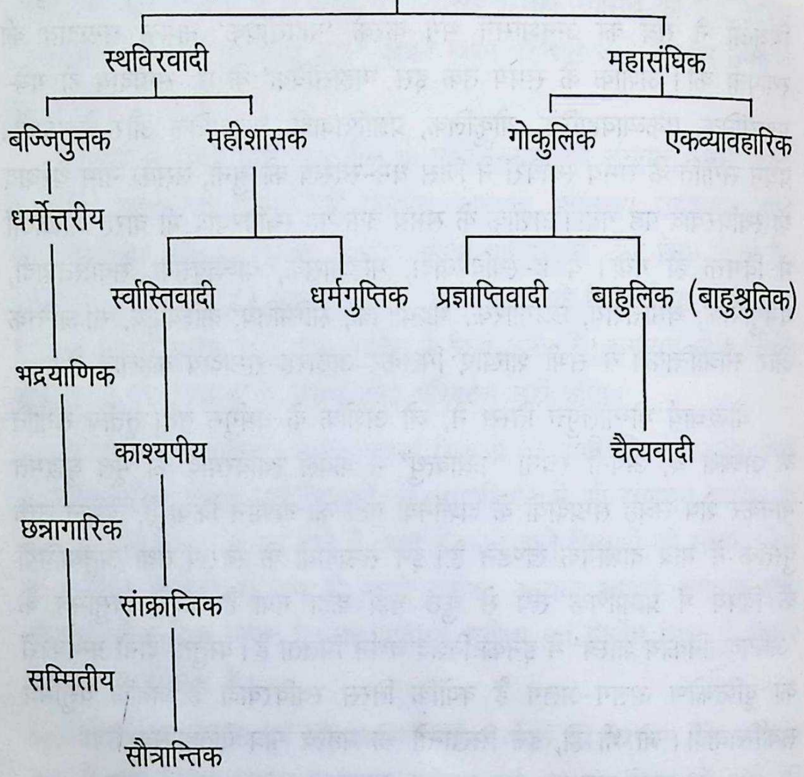

हीनयान और महायान

यों तो बुद्धदेव के जीवनकाल में ही संघ में मतभेद उभरने लगे थे जिन्हें देखकर महात्मा बुद्ध को दुःखी होना स्वाभाविक था, लेकिन उनकी मृत्यु के पश्चात् ये मतभेद और भी अधिक बढ़ गये। बुद्धपरिनिर्वाण के एक सप्ताह पश्चात् ही भिक्षु सुभद्र यह कहते सुना गया–"अलं आवुसो ! मा सोचित्थ ! मा परिदेवित्थ ! सुमुत्ता मयं तेन महासमणेन उपद्दुता च हो३म इदं वो कप्पति, इदं वो न कप्पति। इदानि पन मयं यं इच्छिस्साम तं करिस्साम। यं न इच्छिस्साम त नं करिस्साम।" अर्थात् 'हे भिक्षुओं ! शोक मत करो। विलाप मत करो । हम उस महाश्रमण से भली प्रकार मुक्त हो गये हैं। वह हमें सदैव यह कहकर पीड़ित करता था 'यह तम्हें विहित है, यह तम्हें विहित नहीं है। अब हम जो चाहेंगे करेंगे, जो नहीं चाहेंगे, नहीं करेंगे।' सुभद्र के इस वचन को सुनकर महास्थविर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काश्यप ने मतभेद दूर करने तथा मूल बुद्धवचनों को तय करने के लिए प्रथम संगीति का आयोजन किया, लेकिन मतभेद दूर नहीं हो सके। लगभग एक सौ वर्ष पश्चात् वैशाली के भिक्षुओं को विनय-विपरीत आचरण करते देखकर वैशाली में दूसरी संगीति का आयोजन किया गया जिसमें पूर्व के भिक्षुओं ने वैशालिकों का साथ दिया और पश्चिम के भिक्षुओं ने उन्हें विनय-विपरीत ठहराया, फलतः संघ में स्पष्ट विभाजन प्रारम्भ हो गया। पराजित भिक्षुओं (वैशालिक एवं पूर्व वालों) ने एक पृथक् संगीति की, जिसमें सुत्तपिटक में संशोधन किया गया तथा नया संघ खड़ा किया। यह पूर्ववर्ती शाखा महासंघिक कहलायी। आगे चलकर ये दोनों संघ अठारह सम्प्रदायों में विभक्त हो गये। अशोक के धर्मगुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में तृतीय संगीति सम्पन्न हुई जिसका विषय था अठारह सम्प्रदायों में विभक्त बौद्ध धर्म में वास्तविक बुद्धमत को खोजना। इसमें स्थविरवाद को वास्तविक बुद्धवचन ठहराया गया। ध्यान देने की बात यह है कि महासंघिक (बाद में महायान) में इस संगीति का उल्लेख नहीं मिलता। इन महासंघिकों की संगीति महाराज कनिष्क के समय में सम्पन्न हुई और उन्होंने पुरातन शाखा को हीनयान करते हुए स्वयं को महायान घोषित किया। इस समय तक बौद्धधर्म पर अन्य धर्मों का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था जिसे महायान ने स्वीकार किया। जैसे महात्मा बुद्ध को एक उपदेशक न मानकर सर्वशक्तिसम्पन्न माना जाने लगा और उनकी पूजा-अर्चना प्रारम्भ कर दी गयी। कहने का तात्पर्य यह है कि बौद्धधर्म गौतम की मृत्यु के बाद जिस रूप में चला, वह स्थविरवाद कहलाया। ईस्वी पूर्व तृतीय शताब्दी से उसमें एक विद्रोही शाखा पनपी, लेकिन दोनों शाखाएं साथ चलती रहीं। अशोक संगीति में स्थविरवाद की विजय हुई और राजाश्रय पाकर यह शाखा अशोक-काल में फूली-फली, लेकिन कनिष्क-संगीति में, जिसका स्थविरवादी साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता, दूसरी शाखा को विजय प्राप्त हुई और राजाश्रय पाकर वह पर्याप्त पुष्पित-पल्लवित हुई। इस शाखा ने स्थविरवाद की हेयता प्रदर्शित करने के लिए उसे हीनयान नाम दिया और स्वयं को महायान नाम से शोभित किया। इस प्रकार हीनयान स्थविरवाद का परिवर्तित-परिवद्धित रूप है और महायान महासंघिक का।

हीनयान और महायान के विकास पर विचार करने के उपरान्त दोनों के अन्तर को तनिक विस्तार से देख लेना चाहिए जिससे दोनों का स्वरूप स्पष्ट हो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सके--

(१) हीनयान को साहित्य मूलतः पालि में है जबकि महायान का संस्कृत में। हीनयान के विद्वानों में बुद्धघोष, धर्मपाल तथा साहित्य में 'त्रिपिटक' के अतिरिक्त विशुद्धिमार्ग, मिलिन्दप्रश्न आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जबकि महायान के विद्वान् हैं नागार्जुन, अश्वघोष, असंग, वसुभूति, आदि तथा ग्रन्थ हैं बुद्धचरित, सद्धर्मपुण्डरीक, लंकावतारसूत्र, प्रज्ञापारमिता आदि।

(२) हीनयान की दृष्टि में गौतम बुद्ध ज्ञानसम्पन्न उपदेशक एवं पथप्रदर्शक हैं जबकि महायान की दृष्टि में वे सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, दिव्यशक्ति हैं।

(३) हीनयान नैतिकता एवं विवेक पर बल देता है। उसकी दृष्टि में बुद्ध के अवशेषों की पूजा निरर्थक है जबकि महायान भक्ति एवं पूजा-अर्चना में विश्वास रखता है।

(४) महायान में बोधिसत्त्व की कल्पना की गयी है जो बहुत लोकप्रिय हुई। सामाजिक उन्नति के लिए पारमिताओं की कल्पना भी महायान की ही देन है।

(५) निर्वाण में महायान की अपनी विशेषता है। वे निर्वाण को आनन्दरूप मानते हैं जबकि हीनयान शाखा केवल दुःखाभाव रूप स्वीकारती है।

(६) महायान में त्रिकाम की कल्पना की गयी है-धर्मकाम, सम्भोगकाम और निर्वाणकाम, जबकि हीनयान तृष्णा के अभाव को ही महत्त्व देता है।

(७) हीनयान में अर्हत् पद की चार भूमियां मानी गयी हैं जबकि महायान में निर्वाण की उपलब्धि दशभूमियों से मानी गयी है।

(८) महायान में बुद्ध की अनेक रूपों में मूर्तियां बनायी गयी हैं। ये बोधिसत्त्व को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित राजकुमार तथा योगी के वेश में, विभिन्न मुद्राओं में, आसन, स्थानक और शयन रूप में चित्रित करते हैं। हीनयान केवल प्रतीकों में विश्वास रखता है। जन्म को हाथी (कहीं-कहीं शेर) द्वारा, बोधप्राप्ति को अश्वत्थ द्वारा, धर्मचक्रप्रवर्तन को चक्र और परिनिर्वाण को स्तूप द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि महायान शाखा में हिन्दुओं के अवतारवाद,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मूर्तिपूजा, भक्तिभाव तथा लोककल्याण की भावना का बौद्धधर्म में समावेश करके उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया है जबकि हीनयान शाखा गौतम द्वारा प्रतिपादित विवेक एवं नैतिकता को ही पकड़े रही है। परिणामतः हीनयान की अपेक्षा महायान अधिक प्रचलित हो गया। आज लंका, बर्मा, थाईलैण्ड और कम्बोडिया में हीनयान प्रचलित है और चीन, जापान, और तिब्बत में महायान का सम्राज्य है।

अनात्मवाद

बौद्धधर्म आत्मा या पुद्गल को वस्तुसत् नहीं मानता। वह आत्मा नामक किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं मानता बल्कि पञ्चस्कन्ध के लिए प्रतिषेधवादी कहा जाता है। भारतीय विचारकों में केवल बुद्ध ही नैरात्म्य का उपदेश देते हैं।

बौद्धों का मत है कि यदि आत्मा की सत्ता होती तो उसके अस्तित्व की सिद्धि किसी न किसी प्रमाण से अवश्य होती, किन्तु उसका अस्तित्व न प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होता है और न अनुमान आदि से। ऐसी स्थिति में उसका अस्तित्व मानना निरर्थक है।

बौद्धधर्म पञ्चस्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, और विज्ञान) के समूहमात्र के लिए आत्मा शब्द का प्रयोग करता है। इस प्रकार आत्मा न स्कन्धों से भिन्न है और न अभिन्न। 'मिलिन्दप्रश्न' में अनात्मवाद को रथ के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है। जिस प्रकार न चक्र, रस्सी, अक्ष, दण्ड आदि ही मिलकर रथ हैं और न रथ इनसे अतिरिक्त ही है वरन् इन सभी का सन्तुलित एवं व्यवस्थित रूप रथ कहलाता है, उसी प्रकार न पञ्चस्कन्ध ही मिलकर आत्मा हैं और न आत्मा इनसे व्यतिरिक्त ही है। वह समूहात्मक शब्द है और पंचस्कन्ध के लिए प्रज्ञप्तिमात्र है। जिस प्रकार अंगसमूह 'रथ' शब्द से कहा जाता है उसी प्रकार पंचस्कन्धों के होने पर सत्त्व ऐसा कहा जाता है-यही मेरी सम्मति है--

यथा हि अंसम्भारा होति सद्दो रथो इति,
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तोति सम्मुतीति।।

कुछ परवर्ती आचार्यों, विशेषतः महायान सम्प्रदाय के अनुयायियों, का यह भी विचार है कि जिस प्रकार व्याघ्री दांतों से अपने बच्चे को न अति निष्ठुरतापूर्वक पकड़ती है और न शिथिलतापूर्वक, उसी प्रकार आत्मा के अस्तित्व

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के विषय में पूछे जाने पर बुद्ध न विधेयात्मक उत्तर देते हैं और न निषेधात्मक, क्योंकि जो आत्मा अस्तित्व में प्रतिपन्न है वह दृष्टि-दंष्ट्रा से विदीर्ण हो जाता है और जो संवृत्तिसत् पुद्‌गल को नहीं मानता, वह कुशलकर्म का भ्रंश करता है--

दृष्टिदंष्ट्रावभेदं चापेक्ष्य भ्रंशं च कर्मणाम्।
देशयन्ति बुद्धा धर्म व्याघ्रीपोतापहारवत्।।

षट्पारमिता

महायान शाखा की बुद्धविषयक कल्पनाओं में पारमिता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस शाखा के अनुयायियों का मत है कि बोधिचित्तोत्पाद के उपरान्त बोधिसत्त्व बुद्धत्वप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है और इस प्रयास में उसे विभिन्न पारमिताओं को प्राप्त करना होता है। इनके अधिगत होने पर ही उसकी साधना सफल होती है और वह बुद्धत्व प्राप्त करता है।

'पारमिता' शब्द का अर्थ है- पूर्णता, पारंगतता। विभिन्न गुणों की पूर्णता को प्राप्त करना ही पारमिता है। इनकी संख्या छः मानी गयी है, यद्यपि कहीं-कहीं दस का उल्लेख भी मिलता है, इसीलिए इन्हें 'षट्पारमिता' कहा जाता है। ये पारमिताएँ निम्नांकित हैं-दान पारमिता, शील पारमिता, क्षान्ति पारमिता, वीर्य पारमिता, ध्यान पारमिता और प्रज्ञा पारमिता। यहां इनके स्वरूप को समझ लेना उपयुक्त होगा।

दान पारमिता-सम्पूर्ण जीवधारियों के लिए सभी वस्तुओं का दान तथा दानफल का भी परित्याग कर देना दान पारमिता कहा जाता है। बोधिसत्त्व प्राणियों के निमित्त सभी वस्तुओं का परित्याग कर देता है तथा अतीत, वर्तमान एवं अनागत के कुशलमूल का भी त्याग कर देता है, जिससे अन्य सभी प्राणियों की अर्थसिद्धि हो सके।

सम्पूर्ण सांसारिक दुःखों का मूल है परिग्रह। अतएव अपरिग्रह की भावना से ही इन दुःखों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। यही कारण है कि बोधिसत्त्व न केवल वस्तुओं का, बल्कि अपना भी परहित के लिए समर्पण कर देता है। जिस किसी को भी उसकी अथवा उसकी किसी वस्तु की आवश्यकता होती है, उसे वह बिना शोक के, बिना फल की आकांक्षा के तथा बिना प्रतिसार के दे दे-यही दान पारमिता का आशय है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दान पारमिता की साधना करते समय साधक को सभी की बुद्धत्वप्राप्ति की कामना करनी होती है भले ही उन्होंने उपकार किया हो अथवा अपकार। वह चाहता है कि जिस प्रकार जल, वायु, पृथ्वी आदि सभी के उपभोग योग्य हैं, उसी प्रकार उसकी सेवाएं सभी को सुलभ हों।

शील पारमिता-साधक को यह समझकर कि वह शकट के समान भारोद्वहन के लिए ही है, अपना परिपालन करना चाहिए। आत्म-परिपालन से तात्पर्य चित्त की रक्षा से है। चित्त के द्वारा ही वाक्कर्म तथा कायकर्म सम्पन्न होते हैं, अतः उसके स्वायत्त होने पर भय और दुःख का कोई कारण नहीं रह जाता। गीता में भी मन को मानव के बन्धन एवं मोक्ष के लिए कारण माना गया है।

चित्त की रक्षा के लिए स्मृति तथा संप्रजन्य की रक्षा आवश्यक मानी गयी है। स्मृति से तात्पर्य है-स्मरण अर्थात् विहित और प्रतिषिद्ध का स्मरण। इसी से मानव कुमार्ग से बचकर सुमार्ग का पथिक बनता है। संप्रजन्य का अर्थ है-प्रत्यवेक्षण अर्थात् काय और चित्त की अवस्थाओं का निरीक्षण-परीक्षण। तात्पर्य यह है कि साधक को निरन्तर काय और चित्त की अवस्थाओं का प्रत्यवेक्षण करते हुए, विहित और प्रतिषिद्ध कर्मों का स्मरण करते हुए कुमार्ग से बचने का प्रयास करना चाहिए।

बोधिसत्त्व को चित्त का शोधन करते हुए अनुद्वेजक कर्मों का सम्पादन करना चाहिए। उसे मित एवं मृदुभाषी होना चाहिए, किसी से अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, अपने कार्य स्वयं करने चाहिएं, दूसरों का अधिकाधिक हित सम्पादन करना चाहिए। वस्तुतः स्वार्थ का परित्यागकरं, लोककल्याण एवं लोकोन्नयन का मार्ग ही उसका इष्ट है।

क्षान्ति पारमिता-क्षान्ति का अर्थ है-धैर्य, सहनशीलता। क्षान्ति के समान कोई तप नहीं है और न द्वेष के समान कोई पाप। द्वेष दौर्मनस्य से पोषण प्राप्त करता है तथा अन्य के अनिष्ट में प्रवृत्त करता है। साधक का कर्तव्य है कि वह द्वेष के मूल दौर्मनस्य का अपघात करे। इसी से उसमें क्षान्ति की भावना प्रवृद्ध होती है।

क्षान्ति तीन प्रकार की होती हैं-दुःखाधिवासना क्षान्ति, परापकारमर्षण क्षान्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और धर्मनिध्यान क्षान्ति। दुःखाधिवासना क्षान्ति में साधक अनिष्ट की आशंका होने पर भी दौर्मनस्य से ग्रस्त नहीं होता, बल्कि मुदिता की यत्नपूर्वक रक्षा करता है क्योंकि वह जानता है कि दौर्मनस्य निरर्थक एवं अनिष्टकर है। अन्य के द्वारा किये गये अपकार को सहना तथा प्रत्यपकार का प्रयास न करना परापकारभर्षण क्षान्ति है। अपने धर्म का निर्भ्रान्त दर्शन करना धर्मनिध्यान क्षान्ति है। इसमें साधक को सदैव यह स्पष्ट होना चाहिए कि उसका कर्तव्य लोककल्याण के लिए आत्मभाव का त्याग है, समाज के उन्नयन के लिए अपने को दलित द्राक्षा के समान समर्पित कर देना है। उसे प्रतिपल ध्यान रखना चाहिए कि प्रचुर लाभसत्कार प्राप्त कर और सुदीर्घ सुखी जीवन भोगकर भी व्यक्ति अन्तिम समय रिक्तहस्त तथा नग्नकाय ही जाता है--

लब्धवापि च बहुंल्लाभान् चिरं भुक्त्वा सुखान्यपि।
रिक्तहस्तश्च नग्नश्च यास्यामि मुषितो यथा।।

वीर्य पारमिता-कुशल कर्मों में सोत्साह प्रवृत्त होना ही वीर्य पारमिता है। यह आलस्य, कुत्सित कर्मों में आसक्ति, विषाद आदि का विपरीतार्थक है। साधक को सदैव ध्यान रखना चाहिए कि एक दिन मृत्युपाश में आबद्ध होना ही है। उससे पूर्व ही उसे शुभ और कुशल कर्मों का सम्पादन कर लेना चाहिए अन्यथा पश्चात्ताप एवं अश्रुपात के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रहेगा। अविषाद, निपुणता, बलव्यूढ़, जितेन्द्रियता, परात्मसमता आदि वीर्य पारमिता के पोषक तत्त्व हैं।

बोधिसत्त्व को अपनी शक्ति का विचार कर कुशलकर्म में लग जाना चाहिए। कर्म प्रारम्भ न करना इतना दूषित नहीं है जितना उसे बीच में छोड़ देना। इसलिए सम्यक् विचारकर कार्य प्रारम्भ करें और भगीरथ-प्रयत्न से उसे सम्पन्न करें। एक कार्य के सम्पन्न होते ही दूसरा कार्य प्रारम्भ कर दे, लेकिन शक्तिक्षय की स्थिति में कुछ समय शक्तिअर्जन भी उपादेय होता है। लोककल्याण का सम्पादन ही वीर्य पारमिता कहलाता है।

ध्यान पारमिता-ध्यान से तात्पर्य समाधि या चित्त की एकाग्रता से है। अभिवृद्धवीर्य होकर साधक को चित्त की एकाग्रता का प्रयास करना चाहिए क्योंकि विक्षिप्तचित्त व्यक्ति कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता। इसके लिए साधक को एकान्तवास एवं अभ्यास का सहारा लेना चाहिए। एकान्तवास क्लेशशून्य, कल्याणकर तथा विक्षेपशामक है। जनसम्पर्क का अभाव कायविवेक प्रदान कर,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चित्तविवेक को जागृत करता है और तभी चित्त समाहित होने लगता है। आसक्तियाँ चित्त-समाधान में अवरोधक हैं अतः साधक को उन्हें पहले ही जीतना आवश्यक है। चित्त-समाधान साधक की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

प्रज्ञा पारमिता-प्रज्ञा पारमिता बोधिसत्त्व की सर्वोत्कृष्ट साधन मानी जाती है। षट्पारमिताओं में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रज्ञा की अनुकूलता होने पर ही अन्य पारमिताएं बोधिप्राप्ति में समर्थ एवं हेतु रूप होती हैं। प्रज्ञा पारमिता की प्रधानता बताते हुए कहा गया है-"जिस प्रकार अनेक जन्मान्ध व्यक्ति मार्गदर्शक के अभाव में मार्गावतरण में असमर्थ होते हैं, उसी प्रकार नेत्र विकल पांच पारमिताएँ प्रज्ञाचक्षु की सहायता के बिना बोधिमार्ग में अवतरण नहीं कर सकतीं। जिस प्रकार क्षुद्र नदियाँ गंगा नामक महानदी का अनुगमन कर महासमुद्र में प्रवेश करती हैं उसी प्रकार पांच पारमिताएँ प्रज्ञा पारमिता से परिगृहीत हो तथा उसका अनुगमन कर सर्वाकारज्ञता को प्राप्त होती हैं।"

सर्वधर्म के अनुपलम्भ को ही प्रज्ञा पारमिता कहते हैं। जब साधक को यह ज्ञान होता है कि भावों की उत्पत्ति न स्वतः होती है, न परतः, न उभयतः और न अहेतुतः, तभी प्रज्ञा पारमिता की प्राप्ति होती है। जो शून्यता में प्रतिष्ठित है, उसी ने इस पारमिता की प्राप्ति की है। शून्यता की गहनानुभूति होने पर लोक-व्यवहार समाप्त हो जाता है। साधक को यही प्रतीत होता है कि सब कुछ शून्य है, बुद्ध और निर्वाण भी शून्य हैं, दृश्यमान् जगत् माया के समान है, वह स्वप्न और प्रतिबिम्ब के समान असत् और मिथ्या है। इन शून्यता की अनुभूमि होने पर वह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हो जाता है।

इन षट्पारमिताओं के अधिगत होने पर ही बोधिसत्त्व की साधना फलवती होती है और वह बुद्धत्व के सुदुर्लभ पद को प्राप्त कर लेता है।

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सहायक ग्रन्थसूची

१. जातक (छः भाग)- भदन्त आनन्द कोसल्यायन

२. जातककालीन भारतीय संस्कृति- पं० मोहनलाल महतो 'वियागी'

३. धम्मपद- कन्छेदीलाल गुप्त

४. पाली-प्रबोधं- पं० आद्यादत्त ठाकुर

५. पाली-प्रवेश- डा० कन्हैयालाल अवस्थी

६. पालि-महाव्याकरण- भिक्षु जगदीश काश्यप

७. पालि-व्याकरण- डा० रामअवध पाण्डेय,

८. पालि साहित्य का इतिहास- राहुल सांकृत्यायन

९. पालि साहित्य का इतिहास- डा० भरत सिंह उपाध्याय

१०. प्राचीन राजवंश और बौद्धधर्म- डा० अच्युतानन्द घिल्डियाल

११. बौद्धदर्शनमीमांसा- बलदेव उपाध्याय

१२. बौद्धधर्म- बाबू गुलाबराय

१३. बौद्धधर्मदर्शन- आचार्य नरेन्द्रदेव

१४. भगवान् बुद्ध- धर्मानन्द कोसाम्बी

१५. भारतीय दर्शन- डा० देवराज

१६. हिन्दी साहित्य की भूमिका- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

***

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नाम : **डॉ. रामानन्द शर्मा**

शिक्षा : बी.ए. ऑनर्स, एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत),पी.एच.डी., डी०लिट्० (लब्धस्वर्णपदक)

कृतियाँ : ● भारतीय काव्यशास्त्र, ● कोककृत 'रतिरहस्य' (प्रकाश टीका सहित), ● ज्योतिरीश्वर कृत 'पंचसायक', ● वात्सायन कृत 'कामसूत्र' (जया टीका सहित), ● भिखारीदास का आचार्यत्त्व, ● पालिः भाषा और साहित्य, ● हेमचन्द्र कृत 'काव्यानुशासन' (जया टीका सहित) (उ० प्र० संस्कृत संस्थान लखनऊ से पुरस्कृत), ● करणभट्टकृत 'रसकल्लोल', ● सेनापति का श्लेषकाव्य, ● नयी कविता : वक्रोक्तिपरक विश्लेषण, ● भामह कृत 'काव्यालंकार' (आनन्दभाष्य सहित), ● कालिदास त्रिवेदी ग्रन्थावली, ● रूपसाहि कृत 'रूपविलास', ● सुन्दर कविराय ग्रन्थावली

शोध : पत्रपत्रिकाओं में शताधिक शोधपत्र लेख एवं समीक्षाएँ, निर्देशन में ३५ शोधार्थियों को पी०एच०डी० प्राप्त, वि०अनुदान आयोग की वित्तीय सहायता से चार शोधपरियोजनाएँ, दर्जनाधिक कवितासंग्रहों एवं शोधग्रन्थों में भूमिकाएँ

विशेषज्ञ : रीतिकालीन काव्य, काव्यशास्त्र एवं प्राच्यभाषाएँ

सम्प्रति : उपाचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग हिन्दू कालेज मुरादाबाद

सम्पर्क : 'शोधपीठ' बी- १ जिगर कालोनी, मुरादाबाद - २४४००१

दूरभाष : ०५९१-२४३६७६६, ९४१५५०६९१७

संस्कृत को आधुनिक आर्यभाषा हिन्दी से जोड़ने वाली मध्यवर्ती कड़ियाँ हैं: पालि, प्राकृत और अपभ्रंश। इनके विशेष अध्ययन से न केवल भारतीय आर्यभाषा का ऐतिहासिक विकास स्पष्ट होता है, बल्कि हिन्दी भाषा और साहित्य की अनेक गुत्थियाँ भी सुलझती हैं। खेद का विषय है कि पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का सम्यक् अनुशीलन आज तक नहीं हो पाया है।

हिंदी विषय की स्नातकोत्तर परीक्षा में प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में पालि का अध्ययन प्रचलित है, लेकिन यह कार्य छात्रोपयोगी प्रश्नोत्तरी पुस्तिकाओं पर निर्भर है। अतएव ऐसे व्यवस्थित, पूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ की नितान्त आवश्यकता थी जो स्नातकोत्तर छात्रों एवं शोधकर्त्ताओं की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकें।

प्रसन्नता का विषय है कि साहित्यवारिधि डा० रामानन्द शर्मा, जो संस्कृत ही नहीं, वैदिक संस्कृत, पालि एवं प्राकृत के भी मर्मज्ञ विद्वान् हैं, ने छात्रों एवं शोधकर्त्ताओं के हितों को ध्यान में रखकर 'पालि : भाषा एवं साहित्य' शीर्षक ऐसी पुस्तक प्रस्तुत की है जो पालि व्याकरण एवं साहित्य की ही नहीं, उस सम्पूर्ण बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का भी सतर्क विवेचन करती है जिसमें यह साहित्य निर्मित हुआ है। निश्चयतः हिन्दीसेवी अध्येता इसका मुक्तहृदय से स्वागत करेंगे।

ISBN - 81- 7080-184-3

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मूल्य - २५०/-